Śodha Pravāha

Śodha Pravāha is a multidisciplinary quarterly refereed research journal. The journal is meant to serve the interest of creative writers, researchers, scientists of the country and abroad. Hence articles, papers, reviews and comments are invited from researchers, educationist and scientists working in Arts, Linguistics, Humanities, Social and Basic Sciences. We hope that the journal will certainly cater the needs of the young researchers in their all future academic endeavors. The forthcoming issues are expected in the months of January, April, July and October every year.

The generation of knowledge is a continuous process which needs to be recorded and documented for future references. Hence, the qualitative aspect of the journal will always be a primary parameter in publishing the contents and will be solely based on the report of the experts. We thank all of you for associating and contributing your original work in this issue of the journal in making this academic endeavor a great success. We invite your contributions for the forthcoming issues. Let us come together; and join our hands in making the India a knowledge super power.

Annual Subscription	India	Foreign
Institution	₹ 2500	US $ 200
Individual	₹ 2000	US $ 125
Students & Teachers	₹ 1800	US $ 100
Life Membership	₹ 15000	US $ 500

Chief Editor :
Dr. S. K. Tiwari
Academic Staff College,
Banaras Hindu University
Varanasi - 221005 (INDIA)
sodhapravaha@gmail.com, sktiwari.bhu@gmail.com
Contact (Editor) : 09415390515, 08960501747

ISSN 2231 - 4113

Śodha Pravāha Vol. 12 Issue I January 2022

UGC Approved Journal No - 49297

ISSN 2231 - 4113

Śodha Pravāha

A Multidisciplinary Peer Reviewed Refereed Research Journal

Vol. 12 Issue I January 2022

Chief Editor
Dr. S. K. Tiwari
Editor
Dr. S. B. Poddar

(IIJIF) Impact Factor - 4.262

Regd. No. : 1687-2006-2007 ISSN 2231-4113

Śodha Pravāha

(A Multidisciplinary Peer Reviewed Refereed Research Journal)

Editor : S. B. Poddar

Vol. 12

Issue I

JANUARY 2022

Chief Editor : S. K. Tiwari

Academic Staff College
Banaras Hindu University,
Varanasi-221005, INDIA

E-mail : sodhapravaha@gmail.com **www.sodhapravaha.com**

Editorial Board

Prof. S K Tripathi
MGCG Vishwavidyalay,
Chitrakoot, Satna, Madhya Pradesh

Prof. N K Mishra
Technological Institute of Textile & Science,
Bhiwani, Haryana

Prof. Archana Singh
Physical Education
Mahila Maha Vidyalaya
Banaras Hindu University,Varanasi

Prof. A Rahman
Jamia Milia IslamiaUniversity,
New Delhi

Dr. G R Sharma
Department of Higher Education
Government of Uttar Pradesh

Prof. Priti Saxena
Department of Human Rights, School for Legal Studies,
BBAU Lucknow

Prof. S K Shukla
Institute of Technology
B.H.U., Varanasi, Uttar Pradesh

Prof. Rajiv Kumar Bhatt
Department of Economics
BHU, Varanasi, Uttar Pradesh

Dr. Reeta Yadav
Deptt. of Home Science
VPG College, Faizabad

Dr. Pradeep Kumar
Assist. Prof., Faculty of Law
Banaras Hindu University, Varanasi

Editorial Advisory Board

Prof. S N Tiwari
BRA Bihar University,
Muzaffarpur, *Bihar*

Prof. B L Dubey
Department of Psychology
University of Alska, USA

Prof. Ajit Kumar Pandey
Department of Sociology
Banaras Hindu University, Varanasi

Prof. A Sisodia
Physical Education
LNUIP, Gwalior, Madhya Pradesh

Prof. Anant Shastri
Washington DC, USA

Prof. A Bhowmik
Niyame, Niger, Africa

Prof. G C Pandey
Bhagalpur University,
Bihar

Prof. Pratima Pakla
University of Minnesota,
USA

Prof. A K Singh
CIMFR, (CSIR), Dhanbad,
Jharkhand

Prof.. H K Pandey
CGWB,GOI, Raipur,
Chhatisgarh

Contents

- **डॉ० अम्बेडकर का सामाजिक न्याय एवं दलितोद्धार** **1-9**
  मित्र प्रकाश, शोध छात्र, समाजशास्त्र विभाग, उदय प्रताप स्वायत्तशासी महाविद्यालय, वाराणसी, उ. प्र.
- **भारतीय राज्य का कल्याणकारी आयाम** **10-13**
  डॉ. राजबहादुर कुशवाहा, असिस्टेंट प्रोफेसर-राजनीति विज्ञान, अतर्रा पी.जी. कॉलेज, अतर्रा (बाँदा) उ.प्र.
- **पर्यावरण संरक्षण को समृद्ध बनाने हेतु जल प्रबन्धन (बुन्देलखण्ड (उ. प्र.) के विशेष सन्दर्भ में)** **14-17**
  डॉ. दीपक सिंह, सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, चरखारी (महोबा) उ.प्र.
- **जनपद बहराइच में जल की गुणवत्ता का आकलन एवं उसका मानव के स्वास्थ्य पर प्रभाव** **18-22**
  डॉ. राजकुमार सिंह, असि. प्रोफेसर (भूगोल), नेशलन पी. जी. कॉलेज भोगांव (मैनपुरी) Dr. B.R. Ambedkar University, Agra
  डॉ. संतोष कुमार सिंह, असि. प्रोफेसर (भूगोल), किसान पी. जी. कॉलेज बहराइट, Dr. R.M.L. Awadh Uni. Ayodhya
- **राष्ट्र की अवधारणा और भारत** **23-27**
  राकेश कुमार यादव, पूर्व शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
- **वैदिक दर्शन में निहित पर्यावरणीय तत्वों की विवेचना** **28-34**
  संगीता सिंह, एम.ए. संस्कृत, शोधच्छात्रा, संस्कृत विभाग, नेहरू ग्राम भारती (मानित विश्वविद्यालय), प्रयागराज (उ.प्र.)
- **''महर्षि अरविन्द के दृष्टिकोण में पारमार्थिक सत्ता का स्वरूप : एक अवलोकन''** **35-39**
  डॉ. रवि शंकर कुमार, अतिथि शिक्षक, दर्शनशास्त्र विभाग, ए.एन. कॉलेज, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना
- **कुँवर नारायण का काव्य और समकालीन जीवन की अभिव्यक्ति** **40-45**
  अन्त लाल पाल, पी.एच.डी. (शोध छात्र), हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी (उ०प्र०)-221002
- **प्रगतिशील चेतक : कवि निराला** **46-52**
  पूजा सिंह, पी०एच०डी० (शोध छात्रा), हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी (उ०प्र०)-221002
- **समावेशनः दिव्यांगता केवल अभिशाप नहीं** **53-55**
  डॉ. सुनील कुमार यादव, असि. प्रोफेसर (बी. एड्. विभाग), श्री दुर्गा जी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, चण्डेश्वर आजमगढ़।
- **महिला सशक्तिकरण के राजनीतिक आयाम** **56-60**
  डॉ. नीरा वर्मा, कॉन्ट्रेक्चुअल सहायक प्राध्यापिका (I.C.P.R.-JRF), दर्शनशास्त्र विभाग, माड़वारी कॉलेज, राँची

- **बौद्ध दर्शन में वर्णित नैतिक मूल्य की वर्तमान में प्रासंगिकता** **61-64**
  डॉ. प्रेम कुमार, सहायक प्राध्यापक (गेस्ट फेकल्टी) दर्शनशास्त्र विभाग, एम.जे.के. कॉलेज, बेतिया (I.C.P.R., J.R.F.)
- **कालिदास-सौन्दर्य-भावना** **65-71**
  डॉ. वन्दना पाण्डेय, एसोसिएट प्रोफेसर (संस्कृत), सर्वोदय पी०जी० कॉलेज, घोसी, मऊ
- **आदिवासी साहित्यः चुनौतियाँ और संभावनाएँ** **72-74**
  अनुराग यादव, शोध छात्र, हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद
- **''विकास एवं पर्यावरणवाद'' (एक समाजशास्त्रीय अध्ययन)** **75-79**
  अनामिका कुमारी, शोध छात्रा (समाजशास्त्र), पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना
- **किशोरों के मानसिक स्वास्थ्य का एक अध्ययन (पटना जिला के नदौल गाँव के संदर्भ में एक समाजशास्त्रीय अध्ययन)** **80-85**
  डॉ. प्रो. मधु कुमारी, शोध निर्देशिका, अध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग जे. डी. वीमेन्स कॉलेज, पटना
  निशात अंजुम, शोधछात्रा, खलिलपुरा, फुलवारीशरीफ पटना-801506
- **ग्रामीण भारत में वर्ग एवं जाति** **86-90**
  डॉ. लालेश्वर प्रसाद यादव, शोध निर्देशक, एसोसिऐट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, बी. एन. कॉलेज, पटना
  सत्यनारायण प्रसाद, शोधकर्ता, समाजशास्त्र, पटना विश्वविद्यालय, पटना
- **सौन्दर्य की अनुभूतिः एक वैचारिक अवधारणा** **91-92**
  प्रो. अजय कुमार जैतली, विभागाध्यक्ष, दृश्य कला विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
  प्रीति सिंह, शोध छात्रा, दृश्य कला विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
- **मलिन बस्ती के किशोरियों की समाज में भूमिका एवं पहचान के मुद्दे** **93-97**
  प्रीति पटेल, शोध छात्रा, मनोविज्ञान विभाग, म.गा.अ.हि.वि.वि., वर्धा, महाराष्ट्र।
- **बदलते भारतीय परिदृश्य में ग्राम-जीवन (हिन्दी साहित्य के विशेष संदर्भ में)** **98-103**
  डॉ. शशिकला जायसवाल, असि. प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, राजकीय महिला पी.जी. कालेज, गाजीपुर, (उ.प्र.)
- **पण्डित जवाहर लाल नेहरु व श्री जय प्रकाश नारायण पर मार्क्सवाद का प्रभाव** **104-108**
  डॉ. कौशलेन्द्र दीक्षित, असिस्टेन्ट प्रोफेसर, राजनीति शास्त्र विभाग, नेशनल पी.जी. कालेज, भोगाँव, मैनपुरी, उ.प्र.
- **प्रकृति सुन्दरी शकुन्तला का प्रकृति प्रेम** **109-112**
  डॉ. राहुल, असिस्टेन्ट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, पी.जी. कॉलेज, गाजीपुर।
- **भारत का परमाणु कार्यक्रम : रचनात्मक कार्य एवं शक्ति संतुलन के रुप में** **113-117**
  अब्दुल कलाम अंसारी, शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय
  मोहम्मद शाहिद, प्रोफेसर , राजनीति विज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय

- **संस्कृत वाङ्मय में प्रतिपादित निमित्तज्ञान कला** **118-120**
  डॉ. शुभ्रा सिंह, असिस्टेन्ट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, हिन्दू स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ज़मानियॉ, गाजीपुर
- **गाँधी चिन्तन की अवधारणा और आतंकवाद का समाधान** **121-124**
  डॉ. रेशमा सुलताना, असिस्टेंट प्रोफेसर, दर्शनशास्त्र विभाग, वैशाली महिला कॉलेज, वैशाली (बिहार)
- **बिहार की स्थानीय राजनीति और पंचायती राज व्यवस्था** **125-130**
  डॉ. शंकर जी, एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, वैशाली महिला कॉलेज, वैशाली
- **श्रीलाल शुक्ल : एक बेहतरीन रचनाकार** **131-133**
  अमिता सिंह, शोधछात्रा, हिन्दी विभाग, उपाधि महाविद्यालय, पीलीभीत (महात्मा ज्योतिबाफूले विश्वविद्यालय, रुहेलखण्ड)
- **समकालीन साहित्य में दलित विमर्श** **134-138**
  डॉ. गायत्री, गेस्ट टीचर, स्कूल ऑफ ओपन लर्निंग
- **डॉ. मनमोहन सिंह की विदेश नीति में निरन्तरता एवं परिवर्तन का अध्ययन** **139-142**
  डॉ. राजेश कुमार सिंह, असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान, बाबू जगजीवन राम इंस्टिच्युट ऑफ लॉ बुन्देलखण्ड यूनिवर्सिटी, झांसी
- **संगीत का मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव** **143-148**
  डॉ. अजिर बिहारी चौबे, एसोसिएट प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, मनोविज्ञान विभाग, एस.आर.के. पी.जी. कॉलेज, फीरोजाबाद, उ.प्र.
  दीक्षा गुप्ता, एम.ए., नेट, शोधार्थी, मनोविज्ञान विभाग, एस.आर.के.पी.जी. कॉलेज, फीरोजाबाद, उ.प्र.
- **सूर के काव्य में अभिव्यक्त प्रेम का स्वरूप** **149-154**
  सुनील गुप्ता, असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी, केन ग्रोवर्स नेहरू पीजी कॉलेज, गोला गोकर्णनाथ, लखीमपुर खीरी, उत्तर प्रदेश
- **डुग्गर प्रदेश के ऐतिहासिक लोक नृत्य : एक अध्ययन** **155-158**
  अनीता शर्मा
- **संस्कृत साहित्य में शिवाजी की राष्ट्रभक्ति** **159-161**
  परमानन्द कुमार, शोधार्थी, स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग, विनोबा भावे विश्वविद्यालय, जारीबाग-825301
- **अशोकनगर जिले के चित्रित शैलाश्रयः एक अध्ययन** **162-166**
  डॉ. शांतिदेव सिसोदिया, सा. प्राध्यापक, प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व अध्ययनशाला, जीवाजी विश्वविद्यालय ग्वालियर, म.प्र.।
  कु. श्वेता सिंह अहिरवार, शोध छात्र, प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व अध्ययनशाला, जीवाजी विश्वविद्यालय ग्वालियर, म.प्र.।

डॉ० अम्बेडकर का सामाजिक न्याय एवं दलितोद्धार

*मित्र प्रकाश**

दलितों के मसीहा कहे जाने वाले बाबा साहब डॉ0 भीमराव अम्बेडकर अपना सम्पूर्ण जीवन सामाजिक कुरीतियों को दूर करने, दलितों एवं पिछड़ें लोगों के हितों में लगा दिया। डॉ0 अम्बेडकर के विचार से मानव पृथ्वी का सबसे श्रेष्ठ प्राणी है। इसकी बुद्धि सभी प्राणियों से श्रेष्ठ है। फिर भी आपस में मानव प्राणियों में गहरी खाई जैसा अन्तर दिखाई दे रहा था। जो उनके सुधारवादी विचारों का केन्द्र बना। जो सामाजिक रूढ़िवादिता, जाति व्यवस्था एवं अस्पृश्यता को सदैव दूर करने का प्रयास किया। इस प्रकार सामाजिक अन्याय का विरोध कर सामाजिक न्याय के समतावादी विचारों से अधिकार वंचितों, शाोषितों तथा कमजोर वर्गों को उनके अधिकार दिलाने का जीवन पर्यन्त पुरजोर प्रयत्न किये। आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतक, बुद्धिजीवी, मानवतावादी, दलितों के मसीहा तथा सामाजिक न्याय के संघर्षशील योद्धा एवं समाज सुधारक थे। वह भारतीय संविधान के प्रमुख निर्माता के रूप में भी जाने जाते हैं।

उन्होनें हिन्दुओं में अस्पृश्य मानी जाने वाली जातियों को संगठित करके उन्हें सामाजिक तथा राजनीतिक न्याय हेतु संघर्ष करने के लिए प्रेरित किया। स्वयं अस्पृश्य (महार) जाति में जन्म लेकर निरंतर संघर्ष तथा आत्मविश्वास के बल पर उच्च शिक्षा ग्रहण की जातिवाद तथा छुआ–छूत के कारण बाल्यकाल से ही उन्हें अपमान तथा उत्पीड़न का सामना करना पडा, जिसका प्रभाव बाद में उनके विचारों पर पडना स्वाभाविक था। कोलम्बिया विश्वविद्यालय में उच्च–शिक्षा ग्रहण करते हुए उन्होंने समानता के व्यवहार का अनुभव किया, जो भारत में उनके लिए बेरहम सिद्ध हुआ था। अब्राहम लिंकन तथा वाशिंगटन के विचारों का भी उन पर गहरा प्रभाव पड़ा। वह कबीर की भक्ति, फूले के समाज सुधार तथा साहूजी महराज के ब्राह्मणवाद के विरूद्ध संघर्ष से भी प्रभावित थे। अम्बेडकर के विचारधारा में लोकतंत्र, समानता, स्वतंत्रता एक भ्रातृत्व के पाश्चात्य विचारों का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। अपने अमेरीकी प्रवास के दौरान वहाँ रंगभेद की नीति उनके विचारों का प्रेरणा स्रोत बना। उनका मत था कि दलितों को स्वतंत्रा जीवनयापन हेतु सक्षम बनाने में मनु द्वारा निर्मित नियम नहीं,बल्कि संवैधानिक सुरक्षा के उपाय ही सहायक हो सकेगें।

सामाजिक न्याय का तात्पर्य सामाजिक समानता से है। सामाजिक न्याय का सिद्धांत यह माँग करता है कि सामाजिक जीवन में सभी मनुष्यों की गरिमा को स्वीकार किया जाए। लिंग,वर्ण, जाति, धर्म व स्थान के आधार पर भेद–भाव न किया जाए तथा प्रत्येक व्यक्ति को आत्मविश्वास के सभी अवसर सुलभ कराएं जाएँ। सामाजिक न्याय किसी भी आधार पर किए गए शोषण को स्वीकार नहीं करता है। वस्तुतः सामाजिक न्याय एक विस्तृत अवधारणा है,जिसमें आर्थिक तथा राजनीतिक न्याय राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं को अनुप्रमाणित कर सके।अम्बेडकर सामाजिक क्रंतिकारी थें। वह हिन्दुओं, विशेषतः ब्राह्णों के हाथों अपमानित होने वाले दलित वर्ग के उद्धारक थे। उन्होंने दलित समुदाय को तिरस्कार अधीनता तथा शोषण के उस दलदल से बचाना चाहते थे। जिसमें धर्मान्ध तथा धर्म के ठेकेदार ब्राह्मणों ने उन्हें फँसा दिया था। बालगंगाधर तिलक की तरह उनका मत था कि प्रत्येक को अपने आधिकार के लिए संघर्ष करना पड़ता है । आधिकार दान में नहींमिलता। इसी प्रकार प्रत्येक को पूर्वस्थापित सामाजिक संरचना, रीति –रिवाजों विश्वासों व व्यवहार के विरूद्व लडना पड़ेगा। अपनी प्रसिद्व कृति ''शूद्र कौन थे? में उन्होंने मनु द्वारा वर्णित वर्ण – व्यवस्था को अस्वीकार कर दिया । उन्होने वेदों मे वर्णित चतुर्वर्ण का खण्डन किया, जिससे ब्राह्मणों की तुलना आदि पुरूष के मुख से, क्षत्रियों की भुजाओं से, वैश्यों कीउदर से तथा शूद्रो की पैरों सें की गई हैं ।यह सिद्वान्त असमानता

* शोध छात्र, समाजशास्त्र विभाग, उदय प्रताप स्वायत्तशासी महाविद्यालय, वाराणसी, उ०प्र०

का द्योतक है।उनके अनुसार वर्ण –व्यवस्था पर आधारित हिन्दू समाज शोषण व असमानता को बढ़ावा देता है। अस्पृश्य वर्ग वर्ण–व्यवस्था की उत्पत्ति है। इस व्यवस्था में ब्राह्मणों को उच्च स्थान प्राप्त हैं। तथा अस्पृश्यों को शोषण व दमन का सामना करना पड़ता है। अतः अस्पृश्यता–निवारण व भारतीय समाज में सुधार का एक ही उपाय हैं कि वर्ण –व्यवस्था का अन्त कर दिया जाए। अम्बेडकर इस निष्कर्ष पर पहुँचें कि हिन्दू समाज में समानता सम्भव नहीं है। इसी कारण अन्ततः उन्होंनें हिन्दू धर्म का परित्याग कर बौद्व धर्म को स्वीकार कर लिया था। तथा समाज की शोषण मुक्त बनानें का प्रयास किया एंव समाज में सामाजिक न्यायवादी विचार धारा स्थापित करने का प्रयत्न किया।

डॉ0 अम्बेडकर के धार्मिक अत्याचार एवं धर्म परिवर्तन के सम्बन्ध में कहा जा सकता है, कि डॉ0 अम्बेडकर धर्म के नाम पर पाखण्डवाद के विरोधी थे।धर्म को समाज के लिए आवश्यक मानते थे। मार्क्सवादी चिंतन धर्म को जनता के लिए अफीम मानता है। और कमजोर को अभावग्रस्त जीवन जीने के लिए अभ्यस्त बना देती है, किन्तु अम्बेडकर की दृष्टि में धर्म मानवता के लिए आवश्यक है। धर्म के समाप्त होने पर समाज के समाप्त होने का भय उन्हें था। धर्म लोगों में एकता एवं समरसता स्थापित करता है। धर्म का आधार सामाजिकता है, और बिना समानता के सामाजिकता की बात करना निरर्थक है। अतः धर्म की अवधारणा समानता पर आधारित है।

डॉ0 अम्बेडकर बचपन से विषमतायुक्त एवं अमानवीय व्यवहार करने वाले हिन्दू धर्म के कठोर नियमों को सहते रहे, जो दास एवं पशुओं से खराब जीवन भारत के अछूतों का रहा इसका उन्हें कटु अनुभव होता गया। हिन्दू धर्म ग्रन्थों, वेद .मनुस्मृति, रामायण, गीता, पुराण आदि में अपार ज्ञान क्षमता के साथ – साथ मानवता के खिलाफ कुछ दोषपूर्ण विचार प्रतिस्थापित किए गए हैं। जिसमें शूद्रों को निर्योग्य साबित करके उनके सभी प्रकार के अधिकारों को छीन लिया गया है। इस प्रकार मनुस्मृति में यह प्रावधान किया गया, कि कोई भी शूद्र विद्या पढ़ ले तो उसकी जबान काट लेनी चाहिए, वेद मन्त्रों को सुन ले तो उसके कान में शीशा पिघलाकर डाल देना चाहिए। अन्य प्रकार के प्रतिबन्ध जैसे– कोई भी शूद्र संस्कृत का अध्ययन नहीं कर सकता, शूद्र और स्त्री शिक्षा ग्रहण नहीं कर सकते, शूद्रों के पद चिन्हों को मिटाने के लिए कमर में झाड़ू बाँधकर चलना, थूकने के लिए गले में हांडी बाँधकर चलना तथा सवर्णों ने असवर्ण समाज को इतनी जातियों में बांट दिया था कि वे संगठित होकर व्यवस्था के खिलाफ कभी भी आन्दोलन न कर सके। जन्म लेते ही उसी जाति का आजीवन सदस्यता ग्रहण कर लेते थे। तथा उस जाति के नियमों का पालन करने के लिए वे जीवनभर बाध्य होते थे। ऐसे अमानवीय व्यवहारों को डॉ0 अम्बेडकर तब देखते और सहते रहे, जब तक कि इसके खिलाफ आवाज उठाने की योग्यता, क्षमता और कुशलता न आ गयी। उनका विचार था कि दलितों के लिए केवल पेट भरना और जीवित रहना ही पर्याप्त नहीं है, अपितु उनका मानसिक एवं नैतिक विकास भी आवश्यक है। वे मानते थे कि धर्म व्यक्ति के लिए होता है न कि व्यक्ति धर्म के लिए।

मनुस्मृति को मुख्य रूप से सामाजिक विषमता फैलाने वाला एक धार्मिक ग्रन्थ मानकर 25 दिसम्बर 1927 को बाबा साहब ने इस ग्रन्थ को चिता पर रख दिया और 15 हजार व्यक्तियों के सामने जलाया तथा पांडाल के बाहर गड्ढा खोदकर दफना दिया। जो कल्पना महात्मा ज्योतिबा फूले ने की थी, डा0 अम्बेडकर ने उसे पूर्ण किया। अम्बेडकर जी कठोर शब्दों में कहते है –''धर्म जिसमें पशु के स्पर्श की अनुमति तो है, किन्तु मनुष्य के स्पर्श को अपवित्रकारी माना जाता है, वह धर्म नहीं धर्म का तिरस्कार है।'' 13 अक्टूबर सन् 1935 को येओला में दलितों की एक सार्वजनिक सभा धर्म परिवर्तन की घोषणा उन्होंने की और कहा – ''दुर्भाग्य से मै हिन्दू धर्म में पैदा हुआ यह मेरे बस की बात नहीं थी, किन्तु हिन्दू धर्म की अपमानजनक एवं शर्मनाक स्थिति में रहने से इन्कार करना मेरी शक्ति सीमा में है। मै आपको यह विश्वास दिलाता हूँ कि मैं हिन्दू के रूप में नही मरूंगा।'' डॉ0 अम्बेडकर के सामने समस्या आ गई कि वे कौन सा धर्म स्वीकार करें ? सिक्ख, इसाई या इस्लाम। उन्होंने सोचा यदि हम इसाई या इस्लाम स्वीकार करें तो इसका विश्व की जनसंख्या में कोई महत्व नही है, इसकी बहुलता केवल पंजाब में ही है। बौद्ध धर्म संसार के समस्त धर्मों में श्रेष्ठ है। केवल यही धर्म चिंतन – मनन की अनुमति देता है। ढ़ोंग, जादू, टोना, स्वर्ग, नरक, भाग्य ही अन्य धर्म सिखाते है। जापान, श्रीलंका, चीन,

कम्बोडिया, नेपाल, वर्मा, तिब्बत, कोरिया, वियतनाम, मंगोलिया, मलाया, ताइवान समेत बहुत सारे देश में बौद्ध धर्म को मानने वाले हैं। यहां तक कि ईसा मसीह ने भी भारत में 14 वर्ष तक बौद्ध भिक्षु बनकर उपदेश दिये थे। धर्मों के गहन अध्ययन के बाद डॉ0 अम्बेडकर ने 14 अक्टूबर 1956 दिन रविवार को अपने 5 लाख अनुयायियों के साथ उस हिन्दू धर्म की गन्दी चादर को उतार फेंका, जिसमें से बुराइयों के प्रतीक चीलरों को जब नहीं मार पाएं थे। डॉ0 अम्बेडकर दलितों एवं अछूतों को मानसिक गुलामी से छुटकारा दिलाने तथा उनका सामाजिक एवं नैतिक विकास करने में अपना सम्पूर्ण जीवन न्योछावर कर दिए तथा प्रस्तुत अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि वे ऐसी सामाजिक एवं धार्मिक व्यवस्था से तंग आकर दलित केन्द्रित बन गये थे।

अम्बेडकर के सामाजिक न्याय की अवधारणा–

सामाजिक न्याय की अवधारणा एक बहुत व्यापक शब्द है। इससे एक व्याक्ति के साथ –साथ सामाजिक समानता के अर्थ भी निहित है। यह निर्धनता ,साक्षरता छुआछूत,स्त्री –पुरूष तथा उसके अधिकारों को इंगित करता है। सामाजिक न्याय का आशय प्रत्येक नागरिकों के मध्य आपसी भेदभाव न हो। सभी नागरिकोंको विकास के समान अवसर मिले। विकास के अवसर अगड़े–पिछड़े को उनकी आबादी एवं संख्या के आधार पर प्राप्त हो। जिससे सामाजिक विकास का संतुलन बनाया जा सके। सामाजिक न्याय का अंतिम लक्ष्य यह है कि समाज में जो लोग अपना भरण पोषण करने के योग्य न हो उनका विकास में भागीदारी सुनिश्चित हो। जैसे बिकलांग, अनाथ बच्चे ,दलित, अल्पसंख्यक, गरीब लोग महिलाएं तथा वे लोग जो अपने आप को सुरक्षित महसूस न कर सकें। सामाजिक न्याय का अंतिम लक्ष्य समाज के उन सबसे कमजोर लोगों का हित सुरक्षित हो, तथा उन पर किसी प्रकार का अन्याय न हो। सामाजिक न्याय की अवधारणा का मुख्य आधार इस प्रकार हैं–

(1) उच्च एंव निम्न जातियों के अन्तर को मिटाना।
(2) धार्मिक उच्चता एंव निम्नता को मिटाना ।
(3) लैंगिक भेदभाव को मिटाना ।
(4) क्षेत्रीय भेदभाव को मिटाना ।
(5) भाई–भतीजावाद की दूषित मानसिकता को कम करना।

डॉ अम्बेडकर के सामाजिक न्याय के सिद्वांत को समझने से पहले परंपरागत सामाजिक न्याय व्यवस्था को जानना आवश्यक है। भारत की सामाजिक न्याय प्रणाली में मनुस्मृति के नियम कड़ाई से लागू होते थें। आज भी जाति पंचायतों द्वारा दिये जाने वाले निर्णयों का आधार मनुस्मृति ही है। जाति पंचायत ही क्यों समस्त जातीय पंचायतें अपने सामाजिक फैसलों में मनु के नियमों का पालन करते देखी जाती हैं। उदाहरण देखें–पुत्री को पिता की सम्पत्ति में अधिकार का फैसला जाति पंचायतों के अनुसार कोई सोचनीय विषय ही नहीं है। अर्थात पिता की सम्पत्ति में केवल पुत्रों का अधिकार होता है। पक्ष ये है कि ऐसे फैसले जिनको हमारा भारतीय संविधान दूसरे नजरिये से देखता है, का विचार इन पंचायतों को कहां से प्राप्त होता है।दरअसल ये विचार इन्हें मनुस्मृति से मिलता है, जो भारतीय जनमानस मे समाया हुआ है। वास्तव में भारत में परंपरागत सामाजिक न्याय प्रणाली निम्न तीन बिंन्दुओं पर आधारित होती है–

1.अंधविश्वास एंव कर्मकाण्ड।
2. जातिगतविभेद।
3.लैगिंक असमानता।

इस प्रणाली पर विश्वास या श्रद्धा का मुख्य आधार एंव वाहक धार्मिक ग्रन्थ है, जो इन विश्वासों की पुष्टि करने के साथ ही साथ स्थापित एव जनमानस तक प्रमाणित भी करता है। इन ग्रन्थों पर प्रश्न न उठे, इसलिए इन्हें ईश्वर द्वारा लिखित कहा गया। ऐसा करने का एकमात्र लक्ष्य यही था, कि किसी जाति विशेष, लिंग विशेष को बिना मेहनत सुख सुविधा मुहैया कराया जा सके ज्ञातव्य है, कि ऐसा विश्व के अन्य समुदाय में भी ऐसा होता था। ये ग्रन्थ ब्राह्मण का सर्वश्रेष्ठ और अन्य को मुक्त गुलाम बनाने की ओर प्रेरित करते है। गौरतलब है कि भारत में जातीय श्रेष्ठता का आधार जन्म

है न कि कर्म (मनुस्मृति अध्याय 10 लोक क्रमांक 129 अवलोकन करें) किसी भी शुद्र को संपति का संग्रह नही करना चाहिये चाहे वह इसके लिए कितना भी समर्थ क्यों न हो, क्योंकि जो शुद्र धन का संग्रह कर लेता है वह ब्राह्णों को कष्ट देता है। (मनुस्मृति अध्याय 1 लोक 87से 91 अवलोकन करें)ब्राह्मणों के लिए उसके अध्ययन–अध्यापन यज्ञ करने दूसरों से यज्ञ कराने दान लेने एवं देने का आदेश दिया। लोगों कि रक्षा करने, दान देने, यज्ञ करने, पढने एव वासनामयी वस्तुओं से उदासीन रहने का आदेश क्षत्रियों को दिया। मवेशी पालन ,दान देने, यज्ञ कराने, पढाने, व्यापार करने धन उधार देने तथा खेती का काम करने की जिम्मेदारी वैश्यों को दी गई। ईश्वर ने शूद्र को एक कार्य दिया है, कि अपने से निम्नवर्णों की बिना दुर्भाव किये सेवा करना । भारतीयसमाज को अग्रेंजी उपनिवेश से आजादी मिलने के बाद सामाजिक असमानता और संघर्ष को दूर करने हेतु आधुनिक भारत में दो सामाजिक न्याय की अवधारणाएं विकासित हुई–

1. गांधीवादी सामाजिक न्याय की अवधारणा
2. अम्बेडकरवादी सामाजिक न्याय की अवधारणा

1. **गांधीवादी सामाजिक न्याय की अवधारणा–**महात्मा गांधी अपने आपको प्रगतिशील एवं आधुनिक मानते थे। वे आधुनिक न्याय प्रणाली को तो मानते थे लेकिन जातीय और धार्मिक ऊँच–नीच को भी मान्यता देते थे। वे ये तो मानते थे कि सभी जातियों को आपस में मिलने –बैठने का अधिकार होना चाहिए, छुआछूत की भावना का खात्मा होना चाहिए, लेकिन वे जाति आधारित जातिगत गंदे कामों को मन लगाकर करते हो तो तुम्हारा अगला जन्म ऊँची जाति में होगा। इस प्रकार वे पुनर्जन्म में विश्वास करते थे। एक खास वर्ग के नेता इस सिद्धान्त को मानते है। अब इस सिद्धान्त को दक्षिणपंथी विचारधारा के नाम से भी जाना जाता है।
2. **अम्बेडकरवादी सामाजिक न्याय की अवधारणा–** डॉ0 अम्बेडकर का सामाजिक न्याय का सिद्धान्त प्राकृतिक न्याय के अवधारणा के ज्यादा नजदीक है। डॉ0 अम्बेडकर गांधीवादी न्याय के सिद्धान्त को एक छल कहते थे। वे मानते है कि जिस सामाजिक न्याय के सिंद्धान्त में जातिगत ऊँच–नीच, कट्टरता, लिंग–भेद, पुनर्जन्म की कल्पना को मान्यता दी जाती है। वह सामाजिक न्याय हो ही नहीं सकता। वे इसे ब्राह्मणवादी न्याय का सिंद्धान्त कहते है क्योंकि इस सिद्धान्तमें किसी जाति विशेष , लिंग विशेष का हित सुरक्षित हैं। इसलिए डॉ0 अम्बेडकर जिस सामाजिक न्याय की अवधारणा का प्रतिपादन करते हैं वे नस्ल भेद, लिंग भेद और क्षेत्रीयता के भेद से मुक्त है। इस अवधारणा मे समाज के कमजोर वर्ग के साथ न केवल न्याय हो , बल्कि उनके अधिकार और हित सुरक्षित हो । संविधान निर्माण में उनके इस सिद्वान्त की भूमिका स्पष्ट देखी जा सकती है।

डॉ0 अम्बेडकर का जीवन भारत के सामाजिक सुधारों के लिए समर्पित था। उन्होंने जातिवाद और अस्पृश्यता के निवारण के लिए जीवनभर कार्य किया। वे राष्ट्रवादी तथा देशभक्त थे और वे भारतीय स्वाधीनता के प्रबल समर्थक थे। परन्तु स्वाधीनता के राजनीतिक पक्ष को सुदृढ़ करने पर जोर देते थे। उनके अनुसार राजनीतिक स्वाधीनता से पूर्व सामाजिक सुधार आवश्यक है। वे सामाजिक व्यवस्था में पूर्ण परिवर्तन चाहते थे, उन्हें अपने जीवन में अनेकों बार अपमान सहना पड़ा था। वस्तुतः जीवन के प्रारम्भ में उन्हें घोर अपमान भुगतना पड़ा था। इससें उनके मन में सवर्णों के प्रति कटुता उत्पन्न हो गयी थी। उन्हें हिन्दुओं के व्यवहार और ब्रिटिश शासन की नीति से यह पूर्ण ज्ञान हो गया था, कि सभी अछूतों के प्रति उदासीन है। तथा अछूत सभी प्रकार से कमजोर है। वे सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक क्षेत्रों में सवर्णों का मुकाबला करने में असमर्थ हैं। इसलिए अछूतों के उद्धार तथा उत्थान के लिए उन्होंने अपना जीवन समर्पित कर दिया, इसलिए उन्हें दलितों का मसीहा कहा जाता है।

डॉ0 अम्बेडकर ने हिन्दू सामाजिक व्यवस्था का विश्लेषण किया तथा यह कह कर आलोचना की, कि यह व्यवस्था आसमानता पर आधारित है। जाति, वर्ग, कुल, तथा वंश के आधार पर इस पिरामिड रूपी व्यवस्था के शीर्ष पर एक वर्ग अपना अधिपत्य तथा वर्चस्व स्थापित किये हुए है। जिसके कारण अन्य वर्ग अपने सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, तथा राजनीतिक अधिकारों से वंचित हैं। यही

कारण है, कि उनका शोषण हो रहा हैं। इसी प्रवृत्ति के कारण हिन्दू समाज का निरन्तर विघटन हो रहा है। आपसी द्वेष तथा तनाव के कारण संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो रही है। जो राष्ट्रीय एकता के लिए गम्भीर खतरा उत्पन्न कर रही हैं। अतः अम्बेडकर ने इस दिशा में चिन्तन किया, तथा जातिगत भेद–भाव को समाप्त करके राष्ट्रीय एकीकरण की दिशा में महान प्रयत्न किया।

आज भी भारतीय जेलों में विचाराधीन कैदी, भारी संख्या में अनुसूचित जाति/जनजाति और अल्पसंख्यक वर्ग से आते हैं। तमाम आंकडों के अनुसार वे अपनी आबादी में बहुत बड़ी प्रतिशतता है। भारतीय शासन के आरक्षित पदों को या तो बैकलाग में छोड़ दिया जाता है या फिर योग्य उम्मीदवार नही मिला कहकर उच्च वर्ग के सक्षम वर्ग द्वारा भर दिया जाता है, भारतीय जनमानस द्वारा एक बलात्कार पीड़ित महिला को ही इसके लिए दोषी ठहराया जाता है, जिस देश के 40 प्रतिशत गरीब बच्चों से आज भी बाल श्रम लिया जाता है, उस देश में लगता है समाजिक न्याय आज भी कोसों दूर है। लेकिन इसका सुखद पहलू यह है कि आज की मीडिया, साहित्य और प्रगतिशील जगत इस मुद्दे को बार–बार सामाने लाता रहा रहा है। इससे सामाजिक न्याय के पक्ष में माहौल बना है। और जब यह माहौल सही मायनों में व्यवहाारिक धरातल पर कार्य रूप में परिणित हो जाय तब जाकर यह भारतीय समाज एक विकसित समाज कहलायेगा।

सामाजिक न्याय एवं दलितोद्धार सम्बन्धी अम्बेडकर के विचार–

डॉ0 अम्बेडकर हिन्दू धर्म में व्याप्त जाति व्यवस्था के घोर विरोधी थे। भारतीय हिन्दू समाज में व्याप्त अंधविश्वासों, रूढ़ियों और व्यर्थ के कर्मकाण्डों से समाज को मुक्ति दिलाने के साथ ही समाज के वंचित वर्गों को समाज की मुख्य धारा में लाने के लिए अपने जीवन पर्यन्त वैचारिक संघर्ष किया। आपने हिन्दू समाज में व्याप्त अस्पृश्यता और कर्मकाण्डीय जाति व्यवस्था के उपर अनेकों प्रश्न उठाये साथ ही उनका उत्तर भी दिया। हिन्दू धर्म में व्याप्त अस्पृश्यता के लिए अम्बेडकर ने हिन्दू धर्म को जिम्मेदार माना। वे कहते हैं कि '' हिन्दू धर्म अपने ही समाज के एक वर्ग के व्यक्तियों के प्रति अस्पृश्यता का व्यवहार करने का आदेश देने के साथ–साथ अस्पृश्य व्यक्तियों को इस स्थापित व्यवस्था के विरोध में न केवल विद्रोह करने से रोकता है, अपितु उन्हें यह आदेश देता है, कि उनका यह कर्तव्य है, कि वे इस दैवीय एवं पवित्र व्यवस्था को बनायें रखें।''

डॉ0 अम्बेडकर का मानना था कि '' जाति प्रथा से लड़ने के लिए चारों तरफ से प्रहार करना होगा। जाति ईंट की दीवार जैसी कोई भौतिक वस्तु नहीं है। यह एक विचार है, एक मनःस्थिति है जिसकी नींव धर्मशास्त्रों की पवित्रता में है। वास्तविक उपाय यह है, कि प्रत्येक स्त्री –पुरूष को शास्त्रों के बन्धन से मुक्त किया जाय, उनकी पवित्रता को नष्ट किया जाय, इसका सही उपाय है, '' अन्तर्जातीय विवाह' तभी वे जाति–पांति का भेदभाव बन्द करेंगे। जब जाति का धार्मिक आधार समाप्त हो जायेगा, तो इसके लिए रास्ता खुल जायेगा। खून के मिलने से ही अपनेपन की भावना पैदा होगी और जब तक यह अपनत्व की बन्धुत्व की भावना पैदा नहीं होगी, तब तक जाति प्रथा द्वारा पैदा की गई अलगाव की भावना समाप्त नहीं होगी।'' अस्पृश्यता को समाप्त करने के लिए अम्बेडकर ने मार्क्सवादी समाजशास्त्र का सहारा लेते हुए लिखा है कि'' अस्पृश्यता की समस्या वर्ग–संघर्ष का एक मामला है।'' अपने इन प्रयासों के द्वारा डॉ0 अम्बेडकर ने अस्पृश्यों में जनजागृति लाने के साथ हिन्दू समाज में क्रांति लाने और उसके हृदय में परिर्वतन करने के लिए भी अनेक सत्याग्रह आन्दोलन को संगठित किया और महार आनुवंशिक कार्यभार कानून (वेतन प्रणाली, बंधुआ मजदूरी और दासता प्रणाली) को समाप्त करने का भी प्रयास किया। डॉ0 अम्बेडकर द्वारा संगठित सत्याग्रह आन्दोलन कानूनों पर अमल कराने के लिए आयोजित किये गये थें। उदाहरणतः 1927 में महाड़ तालाब सत्याग्रह का मुख्य उद्देश्य अस्पृश्यों के सार्वजनिक तालाबों से पानी पीने के मानवीय अधिकार को लागू करवाया था। 1930 में नासिक के कालाराम मंदिर में प्रवेश का उद्देश्यअस्पृश्यों को सार्वजनिक स्थानों में प्रवेश दिलाना था। मार्च 1928 में मुम्बई विधान सभा में महार आनुवंशिक कार्य–भार विधेयक का उद्देश्य महारों को खानदानी पेशे से मुक्ति दिलाना था।

डॉ0 अम्बेडकर ने अपने समाज दर्शन की स्थापना में सर्वप्रथम अस्पृश्यता की जड़ वर्ण व्यवस्था पर ऐतिहासिक, नैतिक व तार्किक रूप से प्रहार किया, तथा यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि वर्ण व्यवस्था पूर्णतः अवैज्ञानिक, अन्यायपूर्ण, अमानवीय एवं शोषणकारी सामाजिक योजना है। यही वर्ण व्यवस्था कालान्तर में जाति व्यवस्था में परिवर्तित होकर अपरिवर्तनीय हो गयी। अतः जाति व्यवस्था हिन्दू संस्कृति एवं धर्म का ही देन है। जिसने समाज एवं देश की सांस्कृतिक व राजनीतिक एकता को खण्डित कर दिया। इन सभी असमानताओं एवं शोषण से मुक्ति के रूप में वे बौद्व धर्म का समर्थन करते थें। इनका मानना था कि भारतीय धर्मों में केवल बौद्व धर्म ही धर्म के सच्चे आदर्शों के अनुकूल है। बौद्व धर्म न केवल मानव एवं मानव के मध्य समानता थी, अपितु स्त्री एवं पुरूष में भी समानता का समर्थन करता है। इसलिए बाबा साहब हिन्दू धर्म को छोड़ने व बौद्व धर्म को अपनाने की बात करते थे। इनका कहना था कि अपने ऊपर हो रहे अन्यायों, व अत्याचारों व शोषण से मुक्ति पाने का सर्वश्रेष्ठ मार्ग बौद्व धर्म की शरण में जाना है। डॉ0 अम्बेडकर ऐसे प्रथम भारतीय चिन्तक, समाज सुधारक एंव विचारक थे, जिन्होंने समतावादी सामाजिक व्यवस्था अर्थात् स्वतंत्रता, समानता एवं बन्धुत्व के आदर्शों पर आधारित समाज व देश की कल्पना करते थे तथा ऐसी व्यवस्था की स्थापना के लिए वे जीवन भर संघर्ष भी करते रहे।

डॉ0 भीमराव अम्बेडकर न केवल भारतीय समाज के दलितों एवं कमजोर वर्गो के उत्थानकर्ता थे, बल्कि भारतीय समाजिक व्यवस्था में महिलाओं के प्रति हो रहे लैंगिक असमानता के विरूद्व जीवनपर्यन्त संघर्ष करते रहे। उनका प्रमुख उद्देश्य था, भारतीय समाज व्यवस्था का पुर्ननिर्माण करना। उनका मानना था, कि लैंगिक असमानता कृत्रिम रूप से भारतीय सामाजिक व्यवस्था द्वारा बनायी गयी है। भारतीय समाजिक व्यवस्था में महिलाओं को न केवल पुरूष के अधीन माना गया है, बल्कि उन्हें हमेंशा के लिए ऐसे साँचे में ढ़ाला जाता है, जिससे वे जीवनपर्यन्त पुरूषों के नियंन्त्रण में रहें। हिन्दू समाज में महिलाओं की निम्न स्थिति से चिंतित डॉ0 अम्बेडकर ने न केवल समाज में महिलाओं के निम्न प्रस्थिति को ऊँचा उठाने के लिए जमीनी स्तर पर प्रयास किया, बल्कि भारतीय धर्म ग्रंथ, और स्मृतियाँ इसके लिए जिम्मेदार है। उन्होंने भारतीय इतिहास का गहराई से अध्ययन किया और पाया कि मनु के पूर्व महिलाओं की समाजिक प्रस्थिति काफी उच्च थी। महिलाओं के पुरूषों के समान सामाजिक प्रस्थिति प्राप्त थी। लेकिन मनु के समय महिलाओं को शिक्षा, विधवा पुर्नविवाह, आर्थिक, स्वतंत्रता पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। महिलाओं को तलाक का अधिकार नही था, जबकि पुरूषों को तलाक का अधिकार था। मनुस्मृति में कहा गया है कि ''महिलाओं को कभी भी स्वतंत्र नही छोड़ना चाहिए।'' मनुस्मृति महिलाओं को किसी भी तरह की आजादी नहीं देती थी। इसलिए बाबा साहब डॉ0 अम्बेडकर महिला सशक्तिकरण के लिए कई कदम उठाए। महिलाओं को और अधिक अधिकार देने तथा उन्हे सशक्त बनाने के लिए सन् 1951 में उन्होने' हिंदू कोड बिल'' संसद में पेश किया। जिसके तहत स्त्रियों को विवाह– विच्छेद (तलाक) का अधिकार, हिंदू कानून के अनुसार विवाहित व्यक्ति के लिए एकाधिक पत्नी रखने पर प्रतिबन्ध और विधवाओं तथा आविवाहित कन्याओं को बिना शर्त पिता या पति की संपत्ति का उत्तराधिकारी बनने का हक, हिन्दू विवाह और विशेष विवाह का अधिकार प्राप्त हो सके। डॉ0 अम्बेडकर का मानना था, कि सही मायने में प्रजातंत्र तब आयेगा जब महिलाओं को पैतृक संपति में बराबरी का हिस्सा मिलेगा और उन्हें पुरूषों के समान अधिकार दिये जायेंगे। डॉ0 अम्बेडकर का दृढ़ विश्वास था कि महिलाओं की उन्नति तभी सम्भव होगी जब उन्हें घर परिवार और समाज में समाजिक बराबरी का दर्जा मिलेगा। शिक्षा और आर्थिक उन्नति उन्हें सामाजिक बराबरी दिलाने में मदद करेगी।

डॉ0 भीमराव अम्बेडकर का मानना था लैंगिक असमानता का विरोध करने के लिए महिलाओं को शिक्षित करना अति आवश्यक है, इससे महिलाओं में आत्मनिर्भरता आयेगी और उनकी समाजिक प्रस्थिति भी ऊँची होगी। आपने महिलाओं को कहा कि वे अपने बच्चों को स्कूल भेजें और उन्हें महत्वाकांक्षी बनाये। साथ ही साथ भारतीय सामाजिक व्यवस्था का पुर्ननिर्माण आधुनिक लोकतंत्र में

स्वतंत्रता, समानता और बनधुत्व जैसे लोकतांत्रिक मूल्यों के आधार पर होना चाहिए ताकि भारत में लैंगिक न्याय पर आधारित समाज की स्थापना हो सके।

भारत में सामाजिक न्याय के प्रेरक डॉ0 अम्बेडकर ने भारतीय समाज जीवन का अध्ययन किया। भारतीय समाज में जाति, वर्ण, धर्म के आधार पर छुआछूत, असमानता शोषण विद्यमान था। हिन्दू धर्म में विद्यमान वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत शूद्रों की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। इन्हें अछूत माना जाता था। ये आर्थिक रूप से दरिद्र, राजनीतिक रूप में दबे हुए, धार्मिक रूप में बहिस्कृत रहे हैं। उन्हें दास बनाकर दण्डित किया जाता था। सभी मानवाधिकारों से वंचित रखा जाता था। अम्बेडकर ने हिन्दू सामाजिक व्यवस्था पर जोर दिया। उन्होंने प्रचलित अस्पृश्यता, धर्म द्वारा बनायी गयी दुर्भावनाओं, असहनीय प्रथाओं, परम्पराओं तथा प्रचलित वर्ण व्यवस्था की पुरजोर आलोचना कर समाज के पिछड़े व दलितों में आत्मविश्वास, आत्मनिर्भरता, आत्मज्ञान, समानता और स्वतंत्रता की भावना भर कर समाज में एक नये युग की शुरूआत की।

डॉ0 अम्बेडकर के अनुसार सामाजिक न्याय का आधार सभी मानव के बीच समानता, उदारता तथा भाई –चारे की भावना है। सामाजिक न्याय का उद्देश्य, जाति, रंग, लिंग, शक्ति, स्थिति तथा सम्पत्ति आदि पर आधारित सभी असमानता को दूर करना है। अम्बेडकर के अनुसार मनुष्य द्वारा बनाई असमनताओं को कानून, नैतिकता तथा जागरूकता के द्वारा समाप्त कर सामाजिक न्याय की स्थापना की जानी चाहिए। परिणामस्वरूप भारतीय संविधान पर अम्बेडकर के सामाजिक न्याय सम्बन्धी विचारों का दोहरा प्रभाव दिखाई पड़ता है। संविधान की प्रस्तावना में न्याय, स्वतत्रता, समानता एवं बन्धुत्व जैसे शब्दों का प्रयोग सामाजिक न्याय पर अम्बेडकर की धारणा के अनुरूप है। उनके प्रयासों से ही संविधान में अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजांतियों एंव पिछड़े वर्गो को सामाजिक न्याय की प्राप्ति के लिए विशेष प्रावधान किये गये समानता (अनु014), अस्पृश्यता (अनु0 17), शोषण की समाप्ति (अनु0 23–24) आदि के साथ ही अनुच्छेद 39, 39क, 46, 330, 332, 338 एवं 340 आदि अनुच्छेदों पर डॉ0 अम्बेडकर के न्याय के सामाजिक विचारों का गहरा प्रभाव पड़ा। डॉ0 अम्बेडकर का सामाजिक न्याय सिद्वान्त निम्न सामाजिक बाधाओं पर आधारित होकर सामाजिक तत्वों के हिले–मिले तन्तुओं को विखेरता है –

1. सामाजिक बहिष्कार स्वरूप।
2. पुरूष प्रधान सामाजिक व्यवस्था।
3. जाति आधारित व्यवसाय की बाध्यता एवं अवमानना।
4. सम्पत्ति या भूमि का असमान वितरण।
5. महिलाओं का पिता व पति की सम्पत्ति में अधिकार।

भारतीय संविधान इस मामले में सर्वोच्च और उत्कृष्ट है। इसमें सामाजिक न्याय की पूर्ति में लिये गये इन बाधाओं को दूर करने का प्रयास किया गया है। सामाजिक न्याय पाने की दिशा में विधायिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका एंव मीडिया सहित तमाम केन्द्रों के पास कहीं न कहीं गलत क्रियान्वयन और असंतुलन के कारण सफल नहीं हो पा रहे हैं। जरूरत और समय की माँग है, कि उचित और संतुलित नीतियों एवं व्यवहारों को लागू किया जाए जिससे कि सामजिक न्याय को सामाजिक प्रगति का हिस्सा बनाया जा सके। अरस्तू के अनुसार व्यक्ति समाज का सदस्य तो हो सकता है लेकिन नागरिक वह तभी हो पायेगा जबवह राज्य की राजनिति में सक्रीय रूप में सहभागी हो। और इसी सदर्भ में सक्रीय रूप से अपना योगदान भी करता रहे। इस संदर्भ में अरस्तू कहते हैं कि किसी भी राज्य या समाज में किसी व्यक्ति का जो सक्रीय योगदान होता है उसके समानुपात में समाज की सम्पत्ति का उचित वितरण न्याय कहलाता है और उसका निषेध सामाजिक अन्याय कहलाता है। लेकिन यह एक आर्दश स्थिति है। व्यवहार में यह कहीं पर भी लागू नहीं हैं क्योंकि व्यक्ति की सदस्यता का आंकलन ठीक–ठीक करना असम्भव है। इसक कोई पैमाना नहीं है इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि सामाजिक न्याय के नारे ने विभिन्न समाजों में विभिन्न तकनीकों को अपने लिए गरिमामय जिन्दगी की माँग करने और उसके लिए संघर्ष करने के लिए प्रेरित

किया। खास इस वंचित तबकों में सैद्वान्तिक विमर्श में भी समाजवाद, कम्युनिस्ट सहित अम्बेडकरवाद जैसे सामाजिक न्याय में बहुत सारे आयाम जोड़ते गये हैं। यहाँ यह बताना आवश्यक है, कि विकसित समाज की तुलना में विकासशील समाजों में सामाजिक न्याय का संघर्ष रक्तरंजित है। इस प्रकार संघर्षो के परिणामस्वरूप समाज में बुनयादी परिवर्तन हुए हैं।

बाबा साहब डॉ0 बी0आर0 अम्बेडकर दलितोद्धार के सम्बन्ध में अपने विचारों और अपने कार्यों का जो स्वरूप समाज के सामने प्रत्यक्ष रूप में प्रस्तुत किया वह निम्नलिखित है–

1. हिन्दू वर्ण व्यवस्था से सम्बन्धित मनु के विचारों की आलोचना की।
2. जाति व्यवस्था का विरोध कर समतामूलक समाज की स्थापना का विचार दिया।
3. अछूतों को अस्पृश्यता सम्बन्धी हीनता की भावना को त्याग कर आत्मसम्मान से रहने का विचार दिया।
4. दलितों के लिए पृथक निर्वाचन के लिए प्रथम एवं द्वितीय गोलमेल सम्मेलन में मंजूरी प्राप्त कर ली थी।
5. अछूतों को सभी सार्वजनिक स्थानों के प्रयोग का अधिकार दिलाया।
6. अछूतों के उद्धार के लिए अनेक कानूनी प्रावधानों की संस्तुति करवाया।
7. अम्बेडकर द्वारा स्वयं धर्म परिवर्तन कर लोगों को बौद्ध धर्म स्वीकार करने के लिए निर्देशित किया।
8. श्रमिकों का मिल–मालिकों द्वारा शोषण न हो,इसके लिए दल बनाकर प्रोत्साहित किया।

निष्कर्ष :

डॉ0 अम्बेडकर को हम सामाजिक न्याय का मसीहा कहने में कोई हिचक नहीं कर सकते हैं। वह उस मूंक एवं शोषित वर्ग की आवाज बने जो सदियों से गुलामी की बेड़ियों में जकड़ा था। जिसके पुनः उद्वार की कोई आशा नहीं थी। डॉ0 अम्बेडकर उस वर्ग के लिए एक मसीहा साबित हुए, जिनका प्रयत्न अधिकार वंचित वर्गों को विकास की मुख्यधारा से जोड़ना था। अम्बेडकर देश को आजाद कराना तो चाहते थे, लेकिन वे देश की राजनीतिक स्वतंत्रता के पूर्ण सामाजिक स्वतंत्रता एवं सामाजिक न्याय लाना चाहते थे। वे यह नहीं चाहते थे कि देश सत्ता एक अधिनायक एवं शोषक वर्ग से हस्तांतरित होकर दूसरे उच्च जातियों के हांथों में चली जाये। उनके अनुसार मात्र राजनीतिक स्वतंत्रता से ही भारत देश स्वतंत्रत नहीं होगा क्योंकि राजनीतिक स्वतंत्रता मिलने के बाद उच्च जातियाँ पुनः सत्ता पर प्रभुत्व स्थापित कर नीचे की जातियों को गुलाम बना लेगी।

डॉ0 अम्बेडकर स्वतंत्रा समानता एवं न्याय को सबसे पहले प्रमुखता दिये। आज जिस प्रकार से भारतीय जेलों में विचाराधीन कैदी भारी संख्या में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति एवं अल्पसंख्यक वर्गों से आते हैं। इसकी अपेक्षा उच्च वर्ग एवं सक्षम वर्ग से आने वाले कैदियों की संख्या कम है। जिस प्रकार आरक्षण के खाली पदों को योग्य उम्मीदवार न कहकर या तो खाली या फिर सक्षम वर्गो द्वारा भर दिया जाता है। जिस प्रकार एक बलात्कार पीड़ित महिला को इसके लिए दोषी ठहराया जाता है। जिस प्रकार देश 40 प्रतिश्त गरीब बच्चों से बाल श्रम कराया जाता है। ऐसे देशों में लगता है कि सामाजिक न्याय आज भी कोसों दूर है। आज की मीडिया साहित्य और प्रगतिशील जगत इस मुद्दे को बार–बार सामने लाता है। इससे सामाजिक न्याय का पक्ष और माहौल बना रहे। इस विषय पर भारत के कर्णधारों को गम्भीरता पूर्वक सोंचना पड़ेगा। तथा समाज और राष्ट्र को विकास की मुख्यधारा से जुड़कर राष्ट्र का विकास सम्भव हो पायेगा।

संदर्भ :

1. अम्बेडकर, बी0आर0 : बाबा साहब डॉ0 अम्बेडकर सम्पूर्ण वाड्मय, खण्ड–01 से 21 तक, प्रकाशक डॉ0 अम्बेडकर प्रतिष्ठान सामाजिक न्याय एवं अधिकारित मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली 2014, ।
2. महाजन एवं महाजन : भारतीय समाज के परिपेक्ष्य, विवेक प्रकाशन जवाहर नगर, दिल्ली 2007 पृ0–239।

3. शर्मा, बी0एम0 शर्मा, राम कृष्ण दत्त : भारतीय राजनीतिक विचार, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर नई दिल्ली, 2005 पृ0 368।
4. शास्त्री, शंकरानन्द : पूना पैक्ट बनाम गाँधी, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली 2011, पृ0 94
5. गुप्ता, विश्व प्रकाश एवं गुप्ता, मोहनी : भीमराव अम्बेडकर व्यक्ति और विचार, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली 2001।
6. मेघवाल, कुसुम : भारतीय नारी के उद्धारक बाबा साहब डॉ0 बी0आर0 अम्बेडकर, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994, पृ0 117।
7. जाटव, डी0आर0 : डॉ0 अम्बेडकर व्यक्तित्व एवं कृतित्व, समता साहित्य सदन जयपुर, 1933,पृ0 136, 204, 205।
8. कुवेर, डब्लू एन0 : डॉ0 भीमराव अम्बेडकर एक आलोचनात्मक अध्ययन, पीपुल्स पब्लिसिंग हाउस, नई दिल्ली 1973।
9. कुमार, देवेन्द्र : भारत की सामाजिक क्रान्तिकारी, दलित साहित्य प्रकाान संस्था, सम्यक प्रकाान, नई दिल्ली 2012।
10. Internet data collected dated 01-02-2022 to 03-02-2022.

भारतीय राज्य का कल्याणकारी आयाम

*डॉ. राजबहादुर कुशवाहा**

आज के समय में राज्य के कल्याणकारी पहलू पर अत्यधिक जोर दिया जाता है। दुनिया के अधिकांश देश, विशेष तौर पर विकसित देश, व्यापक स्तर पर अपने नागरिकों को कल्याणकारी सेवाएँ मुहैया करवाते है। राज्य अपने नागरिकों को कल्याणकारी सेवाएँ नकद और वस्तु के रूप में प्रदान करते है। 20वीं शताब्दी के आरम्भ में अनेक विहानों ने माना है कि जब कोई सामाजिक वर्ग व समूह शिक्षा, स्वास्थ्य, भोजन, आवास, जैसी अपनी आधारभूत व बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा करने में असमर्थ हो, तो उस स्थिति में राज्य–विशेषकर लोकतान्त्रिक राज्य का यह कर्त्तव्य है कि वह नागरिकों के बेहतर व आदर्श जीवन के लिए आवश्यक वातावरण का निर्माण करे जिससे सभी नागरिक आधारभूत सुविधाओं का लाभ उठा सके। अर्थात् समकालीन दौर में राज्य का परम कर्त्तव्य अपने नागरिकों के अधिकारों और जीवन की सुरक्षा के साथ–साथ उनके कल्याण को भी सुनिश्चित करना है।

कल्याणकारी राज्य ऐसा राज्य है, जो अपने नागरिकों को नागरिक स्वतन्त्रताएँ प्रदान करता है, दूसरी ओर वह उनकी बुनियादी सामाजिक– आर्थिक आवश्यकताओं का ध्यान रखता है, साथ ही यह उनके लिए सामाजिक सुरक्षा की उपयुक्त व्यवस्था करता है। यह संकल्पना आधुनिक युग की देन है। बीसवीं शताब्दी में जब राज्य ने अपने नागरिकों के कल्याण की दिशा में सकारात्मक भूमिका निभानी शुरू कर दी तब कल्याणकारी राज्य का उदय हुआ। अर्थात् जब राज्य ने अपने कार्यक्षेत्र का विस्तार करके नागरिकों के कल्याण का दायित्व संभाल लिया, तब कल्याणकारी राज्य का आविर्भाव हुआ। दूसरे विश्व युद्ध के दौरान इस विचार को इंग्लैंड में विशेष लोकप्रियता मिली। 1942 में बैवरिज रिपोर्ट के प्रणेता विलियम बैवरिज ने कल्याणकारी राज्य के विचार की व्याख्या करते हुए अपनी प्रसिद्ध कृति 'द पिलर्स ऑफ सिक्यूरिटी' के अन्तर्गत यह तर्क दिया कि राज्य का उद्देश्य पाँच महाबुराइयों का अन्त करना है : अभाव, रोग, अज्ञान, दरिद्रता और बेकारी। कल्याणकारी राज्य के उदय से पहले 'सेवाधर्मी राज्य' की संकल्पना के अन्तर्गत केवल स्वास्थ्य व शिक्षा जैसी बुनियादी सामाजिक सेवाओं पर बल दिया जाता था, परन्तु कल्याणकारी राज्य ने सब नागरिकों के लिए बिना किसी भेदभाव के सर्वोत्तम सेवाएँ प्रदान करने का लक्ष्य अपने सामने रखा। इसके अलावा कराधान के माध्यम से संपदा का पुनर्वितरण भी कल्याणकारी राज्य का उद्देश्य बन गया।

प्राचीन काल से ही भारत में राज्य की अवधारणा में लोक–हित या लोक–कल्याण के बीज पाये जाते हैं। प्राचीन युग में राज्य को नैतिक कल्याण का साधन माना जाता था। रामायण काल में तो रामराज्य की अवधारणा इसी लोककल्याणकारी राज्य के सिद्धान्त पर आधारित थी। महाभारत के शान्ति पर्व में लिखा है ''राज्य को प्रजा के नैतिक जीवन का जियमन, नियन्त्रण तथा पथ–प्रदर्शन करना चाहिए और पृथ्वी को मनुष्यों के विकास के योग्य एवं सुख–सुविधाओं से पूर्ण बनाना चाहिए। महाभारत में महर्षि व्यास ने तो यहाँ तक लिखा है कि जो राजा अपनी प्रजा को पुत्रवधू समझकर उसके चतुर्दिक विकास का प्रयास नहीं करता है, वह नरकगामी होता है। इसी कथन की पुनरावृत्ति हमें गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित 'रामचरितमानस' में मिलती है।

''जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी।
सो नृप अवसि नरक अधिकारी।''

मध्यकालीन भारत में भी राज्य का लोक कल्याणकारी स्वरूप विद्यमान था। अलाउद्दीन खिलजी एवं मुहम्मद तुगलक जैसे सुल्तानों ने शिक्षा व दानशीलता को प्रोत्साहित एवं उन्नत किया।

---

* असिस्टेंट प्रोफेसर-राजनीति विज्ञान, अतर्रा पी.जी. कॉलेज, अतर्रा (बाँदा) उ.प्र.

फिरोजशाह तुगलक एवं शेरशाह सूरी ने जरुरतमंदों एवं बेरोजगारों की सहायता की। निर्धन मुसलमानों की कन्याओं के विवाहों की व्यवस्था की तथा सभी वर्गों के लिए अस्पतालों की व्यवस्था की। शेरशाह सूरी ने कृषि, सड़क, पुल आदि का निर्माण जनहित में करवाया। अस्पताल, भिक्षुगृहों एवं सुंदर बाग का निर्माण करवाया जिसके कारण आज भी शेरशाह सूरी को कल्याणकारी राज्य की स्थापना करने हेतु आज भी याद किया जाता है। मुगल शासक अकबर ने भी कई लोक कल्याण के कार्य किये। निर्धन माता–पिता को उनकी पुत्रियों के विवाह तथा दहेज के लिए अनुदान देना, अकाल पीड़ित लोगों के मध्य खाद्यान्नों का वितरण, प्राकृतिक विपदाओं से ग्रस्त लोगों को कर्ज आदि लोकहित के कार्य अकबर ने किया। अकबर के उत्तराधिकारी जहांगीर को सबको सामाजिक न्याय देने का श्रेय जाता है।

ब्रिटिश काल में भी अंग्रेजी सरकार ने कई जनहित के कार्य किये। कुछ सामाजिक कार्य जैसे सती प्रथा पर प्रतिबंध विधवाओं का पुनः विवाह की अनुमति क्रमशः 1529 एवं 1856 में पारित अधिनियमों द्वारा किये गये। ब्रिटिश सरकार को लोक कल्याणकारी कार्यों जैसे–रेल, सड़क, सिचाई, शिक्षा, जनस्वास्थ्य एवं आवास आदि का विस्तार करने एवं उनको व्यापक बनाने का श्रेय जाता है। हंटर आयोग ने 1882 में प्रस्तावित किया था कि प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा का विस्तार एवं उसे उन्नत किया जाए, प्रौद्योगिकी शिक्षा एवं प्रायोगिक शिक्षा को प्रोत्साहित किया जाए। जनस्वास्थ्य के क्षेत्र में 'शाही आयोग' 1859 में, जो भारतीय सेना की स्वास्थ्य दशाओं का परीक्षण करने हेतु नियुक्त किया गया था। उसने नागरिक जनसंख्या के स्वास्थ्य को सुधारने हेतु भी सिफारिशें की थी।

लंबे शोषणकारी औपनिवेशिक राज के कारण, स्वतन्त्रता के समय भारतीय राज्य अनेक प्रकार के राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक समस्याओं से घिरा हुआ था। देश की आबादी का एक बड़ा हिस्सा अपनी बुनियादी जरुरतों को पूरा कर पाने में पूर्णतः असमर्थ था, जिसके कारण पूरे भारत में अशिक्षा, गरीबी, कुपोषण, बेरोजगारी, भुखमरी जैसी गंभीर समस्याएं बड़े पैमाने पर फैली हुई थी। इन सभी चुनौतियों से निपटने के लिए भारतीय संविधान– निर्माताओं ने राज्य के कल्याणकारी आयाम को वरीयता दी और भारत के नए संविधान में अनेक कल्याणकारी प्रावधानों को सम्मिलित किया। सर्वप्रथम, संविधान की प्रस्तावना में समाजवाद, सामाजिक और आर्थिक न्याय और समानता जैसे तीन शब्दों का उपयोग किया गया है, जो यह दर्शाता है कि राज्य जनकल्याण के क्षेत्र में केन्द्रीय भूमिका निभाएगा और एक समतावादी समाज की स्थापना करेगा।

इसके अलावा, प्रस्तावना में सामाजिक और आर्थिक न्याय जैसी दो अवधारणाओं का वर्णन राज्य के कल्याणकारी आयाम पर और अधिक बल देता है। सामाजिक न्याय के संदर्भ में, राज्य की यह जिम्मेदारी है कि वह समाज के पिछड़े और कमजोर वर्गों का प्रभुत्वशाली वर्गों के उत्पीड़न से बचाव करे और साथ ही, उन्हें समाज में समान दर्जा दिलवाने के लिए आवश्यक कानून और नीति का निर्माण करे। जिसके फलस्वरूप, समाज के सभी वर्गों को सम्मानपूर्वक और गरिमापूर्ण जीवन जीने का समान अवसर मिल सके।

स्वतन्त्रता के उपरान्त भारत ने जनहितकारी कार्यों पर पूरा ध्यान दिया है। संविधान–निर्माताओं ने राज्य के कल्याणकारी आयाम को वरीयता देने के उद्देश्य से भारत के नए संविधान में अनेक प्रावधानों को सम्मिलित किया। भारतीय संविधान में उल्लेखित नीति निदेशक तत्व राज्य से यह अपेक्षा करते है कि वह श्रमिकों, वृद्धों, महिलाओं, असहायों तथा अन्य सभी नियोग्यिताग्रस्त लोगों को गरिमापूर्ण जीवन प्रदान करे। इस क्रम में पण्डित जवाहर लाल नेहरु का मानना था– ''हमारा अन्तिम लक्ष्य सबके लिए सामाजिक आर्थिक न्याय एवं अवसर सहित वर्गहीन समाज ही हो सकता है– एक ऐसा समाज हो जो मानव जाति को उच्चतर भौतिक एवं सांस्कृतिक स्तरों की ओर उठाने, आध्यात्मिक मूल्यों, सहयोग, निस्वार्थ सेवा भावना को परिस्कृत करने, स्नेह, सद्भाव एवं न्याय की इच्छा और अन्ततः एक विश्व व्यवस्था को जन्म देने के लिए नियोजित आधार पर संगठित हो।''

राज्य के नीति निदेशक तत्त्वों के अन्तर्गत अनुच्छेद 36 से 51 के अन्तर्गत ऐसे बहुत से प्रावधान किए गए है जिससे लोक कल्याण के कार्य को आगे बढ़ाया जाये। अनुच्छेद 38 में उल्लेख है कि राज्य सामाजिक कल्याण के प्रसार के लिए आवश्यक सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करेगा।

अनुच्छेद 39 से 51 तक उन तमाम नीतियों की चर्चा की गई है जिन्हें अपनाकर एक लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना की जा सकती है। इसके अन्तर्गग्त जीवन निर्वाह के पर्याप्त साधन, भौतिक साधनों का स्वामित्व, सामाजिक स्वास्थ्य में वृद्धि, बेकारी बुढ़ापे तथा अंग भंग की स्थिति में सार्वजनिक सहायता प्राप्त करने का अधिकार, कुटीर उद्योगों का विकास, कृषि तथा पशुपालन का विकास, बच्चों की सुकुमारावस्था के दुरुपयोग पर रोक, सामाजिक और आर्थिक न्यास पर आधारित सामाजिक व्यवस्था, पुरुषों व स्त्रियों को समान कार्य के लिए समान वेतन, सामान्य न्याय और निःशुल्क विधिक सहायता, कुछ अवस्थाओं में काम, शिक्षा और लोक सहायता पाने का अधिकार, श्रमिकों के लिए निर्वाह मजदूरी, बालकों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का उपबन्ध इत्यादि प्रावधान किए गये हैं।

इस प्रकार राज्य के नीति निदेशक तत्त्वों के अन्तर्गत वे सभी बाते निहित है जो एक कल्याणकारी राज्य के लिए आवश्यक है। केन्द्रीय और राज्य सरकारों ने अपने–अपने साधनों के अनुसार इन निर्देशों को लागू करने का पूरा प्रयास किया है और कर भी रही है। अनुच्छेद 39(ख) के अन्तर्गत सरकार ने जमींदारी प्रथा को समाप्त करके भूमि को जोतने वालों को भूमि का वास्तविक स्वामी बना दिया है। इस सुधार को करीब–करीब समस्त देश में लागू किया जा चुका है।

इसी प्रकार अनुच्छेद 40 में उल्लेखित नीति निर्देशक तत्व को कार्यान्वित करने के लिए भी अनेक कानून पारित किये गये हैं और देश के सभी गाँवों में पंचायतों की स्थापना की जा चुकी है। कई राज्यों में निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा लागू करने क लिए कानून पारित कर दिया गया है। श्रमिको के कल्याण के लिए भी अनेक कानून राज्यों में बनाये गये हैं। इससे श्रमिक वर्गों को काफी फायदा हुआ है और उनके सामाजिक स्तर में काफी अन्तर आया है।

इसके अतिरिक्त संविधान के भाग 3 में मौलिक अधिकारों का जो वर्णन किया गया उससे भी यह पता चलता है कि भारत सरकार द्वारा कल्याणकारी राज्य की स्थापना के लिए प्रयत्न किये जा रहे है। संविधान में अनुच्छेद 14 से 18 तक समानता के अधिकार का विस्तृत उल्लेख किया गया है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 19 से 22 तक में भारत के नागरिकों को स्वतन्त्रता संबंधी विभिन्न अधिकार प्रदान किये गये है। इसे अनुसार केवल बेगार ही नहीं बल्कि अन्य किसी भी प्रकार से जबरदस्ती श्रम लेने का निषेध किया गया है। अस्पृश्यता के अन्त का उल्लेख भी अनुच्छेद 17 के अन्तर्गत किया गया है।

स्त्रियों के कल्याण के लिए भी संविधान के अन्तर्गत तीन महत्त्वपूर्ण प्रावधान किए गये है। ये मुख्य रूप से स्त्रियों के अधिकार (Right) ,स्थिति (Status) और कल्याण (Welfare) से संबंधित है। इस दिशा में भी भारत सरकार द्वारा महत्वपूर्ण प्रयास किए गए हैं। बहुत सारे एक्ट भी इस दिशा में भारत सरकार द्वारा पास किये गये जैसे हिन्दू सक्सेशन एक्ट 1950, जिसने स्त्रियों की दषा सुधारने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। दहेज निरोधक एक्ट 1961 भी इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम कहा जा सकता है। हिन्दू विवाह एक्ट 1955 ने भी स्त्रियों की दशा सुधारने में मदद की है। जिला परिषद एक्ट के द्वारा स्त्रियों को एक अलग दर्जा प्रदान किया गया है। पंचायत के चुनाव में भी स्त्रियों के लिए 33 प्रतिशत सीटे रिजर्व की गई है।

भारत के पंचवर्षीय योजनाओं में भी लोककल्याण राज्य की झलक देखने को मिलती है। कल्याणकारी राज्य के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए 20 प्वाइंट कार्यक्रम भी सरकार के द्वारा शुरू किया गया है। इसके अन्तर्गम मुख्य रूप से युवाओं, स्त्रियों, शिक्षा तथा बच्चों के मृत्यु दर को घटाने की ओर ध्यान दिया गया है। बीस सूत्री कार्यक्रम अधिकतर समाज कल्याण से जुड़े हुए हैं।

परन्तु यदि देखा जाये तो अभी भी अनेक कल्याण से संबंधित कार्यक्रमों को आगे बढ़ाने की आवश्यकता है। बहुत सारे कल्याणकारी राज्यों से सम्बन्धित कार्य सिर्फ दिखावे के लिए हैं। बहुत स्थानों पर प्रशिक्षित व्यक्तियों की कमी के कारण कल्याणकारी कार्य जनता तक नहीं पहुँच पाते हैं। इसीलिए बहुत सारे कार्यों के करने के बावजूद हम पीछे रह जाते हैं। अभी भी काफी संख्या में लोग गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन कर रहे है। अभी भी अशिक्षा हमें जकड़ी हुई है। अनुसूचित जाति और

जनजाति के जीवन में अभी और बदलाव की आवश्यकता है। वैश्वीकरण व नव–उदारवादी अर्थव्यवस्था का राज्य के कल्याणकारी आयाम पर भी काफी नकारात्मक प्रभाव पड़ा है। देश में अमीर व गरीब के बीच अन्तर काफी बढ़ गया है। उदाहरण के तौर पर, आबादी के सबसे गरीब 10 प्रतिशत जनसंख्या की तुलना में देश के सबसे अमीर 10 प्रतिशत लोगों की आय 117 गुना ज्यादा है।

अन्त में यह कहा जा सकता है कि अभी और अधिक जन–कल्याण के कार्यों को किए जाने की आवश्यकता है। सामाजिक कल्याण और विकास के दोनों कार्यक्रमों का तालमेल आर्थिक विकास के साथ–साथ होना चाहिए तभी कल्याणकारी कार्यक्रम आगे बढ़ सकते है। सरकार द्वारा लागू होने वाली सभी कल्याणकारी योजनाओं और कार्यक्रमों का उद्देश्य सामाजिक कल्याण के विभिन्न क्षेत्रों जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, कृषि, शहरी और ग्रामीण विकास आदि पर बल देते हुए, एक ऐसे समाज का निर्माण करना है, जिसके अन्तर्गत समाज के सभी समूहों और वर्गों को बिना किसी भेदभाव के एक कुशल जीवन जीने और व्यक्तित्व निर्माण के समान अवसर मिल सके।

सन्दर्भ ग्रंथ :

- बिस्वाल, तपन; ''भारतीय शासन, संवैधानिक लोकतन्त्र और राजनीतिक प्रक्रिया,'' ओरियंट ब्लैकस्वॉन, हैदराबाद, 2017
- सईद एस0एम0; ''भारतीय राजनीतिक व्यवस्था'', भारत बुक सेन्टर, लखनऊ, 2019
- मंगलानी, रूपा; ''भारतीय शासन एवं राजनीति,'' राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2015
- स्पाइकर, पॉल, ''द वेलफेयर स्टेट : ए जनरल थ्योरी,'' सेज पब्लिकेशन, यू0एस0ए0, 2000
- गबा, ओम् प्रकाश; ''राजनीति विज्ञान विश्वकोष,'' मयूर पेपरबैक्स, नोएडा, 2012
- श्रीवास्तव, ओम प्रिया; 'भारतीय संविधान ' शासन एवं राज्य व्यवस्था की विवेचना,'' सेन्ट्रल पब्लिशिंग हाऊस, इलाहाबाद, 1996
- पायली, एम0पी0; ''कान्स्टीट्यूशन गवर्नमेण्ट इन इण्डिया,'' एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई, 1960

***

पर्यावरण संरक्षण को समृद्ध बनाने हेतु जल प्रबन्धन (बुन्देलखण्ड (उ. प्र.) के विशेष सन्दर्भ में)

*डॉ. दीपक सिंह**

पर्यावरण का निर्माण दो शब्दों से मिलकर हुआ है–परि+आवरण, अर्थात जो हमें चारों ओर से घेरे हैं, पर्यावरण उन सभी भौतिक, रासायनिक एवं जैविक कारकों की समष्टिगत एक इकाई है जो किसी जीवधारी अथवा पारितंत्रीय आबादी को प्रभावित करते हैं तथा उनके रूप, जीवन और जीविता को तय करते हैं अर्थात पर्यावरण प्रत्येक जीव के साथ जुड़ा है एवं हमारे चारों तरफ वह हमेशा व्याप्त होता है। जहां तक सवाल पर्यावरण संरक्षण का है तो वनस्पतियां, जल, जंगल, जंगली–जीव, हवा, भूमि सभी का एक संतुलन है जो विकास में सहायक होता है। यदि विकास में पूरा ध्यान दिया जाए एवं पर्यावरण को गौड़ मान लिया जाए तो यह विकास विनाश की तरफ भी ले जा सकता है इसलिए विकास एवं पर्यावरण दोनों का संवर्द्धन साथ–साथ जरूरी है। यदि हमें स्वस्थ रहना है तो विकास के साथ–साथ पर्यावरण को संरक्षित एवं सुरक्षित रखना भी जरूरी है क्योंकि विकास एवं पर्यावरण संरक्षण एक ही सिक्के के दो पहलू हैं क्योंकि हमें जल, वायु, वनस्पतियां, जीव–जन्तुओं का सरंक्षण भी करना है तभी पर्यावरण संरक्षित हो सकेगा।

जीवन के लिए जल अति आवश्यक तत्व है एवं इसके बिना जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती है क्योंकि जल, मनुष्य, जीव–जन्तुओं, वनस्पतियों, खेतों, बिजली, कल–कारखानों के लिए जरूरी है। कहा भी गया है कि क्षिति, जल पावक गगन समीरा, पंचरचित यह बना शरीरा अर्थात शरीर के निर्माण एवं सृष्टि के निर्माण के लिए पॉच तत्वों में जल भी एक आवश्यक तत्व है। जल मनुष्य के लिए जीव–जन्तुओं के लिए जितना जरूरी है उतना ही वनस्पतियों, पेड़–पौधों, खेतों, कारखानों, बिजली निर्माण आदि के लिए भी जरूरी है, यदि पर्यावरण को सन्तुलित रखना है तो जल प्रबन्धन आज की एक आवश्यक मांग है। धरती में उपलब्ध जल का 97 प्रतिशत खारा पानी है तथा 3 प्रतिशत साफ जल है जिसमें 2.6 प्रतिशत जल ग्लेशियर एवं हिमालयी भाग में हैं तथा .36 प्रतिशत जल ही उपयोग हेतु उपलब्ध है। इसलिए जल–प्रबन्धन आवश्यक ही नहीं बल्कि जरूरी एवं अति संवेदनशील मामला भी है जो विकास के साथ पर्यावरण सन्तुलन के लिए भी जरूरी है।

अन्तर्राष्ट्रीय मानक के अनुसार 1600 क्यूबिक मीटर जल व्यक्ति को चाहिए जबकि भारत में यह उपलब्धता 1200 क्यूबिक मीटर है। भारत सरकार ने जल प्रबन्धन हेतु 1974 में वाटर एक्ट बनाया। सामान्य रूप से गांव के प्रति व्यक्ति को 55 लीटर प्रतिदिन तथा छोटे शहर या कस्बे में प्रति व्यक्ति 90 लीटर प्रतिदिन तथा शहरों में 135 लीटर प्रतिदिन प्रतिव्यक्ति जल की जरूरत है। आवश्यकता साफ जल का है क्योंकि औद्योगीकरण शहरीकरण एवं कुप्रबंधीकरण की वजह से जल जहरीला हो रहा है जिससे 05 साल से कम उम्र के 15 लाख बच्चे साल में पानी के प्रदूषण से मरते हैं।

वैसे भी भारत में पानी का उपयोग अमेरिका एवं चीन दोनों देशों के कुल उपयोग से ज्यादा है, आज आवश्यकता है कि जिस तरह से विश्व की आबादी बढ़ रही है खासकर भारत की तो हमें पानी के प्रबंधन की आवश्यकता है जिससे व्यक्तियों को स्वच्छ पानी प्राप्त हो सके एवं पानी से चलने वाली और जरूरी चीजों का निर्माण भी हो सके। भारत के कई इलाके ऐसे हैं जहां पानी की भारी कमी है जिससे उस क्षेत्र का विकास प्रभावित हेाता है यथा खेती के लिए पानी की जरूरत है, कारखानों के लिए पानी चाहिए, इंसानी जरूरतों को पूरा करने के लिए पानी चाहिए, पानी का दुरूपयोग बन्द किया जाना चाहिए एवं जरूरी तथा आवश्यक चीजों के लिए पानी का उचित प्रबन्धन जरूरी है।

बात करते हैं भारत के उत्तर प्रदेश के अंतर्गत स्थित बुन्देलखण्ड क्षेत्र की जो दशकों से पानी की कमी से जूझ रहा है जिससे यह क्षेत्र सूखा एवं अकाल से हमेशा ग्रसित रहता है एवं यहां के लोगों का पलायन एवं किसानों की आत्महत्याएं आम बात हो गई है एवं संसद तथा विधानसभा में अक्सर यहां की चर्चाएं होती रहती हैं लेकिन परिणाम अभी भी आशानुकूल नहीं मिल पा रहे हैं जबकि उ0प्र0 के इस बुन्देलखण्ड क्षेत्र (बांदा, हमीरपुर, महोबा, चित्रकूट, जालौन, ललितपुर, झांसी) में काफी नदियां भी हैं लेकिन आमजनमानस का पानी प्रबंधन में कम रूचि लेना एवं सरकारों की उदासीनता समस्या को विकराल रूप दे रहा है।

बुन्देलखण्ड की स्थिति भारत के ठीक मध्य में है, इसलिए बुन्देलखण्ड को भारत का हृदयदेश कहा जाता है। बुन्देलखण्ड को चौदहवीं सदी के पहले चेदि, जेजाकभुक्ति, यजुहौर्ति, दर्शाण आदि नामों से जाना जाता था। विंध्याचल पर्वत इस भू–भाग की सीमा निर्धारित करता है जिसके कारण यह लोकांचल, विध्येल कहलाया, फिर बुन्देल और बाद में बुन्देलखण्ड हो गया। बौद्ध साहित्य एवं जैन

* सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, चरखारी (महोबा) उ.प्र.

साहित्य के अनुसार चेदि जनपद आधुनिक बुन्देलखण्ड है। महाभारत काल में चेदि देश, छठी सदी ईस्वी में यमुना और नर्मदा के बीच का क्षेत्र 'जेजाहुति' या जुझौतिया कहा जाता था। प्राचीनकाल में बघेलखण्ड और बुन्देलखण्ड विन्ध्यक्षेत्र के दो भाग थे, प्राचीन काल में बुन्देलखण्ड एवं बघेलखण्ड का क्षेत्र कई रियासतों में बंटा था जिसके सभी भू–भागों को समेटकर एक नए प्रदेश का निर्माण हुआ जो विन्ध्य प्रदेश के नाम से जाना गया।

''डॉ0 रंजन का मत है कि इसका अस्तित्व चालीस करोड़ वर्ष से भी ज्यादा पुराना है। यह उफनाते हुए सागर की गोर से सबसे पहले उठा।'' अधिकांश विद्वान पुराणों में वर्णित चर्मणवती (चम्बल), वेगवती (बेतवा), मंदाकिनी, दर्शाण (धसान), तमसा (टोंस) एवं शक्तिमति (केन) के अभिजन के सम्बन्ध में सहमत हैं। ''पुरातत्ववेत्ता ब्रजवासीलाल के मतानुसार बुन्देलखण्ड भारत की दो पवित्र नदियों, गंगा और नर्मदा की घाटियों के बीच सेतु स्वरूप है।'' बुन्देलखण्ड दस नदियों का देश है– चम्बल, पहूज, काली, सिंध, कुआरी, बेतवा, मंदाकिनी, केन, तमसा और धसान। इस क्षेत्र की अधिकतर नदियां दक्षिण से उत्तर की ओर प्रवाहित होकर यमुना और गंगा में मिलती हैं। यमुना नदी बुन्देलखण्ड की बड़ी तथा पवित्र नदी मानी जाती है, इसका उद्गम स्थल यमुना पर्वत है जो जमुनोत्री नामक हिमगिरि से निकलकर हमीरपुर के पास यमुना और बेतवा का संगम बनाती हुई बांदा जिले के चिल्ला ग्राम से प्रवाहित होती हुई केन से मिलती है फिर इलाहाबाद में गंगा से अपना संगम बनाती है। यह बुन्देलखण्ड की उत्तरी सीमा में पश्चिम से पूर्व को प्रवाहित है। शुक्तिमती नदी प्राचीनकाल में राजा वसु की राजधानी के निकट इसी नाम से प्रवाहमान थी। इसका उद्गम स्थल कोलाहल पर्वत (भाण्डेर पहाड़ी) माना गया है जो इस पर्व पर्वत से निकलकर उत्तर प्रदेश के हमीरपुर जिले से प्रवाहित होती हुई चिल्ला के समीप यमुना में मिल जाती है। वर्तमान में यह केन के नाम से प्रसिद्ध है तथा यमुना की सहायक नदी है। मंदाकिनी नदी बुन्देलखण्ड के चित्रकूट जिले में प्रवाहित होती है जिसकी स्थिति का वर्णन रामायण में चित्रकूट पर्वत के उत्तर दिशा में बताया गया है। यह राघव प्रयाग के निकट पयस्विनी से मिल जाती है। चर्मणवती (चम्बल) नदी जूनापत पहाड़ियों से उद्भूत यमुना की एक प्रमुख सहायक नदी है तथा धसान नदी बेतवा की सहायक नदी है। पयस्विनी (पैसुनी) चित्रकूट में बहने वाली मन्दाकिनी की सहायक नदी है तथा तमसा (टोंस) नदी मैहर की पहाड़ियों से उद्भूत यमुना की सहायक नदी है।

बुन्देलखण्ड लगभग 15 वर्षों से सूखे की चपेट में है, यहां के कई गांवों में जहां ग्रीष्मकाल में पानी के स्त्रोतों की भारी कमी हो जाती है इन सबके बावजूद इस क्षेत्र के कई विकास खण्डों को डार्कजोन भी घोषित कर दिया गया है। आल्हा गायक कहा करते थे ''पानीदार यहां का पानी, आग यहां के पानी में'' परन्तु भू–परिस्थितियों को नजरअन्दाज करके पेड़ों को समाप्त करने, अनियमित खनन तथा बड़े पैमाने पर विस्फोटकों के प्रयोग ने पर्यावरण को तहस–नहस कर दिया है जिसका परिणाम सामने है–अनावृष्टि एवं सूखा यहां की सदानीरा सरितायें तथा बड़े–बड़े आकार के सरोवर सभी शुष्कप्राय हो गए। ताल–तलैयां, झरने–पोखर व जंगल इतिहास बनते जा रहे हैं। बीते कई सालों से बुन्देलखण्ड को जल संचयन, संरक्षण एवं आपूर्ति की सैकड़ों योजनाओं में केन्द्र तथा प्रदेश सरकार से विशेष पैकेज के तहत खरबों रूपए मिल चुके हैं लेकिन परिणाम है ढाक के तीन पात, कारण है इच्छा शक्ति की कमी सरकारों एवं आमजनमानस की। पेयजल एवं फसलों की सिंचाई हेतु पानी की कमी के कारण फसलें सूख जाती हैं जिसका परिणाम किसानों द्वारा साहूकारों तथा बैंकों से कर्ज लिया जाताा है और समय पर कर्ज की अदायगी न होने के कारण किसानों द्वारा आत्महत्या तक कर लिया जाता है। जब तक सरकारों द्वारा बुन्देलखण्ड के लिए योजनाबद्ध तरीके से पानी की कमी को दूर करने के लिए प्रभावी प्रयास नहीं किए जाएंगे तब तक पानी की कमी से यह क्षेत्र प्रभावित रहेगा जबकि चाहे केन्द्र की सरकारें हो या राज्य की सरकारें बुन्देलखण्ड के लिए सबसे ज्यादा पैकेज पानी के लिए ही देती है और यह क्षेत्र पानी की कमी से विकास की मुख्यधारा से अलग है। कई नदियों, तालाबों के होने के बावजूद उचित प्रबंधतन्त्र की कमी की वजह से बुन्देलखण्ड एवं सूखे का अटूट रिश्ता बन चुका है और लोगों को पलायन के लिए मजबूर होना पड़ रहा है।

पूर्व प्रधानमन्त्री श्री अटल बिहारी बाजपेयी द्वारा नदी जोड़ो परियोजना की संकल्पना की गयी थी जिसमें देश की नदियों को आपस में जोड़ने की बात थी जिससे जिस क्षेत्र में पानी की अधिकता होती तो उस क्षेत्र के पानी को सूखे वाले क्षेत्रों तक पहुंचाया जाता जिससे सूखा भी समाप्त होता एवं अतिवृष्टि एवं पानी की अधिकता वाले क्षेत्रों का पानी भी कम होता लेकिन 20 वर्षों से इस पर अमलीजामा नहीं पहनाया जा सका है और सबसे खास बात तो यह थी कि सबसे पहले केन को बेतवा से जोड़ा जाना था जो बुन्देलखण्ड की नदियां हैं जिससे काफी हद तक पानी की समस्या से निजात मिल जाती। यदि नदियों को भी जीवित व्यक्तियों जैसे अधिकार मिलें तो हो सकता है कि नदियों को स्वच्छ रखने एवं पवित्र बनाने एवं आमजन के उपयोगी बनाने में काफी हद तक सफलता प्राप्त हो सकती है एवं नदियों पर पड़ने वाली गन्दगी पर लगाम लगाया जा सकता है एवं पानी की स्वच्छ रखकर उसको मानव जीवन के लिए उपयोगी बनाया जा सकता है।

न्यूजीलैण्ड की संसद द्वारा वांगानुई नदी को इंसानी अधिकार देने के फैसले से प्रेरित होकर उत्तराखण्ड उच्च न्यायालय ने भी गंगा और यमुना नदियों को जीवित व्यक्तियों जैसे अधिकार देने का ऐतिहासिक फैसला सुनाया है। इन अधिकारों को सुरक्षित बनाए

रखने के लिए गंगा प्रबन्धन बोर्ड बनाया जाएगा इससे नदियों के जलग्रहण क्षेत्र से अतिक्रमण हटाने व गंदगी बहाने वालों को प्रतिबंधित करना आसान होगा। इसी तरह सभी नदियों को अधिकार मिलना चाहिए एवं सरकारों को सख्ती के साथ ऐसा प्रबन्धन तैयार करना चाहिए जिससे नदियों में न तो गंदगी फैले और न ही अतिक्रमण हो तथा आम जनता के सदुपयोग के लिए जल का समुचित प्रयोग हो जिससे पानी की समस्या का काफी हद तक निराकरण कर सकते हैं। बुन्देलखण्ड में तालाबों की बहुतायत है जिसकी उचित प्रबंधन द्वारा जनोपयोगी बनाया जा सकता है। तालाबों की खुदाई करके उनको गहरा बनाया जाए जिससे पानी पर्याप्त मात्रा में इकट्ठा हो सके एवं सूखा के समय काम आवे एवं तालाबों की गणना कर उन पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है, जैसे महोबा एवं चरखारी में स्थित बड़े तालाबों को उत्तर प्रदेश के पूर्व मुख्यमन्त्री श्री अखिलेश यादव ने गहरा कराया एवं सफाई कराई जिससे उनमें पर्याप्त पानी भरा रहता है एवं आवश्यकता पड़ने पर उसका उपयोग किया जा सकता है।

पूरे बुन्देलखण्ड में तालाबों को गहरा किया जाना सुनिश्चित किया जाए, तालाबों के किनारे लोगों ने अतिक्रमण कर लिया है जिससे उनका क्षेत्रफल काफी कम हो गया है, सरकार त्वरित गति से प्रयास कर इन अतिक्रमण को हटाए एवं तालाबों का सुन्दरीकरण करने का प्रयास एवं स्वच्छ बनाने में सहयोग दे। तालाबों में जल संभरण क्षमता बढ़ाकर के एक निश्चित क्षेत्रफल को जल उपलब्ध कराकर के कृषि की पैदावार बढ़ायी जा सकती है एवं उद्यानीकरण को प्रोत्साहित किया जा सकता है जिससे रोजगार का सृजन भी होगा एवं लोगों का पलायन कम होगा तथा पानी का समुचित प्रयोग होगा, नदियों से नहरों को निकालकर बहुत बड़े क्षेत्र में सिंचाई की जा सकती है। बुन्देलखण्ड में इतनी नदियां होने के बावजूद भी नहरें की कमी है और थोड़ी बहुत नहरें हैं भी तो उनमें से काफी नहरें तो सालों भर सूखी पड़ी रहती हैं, इसलिए सरकारों को चाहिए कि नहरों का विकास तेजी से हो जिससे सूखे की स्थिति से निपटा जाप सके। अक्सर बुन्देलखण्ड में कई ब्लाकों को डार्कजोन घोषित कर दिया जाता है, जिससे ट्यूबवेल से मंहगा पानी लोगों को लेना पड़ता है या निजी ट्यूबवेल के लिए बैंकों से कर्ज लेना पड़ता है और किसान कर्ज के बोझ में फंसता चला जाता है और निजी ट्यूबवेल तक बिजली पहुंचाना किसानों के लिए सफेद हाथी सिद्ध हो जाता है एवं समय साध्य हो जाता है।

सरकारों को ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए कि बहुत जरूरी हो तभी डार्क जोन घोषित करे तथा किसानों के निजी ट्यूबवेल तक बिजली की मुफ्त व्यवस्था तुरन्त मुहैया कराएं जिससे किसानेां को बिजली विभाग के चक्कर न लगाना पड़े एवं सरकारों को चाहिए कि अधिक से अधिक सरकारी ट्यूबवेल लगवाएं जिससे आसानी से एवं सस्ता पानी सिंचाई के लिए किसानों को उपलब्ध हो सके। बुन्देलखण्ड में प्रति एक हजार की जनसंख्या पर एक बड़ा तालाब खुदवाने का काम सरकार द्वारा किया जाना चाहिए एवं उसमें जल संभरण की उचित व्यवस्था की जानी चाहिए जिससे सिंचाई में उसका उपयोग किया जा सके। वर्तमान में बुन्देलखण्ड में खोदे जा रहे तालाबों की उपयोगिता नगण्य है क्योंकि बिना वैज्ञानिक सर्वे एवं बिना पानी के प्रबंधन के उनकी उपयोगिता समझ से परे है। बुन्देलखण्ड मे पानी के प्रबंधन के लिए एक अलग विशेष विभाग ही बना दिया जाना चाहिए जिसका केवल और केवल पानी की कमी को दूर करने का हो और ऐसी व्यवस्था हो कि भविष्य में पड़ने वाले सूखों का सामना आसानी से किया जा सके जिससे बुन्देलखण्ड का किसान, मजदूर, गरीब पलायन न कर सके और न ही किसान आत्महत्या जैसे कदम को उठा सके जिससे यह क्षेत्र भी भारत के अन्य क्षेत्रों की तरह विकास की मुख्यधारा में सम्मिलित हो सके। चाहे केन्द्रीय सरकार हो या राज्य सरकार हो या स्थानीय सरकार या गैर सरकारी संगठनों का समूह या सामाजिक संगठन हो सबको मिलकर यह प्रयास करना चाहिए कि बुन्देलखण्ड से गरीबी, अशिक्षा, कुपोषण, सूखा आदि का अन्त हो सके एवं विकास की धारा बह सके।

वैसे वर्तमान सरकारों (केन्द्र एवं राज्य) के प्रयासों का परिणाम कुछ अंशों तक दिख रहा है जैसे खेतों पर तालाबों का निर्माण जिससे बरसात के समय एकत्रित पानी को सींचने हेतु प्रयोग किया जाने लगा है एवं छोटे–बड़े बांधों का निर्माण भी किया जा रहा है। जैसे प्रधानमन्त्री श्री नरेन्द्र मोदी ने 19 नरवम्बर, 2021 को 3240 करोड़ रूपए की अर्जुन सहायक परियोजना, भावनी बॉध परियोजना, रतौली बॉध परियोजना, मसगॉव–चिल्ली स्प्रिंकलर परियोजना का लोकार्पण किया जिसमें 2655 करोड़ रूए की लागत की अर्जुन सहायक परियोजना महोबा, हमीरपुर, बांदा के किसानों के लिए बहुत फायदेमन्द होगा क्योंकि किसानों की 59485 हैक्टेयर जमीन की सिंचाई होगी तथा महोबा जिले में 200 लाख घन मीटर पीने का पानी उपलब्ध होगा। वर्तमान केन्द्र सरकार द्वारा हर घर नल योजना के द्वारा यूपी के 38 हजार गॉवों को इस योजना द्वारा लाया जा रहा है जिसमें प्रत्येक घर को स्वच्छ पानी प्राप्त हो सकेगा। पूर्व प्रधानमन्त्री अटल बिहारी बाजपेयी द्वारा नदी जोड़ो परियोजना के कार्य को भी अमलीजामा पहनाने की कोशिश की जा रही है जिससे बुन्देलखण्ड क्षेत्र में पानी की समस्या कम होगी एवं लोग पलायन, आत्महत्या जैसे कदम न उठाकर विकास पर ध्यान देने लगेगें।

आज बुन्देलखण्ड क्षेत्र के लिए आवश्यक है कि पानी की समस्या पर केन्द्र की सरकार तथा राज्य की सरकार संवेदनशीलता अपनाकर ठोस कदम उठाए एवं ऐसी योजनाएं/परियोजनाएं बनाएं जिससे पर्याप्त मात्रा में पानी लोगों एवं उनकी जरूरतों को पूरा किया जा सके।

बुन्देलखण्ड क्षेत्र मे ंपानी का उचित प्रबंधन करके तथा कुछ औद्योगिक इकाईयों की स्थापना करके एवं ऊबड़ खाबड़ पड़ी भूमि का समतलीकरण करके एवं शिक्षा का स्तर बढ़ाकर, स्वास्थ्य सुविधाओं को बढ़ाकर गरीबी को कम किया जा सकता है, भूंख से कोई मरे न, अच्छा स्वास्थ्य रहे, हरा भरा क्षेत्र बने, लोगों को स्वच्छ पानी मिले जिससे लोग बीमार न हों, पर्याप्त ऊर्जा प्राप्त हो सके, लोगों की आर्थिक उन्नति हो सके, लोग खेती के साथ उद्योगों में भी काम करें, जाति धर्म–सम्प्रदाय से ऊपर उठकर समतामूलक समाज का निर्माण हो एवं लोकतान्त्रिक समाज का निर्माण हो। भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतन्त्र है एवं दुनिया का सबसे प्रभावी लोकतन्त्र बनने के लिए जरूरी है कि भारत का कोई भी क्षेत्र विकास की दौड़े में पीछे न रहने पाए पर ध्यान रहे पर्यावरण के संरक्षण के साथ क्योंकि पर्यावरण संरक्षण एवं विकास दोनों जरूरी हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. डॉ0 रंजन–भोजपुरी और बुन्देलखण्डी का तुलनात्मक अध्ययन, 1965, पृ0–103 104
2. डी0सी0 सरकार–एम0जी0ए0एम0आई0 दिल्ली, 1960, पृ0 47–49
3. ब्रजवासीलाल–बुन्देलखण्ड का पुरातत्व, 1984, के प्राक्कथन में, पृ0–5
4. नदियों के नागरिक अधिकार–प्रतियोगिता दर्पण, जुलाई, 2017, पृ0–100
5. दैनिक जागरण, झासीं–20.11.2021
6. दैनिक अमर उजाला, 20 नवम्बर, 2021
7. दैनिक आज, नवम्बर, 20, 2021

***

जनपद बहराइच में जल की गुणवत्ता का आकलन एवं उसका मानव के स्वास्थ्य पर प्रभाव

*डॉ. राजकुमार सिंह**
*डॉ. संतोष कुमार सिंह***

प्रस्तावना

प्राचीन काल से ही भारतवर्ष में जल के महत्त्व को स्वीकार्य किया जाता रहा है। यह ब्रह्माण्ड के 5 मूल तत्वों में क्षिति (पृथ्वी), जल, पावक (अग्नि), गगन (आकाश), समीरा (हवा) में से एक है। पृथ्वी पर जल ही जीवन का आधार है। इसीलिए जीवमंडल का सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व जल ही है जल वातावरण का एक महत्वपूर्ण संसाधन है प्रकृति ने जीवो के उपयोग के लिए प्राकृतिक उपहार के रूप में जल को प्रदान किया है यह जैव मंडल के पोषक तत्वों के संचरण में सहायता करता है। मानव समूह का यह कर्तव्य है की समस्त प्राकृतिक तत्वों की गुणवत्ता को बनाए रखा जाए हालांकि मनुष्य की बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्राकृतिक तत्वों जैसे मिट्टी वायु एवं जल आदि की गुणवत्ता में कमी हो रही है मानव समूह के अलावा अन्य सभी जीवो के लिए भी आवश्यक तत्व है।

आज का समय मानवीय, तकनीकी एवं कृषीय कार्यों से जल की गुणवत्ता में अभूतपूर्व कमी आ रही है। इसका परिणाम यह हो रहा है कि जल संकट बढ़ रहा है जिसकी वजह से विश्व शान्ति, सुरक्षा, न्याय एवं जीवन का संकट बढ़ रहा है। आपसी वैमनस्य तार–तार हो रहा है। जल संकट की वजह से सामाजिक–आर्थिक वृद्धि प्रभावित हो रही है। विश्व आर्थिक मंच की वैश्विक जोखिम रिपोर्ट 2016 में जल संकट एवं जल की गुणवत्ता संकट को सबसे अधिक नकारात्मक प्रभाव डालने वाले दस खतरों में तीसरा खतरा बताया गया है। विश्व बैंक की रिपोर्ट भी यह बताती है कि जल संकट और जल की गुणवत्ता भी जलवायु परिवर्तन, स्वास्थ्य, पर्यावरणीय समस्याओं को आगे बढ़ा रहा है। यह सब समस्याएँ प्रति व्यक्ति जल की उपलब्धता को कम कर रही हैं।

सारणी–1 : भारत में जल की उपलब्धता

वर्ष	प्रति व्यक्ति उपलब्धता (घन मीटर में)
1951	5000
2001	1820
2011	1545
2030	1300 (अनुमानित)

स्रोत : पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी, आर0 राजगोपालन–2017

भारत सरकार के नीति आयोग द्वारा जारी संयुक्त जल प्रबंधन रिपोर्ट 14 जून 2018 के अनुसार भारत के 60 करोड़ लोग गंभीर जल संकट एवं जल की गुणवत्ता के संकट से गुजर रहे हैं तथा देश में लगभग 2 लाख लोग अशुद्ध जल पीने की वजह से कालकवलित हो रहे हैं। विभिन्न स्वतंत्र संस्थाओं द्वारा एक रिपोर्ट तैयार की गई है इस रिपोर्ट में 70 प्रतिशत प्रदूषित पानी के साथ भारत जल गुणवत्ता सूचकांक में 122 देशों में 120वें स्थान पर है। यदि राज्यवार जल गुणवत्ता सूचकांक के आँकड़ों को देखा जाए तो 5 राज्यों का क्रम इस प्रकार है–

जल गुणवत्ता में सबसे बेहतर 5 राज्य	जल गुणवत्ता में सबसे खराब 5 राज्य
1. गुजरात	1. झारखण्ड
2. मध्य प्रदेश	2. हरियाना
3. आंध्र प्रदेश	3. उत्तर प्रदेश
4. कर्नाटक	4. बिहार
5. महाराष्ट्र	5. ओडिशा

* असि. प्रोफेसर (भूगोल), नेशलन पी. जी. कॉलेज भोगांव (मैनपुरी) Dr. B.R. Ambedkar University, Agra
** असि. प्रोफेसर (भूगोल), किसान पी. जी. कॉलेज बहराइट, Dr. R.M.L. Awadh Uni. Ayodhya

स्रोतः दैनिक जागरण, 17 जून 2018

जहाँ तक उत्तर प्रदेश की बात है तो वहाँ की जल गुणवत्ता काफी खराब हो गई है। प्रोफेसर दीपांकर चटर्जी के शोध के अनुसार पूर्वी उत्तर प्रदेश के अधिकांश जिलों में आर्सेनिक जैसे तत्व पाए गए हैं। लखीमपुर खीरी के 165 गाँव, बहराइच के 438 गाँव, बरेली के 14 गाँव, गोरखपुर के 45 गाँवों के जल में आर्सेनिक की मात्रा पायी गई है। खराब जल गुणवत्ता का पानी पीने की वजह से गठिया, त्वचा, फेफड़ों, मूत्राशय, गुर्दे आदि के कैंसर हो रहे हैं।

अध्ययन क्षेत्र

जनपद बहराइच जल संसाधन से धनी क्षेत्र है। यहाँ वर्ष में 175 सेमी से 250 सेमी वार्षिक वर्षा होती है तथा घाघरा, सरयू जैसी बड़ी नदियाँ जिले से होकर प्रवाहित होती हैं। जनपद का अक्षांशीय विस्तार $27^0$13′ उत्तरी अक्षांश से $28^0$11′ उत्तरी अक्षांश तथा देशान्तरीय विस्तार $81^0$14′ से $81^0$49′ के बीच स्थित है। जिले की उत्तरी–पूर्वी सीमा नेपाल से सटी हुई है। पश्चिम में लखीमपुर और सीतापुर, दक्षिण–पश्चिम में बाराबंकी, दक्षिण–पूर्व में गोण्डा तथा पूर्व में श्रावस्ती जनपद स्थित है। जिले का कुल क्षेत्रफल 4696.8 वर्ग किमी है। जनपद में 6 तहसीलें, 14 विकासखण्ड एवं 1395 गाँव हैं। जिले की कुल जनसंख्या 2011 की जनगणना के अनुसार 34.87 लाख है जिसमें 18.43 लाख पुरुष एवं 15.20 लाख स्त्रियाँ हैं। जिले का जन घनत्व 645 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी है।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन क्षेत्र में जल की गुणवत्ता के आकलन का निम्नलिखित उद्देश्य है–

1. विकासखण्डवार जल की गुणवत्ता की जाँच करना।
2. प्रदूषण की जाँच करना।
3. मानवीय स्वास्थ्य की जानकारी प्राप्त करना।
4. जल गुणवत्ता का मानचित्रण।

अध्ययन का विधितंत्र

प्रस्तुत क्षेत्र के अध्ययन के लिए निम्नलिखित विधितंत्र का प्रयोग किया गया है–

1. गाँवों की रैंडम सैंपलिंग।
2. प्राथमिक एवं द्वितीयक आँकड़ों एवं साहित्यों का प्रयोग।
3. जल गुणवत्ता का सूचकांक निकालना।

जनपद बहराइच में जल की गुणवत्ता का आकलन एवं उससे जनित बीमारियाँ

जनपद बहराइच उत्तर प्रदेश के तराई में बसा हुआ है जो अपने वानस्पतिक सौन्दर्य और कतरनियाँ घाट वाइल्ड लाइफ सेंचुरी और आर्द्र भूमि एवं सरयू और घाघरा नदियों के लिए पूरे देश में प्रसिद्ध हैं। इसी बीच एक समस्या सामने आती है वह है जिले की जल गुणवत्ता की क्योंकि इससे अनेक प्रकार की बीमारियों के होने का खतरा महसूस होता है। जिले की आबादी इससे प्रभावित भी हो रही है। जिले के 1395 ग्रामों में से 2013 में जापान की यूनिवर्सिटी ऑफ मियाजाकी और इको फ्रेंड्स संस्था ने जल की गुणवत्ता और आर्सेनिक की मात्रा का आकलन 194 ग्राम पंचायतों के 523 ग्रामों और मजरों में किया गया। इनमें 50 प्रतिशत ग्रामों में आर्सेनिक की मात्रा मानक की तुलना में अधिक पायी गयी।

वर्ष 2021 के जुलाई से अक्टूबर तक जिले में जल की गुणवत्ता का आकलन 70 ग्रामों में रैंडम साइज के आधार पर किया गया। ग्रामों का चयन 5 ग्राम पति विकासखण्ड के आधार पर चुनकर यह देखा गया कि जिले में जल गुणवत्ता स्तर में काफी कमी पायी गयी। यहाँ के पानी में कोलाई जीवाणु, नाइट्रेट, नाइट्राइट, मरकरी, लेड एवं आर्सेनिक की मात्रा मानक से अधिक पायी गयी। इसके अलावा रासायनिक उर्वरकों के बढ़ते प्रयोग से जल का प्रदूषण मानक स्तर से अधिक बढ़ गया है। जनपद के सभी विकासखण्डों में जल में आर्सेनिक एवं अन्य विषैले पदार्थों की मात्रा मानक से अधिक पायी गयी। सामान्य तौर पर 10 PPB (Part per Billion) आर्सेनिक की मात्रा पानी में होनी चाहिए लेकिन जिले के पानी में 250 PPB (Part per Billion) तक आर्सेनिक की मात्रा पायी गयी। तेजवापुर

विकासखण्ड के मोतीपुर गाँव में आर्सेनिक की मात्रा 766 मिग्रा प्रति लीटर पायी गयी है। इसके अलावा इन विकासखण्डों में आयरन की मात्रा भी आवश्यकता से अधिक पायी गयी है।

जिला कृषि प्रधान होने के कारण सिंचाई की आवश्यकता फसलों को पड़ती है जिसकी वजह से घुलनशील लवण जल सतह में उतर कर पानी की गुणवत्ता को नुकसान पहुँचाते हैं। इसके अलावा जिले में 4 चीनी मिलें चिलवरिया, पारर्ले, कैसरगंज, नानपारा एवं जरवल रोड में जल प्रदूषण को बढ़ा रही है। इन जिलों के आस–पास के गाँवों का पानी प्रदूषित हो गया है। नगरपालिका एवं नगर पंचायत से निकलने वाले मल–जल से भी जिले में जल की गुणवत्ता प्रभावित हो रही है।

जल की गुणवत्ता का आकलन करने के बाद 10 विकासखण्ड ऐसे हैं जिसमें जल की गुणवत्ता काफी खराब पायी गयी है। 2 विकासखण्डों में उच्च जल गुणवत्ता, 4 विकासखण्डों में मध्यम गुणवत्ता, 4 में निम्न जल गुणवत्ता और 4 में अति निम्न गुणवत्ता पायी जाती है।

सारणी–2 : जल की गुणवत्ता का आकलन

सूचकांक	विकासखण्ड का नाम
उच्च	पयागपुर, विशेश्वरगंज
मध्यम	चित्तौरा, रिसिया, नबावगंज, कैसरगंज
निम्न	जरवल, महसी, शिवपुर, बलहा
अति निम्न (सबसे अधिक आर्सेनिक)	तेजवापुर, हुजूरपुर, मिहीपुरवा, फखरपुर

1. उच्च जल गुणवत्ता

बहराइच जनपद के पयागपुर एवं विशेश्वरगंज विकासखण्डों के अधिकतर गाँवों में जल की गुणवत्ता सामान्य पाई गई है। यहाँ का 150 फीट से अधिक गहराई का जल बिना छाने सीधे पीने लायक है। सार्वजनिक पेयजल हेतु गाँवों में पानी टंकी की स्थापना की जा सकती है।

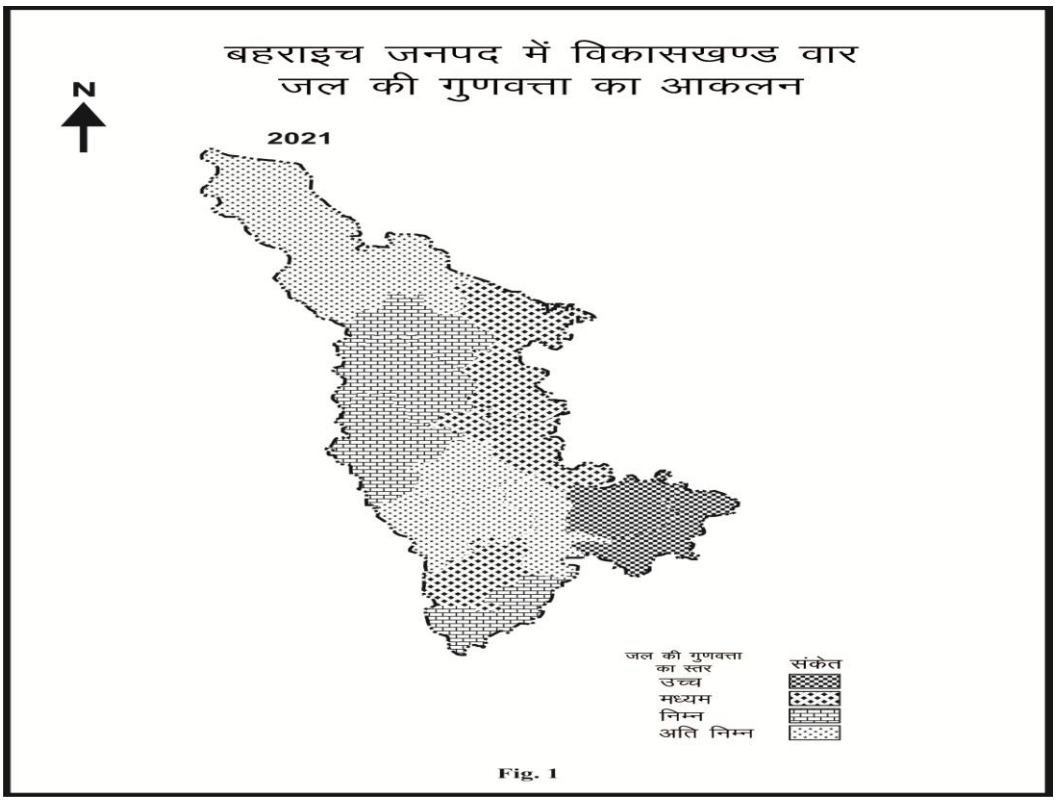

Fig. 1

2. मध्यम जल गुणवत्ता

बहराइच जनपद के चार विकासखण्डों– चित्तौरा, रिसिया, नबावगंज, कैसरगंज में जल की गुणवत्ता मध्यम स्तर की पायी गई है। इन विकासखण्डों का जल सामान्य तौर पर सीधे पीने के लायक नहीं है। कैसरगंज में एक चीनी मिल (पार्ले) लगे होने के कारण आस–पास के गाँवों में जल की गुणवत्ता काफी खराब हो गई है। चित्तौरा विकासखण्ड में नगरपालिका बहराइच की वजह से जल की गुणवत्ता काफी खराब है।

3. निम्न जल की गुणवत्ता

जनपद बहराइच में विकासखण्ड जरवल, महसी, शिवपुर, बलहा आते हैं। ये विकासखण्ड घाघरा नदी के बाढ़ क्षेत्र में आते हैं जिससे इसका जल प्रदूषित होता रहता है। इसके अलावा जखल में एक चीनी मिल लगी हुई है। उससे भी जल की गुणवत्ता प्रभावित हो रही है। इन विकासखण्डों में आर्सेनिक की मात्रा सामान्य से अधिक 0.5 मिली ग्राम प्रति लीटर से 0.5 से 0.8 मिली ग्राम प्रति लीटर पायी जाती है। अध्ययन के दौरान इन विकासखण्डों के कई गाँवों में यह भी देखा गया है कि खराब जल गुणवत्ता की वजह से गाँव के अधिकतर लोग मंदबुद्धि के हैं। इसके अलावा कैंसर और त्वचा के रोग भी पाए गए हैं।

4. अति निम्न जल की गुणवत्ता (आर्सेनिक की अधिकता)

जनपद बहराइच के तेजवापुर, हुजूरपुर, मिहीपुरवा, फखरपुर में जल की गुणवत्ता एवं उसके भयंकर परिणाम देखने को मिल रहे हैं। इन विकासखण्डों में आर्सेनिक की मात्रा प्रति लीटर में 0.5 मिली ग्राम से 0.10 मिलीग्राम तक पायी गयी है। जो काफी अधिक है। इसके अलावा आयरन, कैल्शियम भी उच्च स्तर पर पाया गया है। इसकी वजह से कई प्रकार की बीमारियाँ जैसे– त्वचा कैंसर, कैंसर, दाँतों की पायरिया, अंधता, मंदबुद्धि आदि देखने को मिल रहे हैं। पूरा गाँव का गाँव विभिन्न प्रकार की बीमारियों से ग्रसित है।

मानव के स्वास्थ्य पर प्रभाव का आकलन

इस प्रकार स्पष्ट है कि अध्ययन क्षेत्र के बहराइच तराई प्रदेश में आने की वजह से बाढ़ प्रभावित क्षेत्र है। इसके अलावा कृषि कार्यों में कीटनाशकों एवं रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग भी अधिक मात्रा में हो रहा है जिससे जल प्रदूषण बढ़ रहा है और वे जल की गुणवत्ता को खराब कर रहे हैं। वह मानव के स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव डाल रहे हैं।

जिले में आर्सेनिक युक्त पानी पीने की वजह से किडनी एवं ब्रेन, दाँतों, आँतों, लीवर पर असर पड़ रहा है। बहराइच जनपद में केंसर बहुत तेजी से फैल रहा है। इसके अलावा त्वचा केंसर के भी मरीज बढ़ रहे हैं। आर्सेनिक युक्त पानी पीने से लोगों का चेहरा काला पड़ रहा है। शरीर पर चकत्ते पड़ रहे हैं। इस प्रकार की घटनाएँ घाघरा के कछार में देखने को मिल रही हैं। आर्सेनिक युक्त जल के सेवन से टीनिया कारपोटिस फंगस डिसीज लोगों में हो रही है। इसमें चमड़ी उजड़ने लगती है और हड्डियाँ खोखली हो जाती हैं। आर्सेनिक से बच्चों का मानसिक विकास अवरुद्ध हो जाता है। ऐसा जिले के घाघरा के तटीय इलाकों में देखने को मिल रहा है।

इसके अलावा जल की गुणवत्ता खराब होने से होने वाले रोग– आनको सेरसियासिस, ट्रिपैनोसोमाइसिस, पीलिया, डेंगू, फाइलेरिया, मलेरिया, हैजा, मियादी बुखार, कुक्कुर खाँसी, सूजाक, जठरांत्र, शोध, पेचिस, पायरिया, निद्रा रोग, फाइलेरिया इसके अलावा हाइड्रेटिड सिस्ट रोग एवं पेट में कृमि का आ जाना जनपद में सामान्य स्वास्थ्य सम्बन्धी घटना है। इससे न केवल मानसिक एवं शारीरिक हानि होती है अपितु देश की मानव सम्पदा को नुकसान पहुँचता है और हजारों लोग अपनी जान की कुर्बानी दे देते हैं।

सुझाव

जल की गुणवत्ता को सुधारने के लिए निम्न उपाय किए जाने चाहिए–

1. घरेलू स्तर पर जल में क्लोरीन गोली को डालकर उसका शोधन किया जा सकता है एवं आर0ओ0 सिस्टम का उपयोग।

2. यूवी रेडिएशन सिस्टम से पानी में मौजूद वायरस एवं बैक्टीरिया का डी0एन0ए0 अव्यवस्थित किया जा सकता है।
3. पानी को छानकर और उबालकर पीने हेतु प्रोत्साहित करना।
4. कैंडल वाटर फिल्टर का वितरण।
5. मल्टीस्टेज प्यूरीफिकेशन जिसमें हानिकारक वैक्टीरिया खत्म किए जाते हैं।
6. ग्राम पंचायतों को वित्तीय एवं तकनीकी मदद जिससे जल की गुणवत्ता सुधारी जा सके।
7. आर्गेनिक एवं प्राकृतिक कृषि को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।
8. वर्षा जल संचयन
9. लोगों को जागरूक करके और अपनी के महत्त्व को समझाकर।
10. फैक्ट्रियों एवं नगरपालिकाओं के प्रदूषित जल का शोधन किया जाना चाहिए।
11. स्वच्छ जल की बरबादी पर नियंत्रण किए जाने की जरूरत है।

स्पष्टतः यदि हमें भविष्य को बचाना है तो जल की गुणवत्ता को बचाना पड़ेगा इससे स्वास्थ्य तो सुधरेगा ही साथ ही आर्थिक, सामाजिक और पारिस्थितिक उन्नति भी होगी। इसके लिए व्यक्तिगत सामुदायिक और सरकारी और गैर–सरकारी स्तर पर प्रयास करना पड़ेगा।

सन्दर्भ सूची :

1. Bandopadhyay, J.N.D. Jayal, U. Schoctti & C. Singh (1985): "India's Environment-crises and responses" Natraj Publishers.
2. Singh, B.K. (1990), "Irrigation in Rural Development", IRED, Gorakhpur.
3. Singh, P. (1978), The concept of Environment Civic Affairs."
4. जनपद बहराइच सांख्यिकी पत्रिका, 2021
5. सिंह, सविन्द्र (2016), पर्यावरण भूगोलः प्रयाग पुस्तक महल, प्रयागराज।
6. indiawaterportal.org.in
7. Yojna July 2016
6. पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी– आर0 राजगोपालन, 2017
7. हिन्दुस्तान, 25 सितम्बर 2021
8. अमर उजाला, 4 फरवरी 2017
9. दैनिक जागरण, 17 जून 2018

***

राष्ट्र की अवधारणा और भारत

*राकेश कुमार यादव**

विगत कुछ वर्षों में राष्ट्र, राष्ट्रीयता के विचार को काफी महत्त्व मिला है। राष्ट्र की प्रक्रिया वाद–विवाद का विषय है। एशिया, अफ्रीका व लैटिन अमेरिकी राष्ट्रों में प्रजातन्त्र की माँग, राजनीतिक चेतना व राष्ट्रवाद के विकास को प्रोत्साहन देने में तीव्र राजनीतिक आधुनिकीकरण ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। 'भारत में राष्ट्रवाद का उदय उन्नीसवीं शताब्दी में, विशेष रूप से 1857 के स्वतन्त्रता संग्राम के साथ हुआ तथा यह राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक शक्तियों और कारणों के संयोग का परिणाम था।'[1] राष्ट्र निर्माण की 'प्रक्रिया खण्डीकरण का प्रयास न होकर समता, स्वतन्त्रता, न्याय एवं सहभागिता के नियमों द्वारा समाज के विकास से संबंधित है।'[2] शोधपत्र में 'राष्ट्र, राष्ट्रीयता की अवधारणा' का अध्ययन व क्या भारत एक राष्ट्र है? के संदर्भ में पाश्चात्य व भारतीय विचारकों के मतों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है।

अंग्रेजी का 'नेशन' शब्द लैटिन भाषा के शब्द 'नेशियों' से बना है जिसका अर्थ है 'एक ही स्थान पर जन्म लेना' अथवा 'एक ही प्रजाति में जन्म होना'। पहले राष्ट्र के लिए एक निश्चित भौगोलिक सीमा, एक सामान्य संस्कृति का होना जरूरी माना जाता था। वैज्ञानिक तरीके से अब राष्ट्र के लिए एक स्वतन्त्र प्रभुसत्ता अपरिहार्य है। एक सामान्य संस्कृति की जगह बहुसंस्कृति आज के अधिकांश राष्ट्रों में दिखाई देती है। कार्ल दुत्श ने राष्ट्र की परिभाषा देते हुए कहा, ''राष्ट्र किसी भी वृहदाकार जनसंख्या अथवा व्यक्तियों के समूह को कहते हैं जो कि –

1. इस अर्थ में स्वतन्त्र हैं कि उस पर बाहर से शासन नहीं किया जाता,
2. बाहरी व्यक्तियों के सहयोग एवं संचार की अनुकूल क्षमताओं और अभिप्रेरणाओं की तुलना में अपनी सहज व विविध सामाजिक संचार और सहयोग की सुस्पष्ट एवं प्रभावी आदतों के आधार पर ससंजक (संशक्तिशील) है,
3. इस अर्थ में राजनीतिक रूप से संगठित है कि वह प्रभावी शासन का उपयोग करने वाली सरकार के लिए निर्वाचन–क्षेत्र प्रदान करता है,
4. इस अर्थ में स्वायत्त है कि वह सरकार के शासन को प्रभावी बनाने के लिए उसे अभिनंदन, सहमति, अनुपालन एवं समर्थन प्रदान करता है,
5. इस अर्थ में आन्तरिक रूप से वैध है कि उसके अनुपालन एवं सरकार को समर्थन देने की आदतें अथवा कम से कम, राजनीतिक सहयोग एवं राष्ट्र की सदस्यता विश्व के बारे में व्यापक विश्वासों तथा उनकी प्रकृति, व्यक्तियों व संस्कृति से संबंधित है जिससे कि उनके समर्थन द्वारा कठिन समय में भी इसके स्थायित्त्व को बनाये रखने की संभावना रहती है।''[3]

गार्नन, स्टालिन व बार्कर जैसे विचारक इसको एक समुदाय मानते हैं जो सामान्य भौगोलिक क्षेत्र, भाषा, आर्थिक जीवन एवं मनोवैज्ञानिक मेल–मिलाप व संस्कृति जैसे लक्षणों से जुड़ा है। डॉ० धर्मवीर बताते हैं कि राष्ट्र को इस प्रकार परिभाषित करने में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि अधिकांश राष्ट्रों में इन सामान्य लक्षणों में, वास्तव में, सजातीयता के स्थान पर काफी विजातीयता पायी जाती है। राष्ट्र को हम व्यापकतर अर्थ में व्यक्तियों के ऐसे समूह के रूप में परिभाषित कर सकते हैं जिसका एक निश्चित और पृथक भौगोलिक स्थान है या होने का दावा करता है, जिसकी अपनी एक सरकार है अथवा अपनी सरकार बनाने के लिए प्रयत्नशील है तथा नागरिकों में निष्ठा एवं राष्ट्र निर्माण की भावनाएँ पायी जाती हैं। इस अर्थ में कभी–कभी भौगोलिक सीमाएँ अथवा सरकार न होने के बावजूद भी किसी समूह को राष्ट्र कहा जा सकता है। इसका कारण नागरिकों में जागृत राष्ट्रीय भावनाएँ हैं जो

* पूर्व शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

परिवार, गाँव, प्रदेश तथा राज्य की सीमाओं में हो सकती हैं। आज राष्ट्र को व्यापकतर रूप से अर्थात् अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ में देखा जाने लगा है। राष्ट्र के बारे में इस विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि राष्ट्र शब्द वस्तुनिष्ठ नहीं अपितु एक भावनात्मक संप्रत्यय भी है।'[4]

ए.आर. देसाई कहते हैं कि, जिस अर्थ में राष्ट्र शब्द का प्रयोग आज किया जाता है, वह मध्यकाल के राष्ट्र के अर्थ से भिन्न है। मध्ययुग के अन्तिम चरण में राष्ट्र–राज्यों का निर्माण हुआ तथा जिन व्यक्तियों की निश्चित संस्कृति थी, निश्चित भू–भाग पर निवास करते थे, पृथक सभ्यता थी तथा एक भाषा थी, उन्हें अन्य व्यक्तियों से मनोवैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से पृथक माना जाने लगा।'[5] जय प्रकाश नारायण ने 'नेशन' व 'नेशनहुड' पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा, ' राष्ट्रत्त्व अनेक मूर्त्त व अमूर्त्त तत्त्वों से निर्मित है, अमूर्त तत्त्वों की संख्या अधिक होती है। जय प्रकाश नारायण ने निम्न मूर्त्त तत्त्व बताए –

''(अ) एक सुस्पष्ट भू–भाग

(ब) राजनीतिक एकता जिसके तीन द्योतक हैं –

(i) एक संविधान (लिखित अथवा अलिखित)

(ii) सामान्य नागरिकता,

(iii) एक सरकार, जिसकी समस्त राष्ट्रीय भू–भाग पर सत्ता है एवं अन्य राष्ट्रों से निपटने की शक्ति है। तथा

(स) बहु–प्रतिवेष्टित (बहु–भाषाई) राष्ट्रों में विभिन्न घटकों में संचार के एक या अनेक व्यवहार्य माध्यम।''[6]

जय प्रकाश नारायण जी ने अमूर्त तत्त्वों की संख्या निम्नवत बताया है –

''(क) मन की वह अभिव्यक्ति जो सभी नागरिकों की निष्ठा को, समूह या खंडीय निष्ठाओं की अपेक्षा, राष्ट्र के प्रति स्वाभाविक एवं सामान्य रूप से निर्मित करती है।

(ख) मन की वह अभिवृत्ति जो प्रत्येक राष्ट्र को, प्रत्येक समूह एवं खंड के हितों को स्वाभाविक एवं सामान्य रूप से राष्ट्रीय हितों के अधीन बनाती है।

(ग) मन की वह अभिवृत्ति जो प्रत्येक राष्ट्र को, राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक समूह तथा खण्ड के हितों के बारे में स्वाभाविक एवं सामान्य रूप से विचार करने के लिए प्रेरित करती है।''[7]

'जे. स्मेलसर' नामक विचारक ने राष्ट्रीयता की परिभाषा 'निष्ठा' से जोड़कर की वह बताते हैं, 'राष्ट्रीयता से मेरा अर्थ उस विचार से है जो कि कोई एक राष्ट्र–राज्य व्यक्ति से प्राथमिक निष्ठा के रूप में प्राप्त करता है। वह निष्ठा क्षेत्र, प्रजाति, सम्प्रदाय अथवा भाषा जैसी निम्नतर निष्ठाओं से ऊपर होती है।''[8] राष्ट्रीयता की भावना थी राष्ट्र की तरह 'हम एक हैं' के साथ जुड़ी है। यह विभिन्नता में एकता स्थापित करती है। डॉ. धर्मवीर 'जे. स्मेलसर' की परिभाषा के आधार पर इसकी निम्न विशेषताएँ बताते हैं–

''1. राष्ट्रीयता एक भावनात्मक तथ्य है जो नागरिकों की राष्ट्र के प्रति सर्वोच्च निष्ठा में अभिव्यक्त होती है।

2. राष्ट्रीयता की आधारशिला सामाजिक संरचना में निहित होती है।

3. प्रायः राष्ट्रवादी आन्दोलनों में पुनर्जागरण का तत्त्व पाया जाता है जिसके द्वारा जनता अपने भूतकाल को अति–गौरव प्रदान करती है।

4. राष्ट्रीयता का प्रेरक तत्त्व एक होने की चेतना है। निश्चित भौगोलिक सीमाएँ और राजनीतिक संगठन जिसके प्रेरक तत्त्व को बल प्रदान करते हैं।

5. राष्ट्रीयता एक विचारधारा भी है जिसमें राष्ट्र के सर्वांगीण विकास की भावना निहित है। इस दृष्टि से किसी राष्ट्र के विकास में रचनात्मक भूमिका निभा सकती है।''[9]

राष्ट्रवाद के बारे में विचार–विमर्श में यह बात सामने आती है कि राष्ट्र के सांस्कृतिक और राजनीतिक रूपों में में किस समावेशी प्रकृति का है? अभय दूबे का कहना है, इस बारे में, 'आमतौर पर समझा जाता है कि समान भाषा, साझी परम्परा, समरूप प्रजातीय आधार, जातीय और ऐतिहासिक

चेतना से किसी राष्ट्र का सांस्कृतिक आधार बनता है। साझी भाषा और संस्कृति का यह आधार दो तरह की राष्ट्रवादी परियोजनाओं को जन्म देता है। पहली, किसी बड़ी और प्रधान राष्ट्रीयता के तहत खुद को उत्पीड़ित मानने वाली छोटी राष्ट्रीयताओं की सांस्कृतिक दावेदारी जिसकी अभिव्यक्ति लोकतान्त्रिक तरीके से हो सकती है और हथियारबंद तरीके से भी। दूसरी प्रधान राष्ट्रीयता द्वारा राजनीतिक अधिकारों के छोटी राष्ट्रीयताओं को अपनी संस्कृति के साथ समरस करने की कोशिशें जिनका नतीजा खुली बहुसंख्यकवादी राजनीति में निकलता है।'[10] अभय दूबे भारत के 'हिन्दुत्त्ववादी' व श्रीलंका के सिंहली राष्ट्रवाद का उदाहरण देकर बताते हैं कि कैसे हिन्दुत्त्ववादी राष्ट्रवाद की अभिव्यक्ति लोकतान्त्रिक तरीके व सिंहली राष्ट्रवाद की अभिव्यक्ति फौजी दमन में होती है। वह यह भी बताते हैं कि राजनीतिक व सांस्कृतिक राष्ट्रवाद में बेहतर कौन है यह बताना मुश्किल है।

'क्या भारत एक राष्ट्र है'? यह महत्त्वपूर्ण वाद–विवाद का विषय रहा है। इस बारे में भारतीयों की राय पश्चिमी विचारकों की राय से मेल नहीं खाती है। पश्चिमी विचारक भारत को एक बहु राष्ट्रीय संघ कहते हैं व तर्क देते हैं जिन्हें धर्मवीर ने अपनी पुस्तक 'राजनीतिक समाजशास्त्र' में बताया है –

1. भौगोलिक दृष्टि से भारत एक विशाल देश है जिनमें प्रजातन्त्र सफल नहीं हो सकता क्योंकि आवागमन के साधनों का विकास न होने के कारण मतदान संभव नहीं है।
2. शिक्षा का अभाव है।
3. निर्धनता बहुत अधिक है।
4. जनसंख्या बहुत अधिक है।
5. स्त्रियों को समानता का अधिकार प्राप्त नहीं है।
6. अधिकांश जनता में राजनीतिक जागरूकता एवं राजनीतिकप्रभाविकता भावना नहीं है।
7. अच्छे राष्ट्रीय स्तर के नेताओं का अभाव है।
8. मतदान खर्चीला कार्य है।
9. अज्ञानता पर निर्भरता अधिक पाई जाती है।
10. सामान्य संस्कृति का अभाव पाया जाता है।''[11]

इन तर्कों को देखें तो इनके पीछे कोई ठोस आधार नहीं है। आज हरेक भारतीय की निष्ठा केन्द्र के प्रति है। मतदान, शिक्षा में बढ़ोत्तरी हुई है। लैगिंक भेद दूर हो रहे हैं। स्त्रियों को अधिकार व कानूनी सुरक्षा प्राप्त है। नागरिक अपने अधिकार व कर्त्तव्य को लेकर जागरूक हैं। हरेक नागरिक को अपने भारतीय होने पर गर्व है। मैसन व स्ट्रेची के विचार तटस्थ नहीं है। ये दोनों विचारक भारत को एक राष्ट्र नहीं मानते हैं।फिलिप मैसन का कहना है, 'एक बंगाली और एक पंजाबी में कोई भी समानता नहीं है, जबकि स्पेनवासी और इंग्लैंडवासी में अनेक समानता देखी जाती है। अंग्रेजी शासन काल में अंग्रेजी प्रशासकों का विचार था कि अगर भारत को स्वतन्त्र कर दिया जाय तो इसमें पाया जाने वाला एकीकरण (जो कि अंग्रेज अपनी देन बताते थे) पूर्णतः समाप्त हो जायेगा। साथ ही शिक्षा का विकास भी जातियों, प्रजातियों तथा विभिन्न भाषाई समूहों में भेद को समाप्त नहीं कर सकता।'[12] जॉन स्ट्रेची का मत है कि, 'भारत एक ऐसा नाम है जो एक राष्ट्र का नहीं अपितु अनेक राष्ट्रों और देशों के संकलन का सूचक है। अधिकांश विद्वानों का कहना है कि अनेक भाषाएँ होने के कारण भारत में एक राष्ट्र होने की भावना विकसित नहीं हो पाई है। भाषा व्यक्तियों तथा उनकी संस्कृति को सरलता से एक–दूसरे से भिन्न कर देती है।'[13]

भारत में जाति, भाषाई, धार्मिक विभिन्नताएँ मौजूद है। यहाँ पर अनेक संस्कृति है। इन विभिन्नताओं के बावजूद भारत में एकता स्थापित है। इस देश के देशवासियों में ऐतिहासिक एकीकरण व एक राष्ट्र के रूप में स्थापित करने वाले समस्त तत्त्व विद्यमान है। यह भावना हरेक भारतवासी के दिलों में है कि 'हम एक हैं।' देशवासियों की निष्ठा संविधान, संवैधानिक संस्थाओं व कानूनों में है। यहाँ समावेशन प्रत्येक स्तर पर है। मैक्समूलर जैसे विचारक भारत को एक राष्ट्र मानते हैं। उनके विचारों को धर्मवीर अपनी पुस्तक 'राजनीतिक समाज शास्त्र' में व्यक्त कर बताते हैं कि निम्नलिखित लक्षणों के आधार पर भारत को एक राष्ट्र कहा जा सकता है –

''1. भारत में भौगोलिक एकता पायी जाती है।
2. भारत में भाषागत एकता (पहले संस्कृति सम्पर्क भाषा थी आज हिन्दी व अंग्रेजी सम्पर्क भाषाएँ हैं।) पायी जाती है।
3. भारत वर्ष का एक लम्बा गौरवमय इतिहास है जिसमें एकता के दर्शन होते हैं।
4. सामान्य साहित्य (गीता, रामायण, महाभारत व अन्य धार्मिक ग्रन्थ) पाया जाता है। जिससे अधिकांश देशवासी प्रभावित हैं।
5. हिन्दू धर्म सारे देश को एकता के सूत्र में बाँधने का प्रयास करता है तथा तीर्थस्थल देश के चारों कोने में फैले हैं जिससे धार्मिक एकता का आभास होता है।
6. जाति व्यवस्था भले ही विभिन्नताओं एवं ऊँच–नीच को बढ़ावा देती है, फिर भी यह हमारे देश में एकता बनाये रखने में काफी सहायक है।[14]

भारत में, अंग्रेजी शासन में राष्ट्रीयता का विकास हुआ। ए.आर. देसाई ने भारत में राष्ट्रीयता के उदय के चार चरण प्रथम (1800–1885), द्वितीय (1885–1905), तृतीय (1905–1918) व चौथा (1919–1947) बताया।[15] डॉ. धर्मवीर ने निम्नकारकों को राष्ट्रीयता के उदय के लिए महत्त्वपूर्ण माना जो हैं–

''1. 1857 का स्वतन्त्रता संग्राम
2. अंग्रेजी शासन काल में राजनीतिक एकीकरण की स्थापना
3. धार्मिक अभियान एवं पुनर्जागरण आन्दोलन
4. पश्चिमी शिक्षा
5. भारत का गौरवमयी लम्बा इतिहास
6. भारतीय समाचार पत्रों एवं स्थानीय साहित्य का विकास
7. अंग्रेजों की आर्थिक नीतियों के प्रति असंतोष
8. शिक्षित भारतीयों में असंतोष
9. अंग्रेजों की प्रजातीय भेदभाव की नीति
10. परिवहन एवं संचार के साधनों का विकास
11. विदेशी सुधार आन्दोलन का लाभप्रद प्रभाव
12. अंग्रेजी शासकों की दमनात्मक नीति
13. अंग्रेजों की फूट डालो शासन करो की नीति
14. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना
15. महात्मा गाँधी द्वारा संचालित अहिंसात्मक आन्दोलन''[16]

भारत को एक राष्ट्र न मानने वाली दलीलों को डॉ. धर्मवीर निराधार बताते हैं। एक राष्ट्र के लिए एक ही भाषा हो इसको अनिवार्य कारक नहीं मानना चाहिए। दुनियाँ के अधिकांश देश बहुभाषाई हैं। उनके विरुद्ध कोई तर्क नहीं दिया जाता। अनेक भाषाएँ राष्ट्र के लिए बाधक नहीं हैं। भारत में संस्कृत लगभग सभी भाषाओं की जननी है। अनेक वर्षों से यह भूमि भारतीयों की रही है। राजा भरत के नाम पर इस देश का नाम भारत पड़ा। यहाँ अनेक जातियाँ अनेक बोलियाँ है। यहाँ की एक भौगोलिक सीमा है। यहाँ एक संविधान, एक निशान, एक राष्ट्रगान व चुनी हुई सरकार है। यहाँ के लोगों में राष्ट्रीय चेतना है। सभी लोग यह मानते हैं कि वह भारतीय है। भारत एक राष्ट्र है।

संदर्भ ग्रन्थ :

---

1 डॉ. धर्मवीर, 'राजनीतिक समाजशास्त्र', राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2011, पृ. 297

2 वही

3 कार्ल डब्ल्यू. दुत्श, ''नेशन–बिल्डिंग एंड नेशनल डेवलपमेंट : सम इश्यूज फॉर पॉलिटिकल रिसर्च'' कार्ल डब्ल्यू. दुत्श एंड विलियम जे. फोल्ट्ज (संपा.) नेशन–बिल्डिंग, एल्डाइन–एथार्टोन, न्यूयार्क, 1971, पृ. 11–12

[4] डॉ. धर्मवीर, वही, पृ. 298–99
[5] ए.आर. देसाई, 'रीसेन्ट ट्रेन्डस इन इंडियन नेशनलिज्म', पापुलर प्रकाशन, बम्बई, 1973, पृ. 51
[6] जय प्रकाश नारायण, 'क्वॉटेड फ्रॉम जी.एस. गोयल', नेशन बिल्डिंग एंड पॉलिटिकल डेवलपमेंट' न्यू एकेडमी, जालंधर, 1980, पृ. 5
[7] वही
[8] नील जे, स्मेलसर, 'सोशियोलॉजी', विले ईस्टर्न प्रा.लि.,न्यूयार्क, 1970, पृ. 264
[9] डॉ. धर्मवीर, वही, पृ. 303
[10] अभय कुमार दुबे (संपा.), 'समाज विज्ञान विश्वकोश भाग–5', राजकमल प्रकाशन, 2016, पृ. 1619
[11] डॉ. धर्मवीर, वही, पृ. 299–300
[12] फिलिप मैसन, ''यूनिटी एंड डायवर्सिटी : एन इंट्रोडक्टरी रिव्यू'', फिलिप मैसन (संपा.) इंडिया एंड सिलोन : यूनिटी एंड डायवर्सिटी, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1967, पृ. 1–19
[13] जॉन स्ट्रेजी क्वॉटेड, फिलिप मैसन (संपा.), वही, पृ. 279
[14] डॉ. धर्मवीर, वही, पृ. 301 व मैक्समूलर, क्वॉटेड फ्राम हग टिंकर ''इज देअर इन इंडियन नेशन'' फिलिप मैसन (संपादित), वही, पृ. 280
[15] ए.आर. देसाई, 'रीसेन्ट ट्रेन्ड्स इन इंडियन नेशनलिज्म' पापुलर प्रकाशन, 1973, नील जे. स्मेलसर, वही, सेक्शन II व III
[16] डॉ. धर्मवीर, वही, 305–306

***

वैदिक दर्शन में निहित पर्यावरणीय तत्वों की विवेचना

*संगीता सिंह**

वेद संसार के प्राचीनतम ग्रंथ है। वेद चार है– ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद और सामवेद। सामान्यतः यह समझा जाता है कि वेद केवल धर्म और दर्शन के ग्रन्थ हैं परन्तु वास्तविकता यह है कि इनमें उस समय तक आर्यों द्वारा खोजा एवं विकसित समस्त ज्ञान–विज्ञान सूत्र रूप में संग्रहीत है। ऋग्वेद में यूँ तो ईश प्रार्थना और देवताओं की स्तुति सम्बन्धी मंत्र अधिक है परन्तु साथ ही सृष्टि, सृष्टिकर्ता, मानव जीवन के विभिन्न पक्ष, मानव जीवन के अन्तिम उद्देश्य और उस उद्देश्य को प्राप्त करने के साधनों की विषद व्याख्या की गई है। यजुर्वेद में भी ईश प्रार्थना और देवताओं की स्तुति और मानव जीवन के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित मन्त्र हैं परन्तु साथ ही मनुष्य के करणीय तथा अकरणीय कर्मों तथा कर्मकाण्ड (पूजा–पाठ तथा विभिन्न प्रयोजन के लिए किए जाने वाले यज्ञों) की विषद व्याख्या की गई है। अथर्ववेद में भी ईश प्रार्थना, देवताओं की स्तुति एवं मानव जीवन के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित मन्त्र हैं परन्तु इसमें मुख्य रूप से मनुष्य के लौकिक एवं पारलौकिक दोनों पक्षों से सम्बन्धित ज्ञान–विज्ञान संग्रहीत है, शारीरिक स्वास्थ्य, गृहस्थ जीवन, कृषि एवं अन्य कला–कौशल (व्यवसाय) से सम्बन्धित ज्ञान संग्रहीत है। इसमें गणित से सम्बन्धित कुछ ऐसे सूत्र हैं जो आज के गणितज्ञों के लिए शोध का विषय बने हुए हैं। इतना ही नहीं अपितु जलपोत एवं वायुयान निर्माण सम्बन्धी विज्ञान भी संग्रहीत है। सामवेद में भी ईश प्रार्थना, देवताओं की स्तुति और मानव जीवन से सम्बन्धित मन्त्र है, परन्तु साथ ही वेद मन्त्रों के उच्चारण एवं गायन की विधि है, उन्हें वाणी में उतार–चढ़ाव के साथ कैसे गाया जाए, इसका विज्ञान संग्रहीत है और किस प्रकार के वेद मन्त्रों को गाने से मनुष्यों को क्या लाभ होते हैं, इनकी भी व्याख्या है।

भारतीय संस्कृति के सर्वत्र शान्ति की कामना की गयी है। अथर्ववेद 11.9.14 में शान्ति सूक्त में कहा गया है कि पृथ्वी, अन्तरिक्ष, द्युलोक, जल, औषधियाँ, वनस्पतियाँ और देव हमारे लिये शान्तिप्रद हो। शान्ति से बढ़कर हम असीम शान्ति प्राप्त करें। सभी प्रकार की शान्त प्रक्रियाओं को हम घोर कर्म, क्रूर कर्मफल और पापपूर्ण फल को दूर हटाते हैं। वे शान्त होकर कल्याणप्रद हो। वे सभी हमारे लिये मंगलदायक हो।

पृथ्वी शांति अन्तरिक्षं शान्ति शांतिद्योः शांतिरापः
शांतिरोषधयः शांतिर्वनस्पतयः शान्तिः विश्वे में
देवाः शान्तिः सर्वे में देवः शान्तिः शान्तिः शान्तिः
शान्तिभिः। ताभिः शांतिभिः सर्वशान्ताभिः
शमयामोहं यदिह घोरं यदिह क्रूरं यदिह पापं
तच्छान्तं तच्छिवं सर्वभेव शमस्तु नः।

(अथर्ववेद 11.9.14)

अथर्ववेद 11.9.7.9 में लिखा है कि सूर्य, वरूण, पृथ्वी, अन्तरिक्ष, लोहित दूध देने वाली गायें, उल्काएं, नक्षत्र आदि सभी शान्तिप्रद, सुखदायी व लोककल्याणकारी हों। भूमि में खोदकर किए गए प्रयोग भी प्राणीमात्र के लिए घातक न हो। देशकाल में होने वाले सभी प्रकार के विघ्नों का नाश होकर शान्ति स्थापित हो।

पृथ्वी सूक्त में अर्थवेद के ऋषियों ने कहा है– ''हे! धरती माँ जो कुछ मैं तुमसे लूँगा, वह उतना ही होगा जिसे तू पुनः पैदा कर सके। तेरे मर्मस्थल पर या तेरी जीवन–शक्ति पर कभी आघात नहीं करूँगा।''

* एम.ए. संस्कृत, शोधच्छात्रा, संस्कृत विभाग, नेहरू ग्राम भारती (मानित विश्वविद्यालय), प्रयागराज (उ.प्र.)

वैदिक परम्परा में पर्यावरण संरक्षण की परम्परा प्रारम्भ से ही रही है। प्रकृति को देवी और देवता के रूप में स्वीकार किया गया है। आज भी भारत में बरगद, पीपल, ऑवला, तुलसी और नीम के वृक्षों की पूजा की जाती है। केले और आम के पत्तों को महत्व दिए बिना विवाह संस्कार तक शुभ नहीं समझे जाते है। हिन्दू धर्म में 'पीपल' और 'तुलसी' के पेड़ अत्याधिक पवित्र माने जाते हैं तथा यह समझा जाता है कि इन पेड़ों में देवता निवास करते हैं। 'तुलसी' के पेड़ के लिए यह प्रसिद्ध है कि विष्णु भगवान् उसमें अवस्थित हैं। इसी प्रकार 'अशोक' का वृक्ष भी हिन्दू समाज में अत्यधिक पवित्र और पावन माना जाता है। पुत्र–प्राप्ति के लिए स्त्रियाँ 'अशोक' वृक्ष का पूजन करती हैं। 'न्यग्रोध' अथवा 'वट' का वृक्ष भी हिन्दू धर्म में बहुत ख्यात है। पुराणों में यह विवृत है कि प्रलयकाल में 'न्यग्रोध' वृक्ष पर बालक रूप में भगवान् नारायण पड़े हुए थे। वेद जिन्हें 'अरण्यक' कहते हैं, इनकी रचना वनों में हुई थी। ये वनों में गाए गए गीत है। ऋषि–मुनियों ने वनों में ही तपस्या की थी। यज्ञ–हवन द्वारा वायु तथा वातावरण की शुद्धि करना भारतीय मनीषियों की दैनिक दिनचर्या में शामिल था।

भारत में प्राचीन–काल से ही पशुओं का आदर और पूजन किया जाता रहा है। यहाँ जलीय जीवों को चारा चुगाया जाता है तथा जीव–जन्तु हमारे उपसाना के पात्र हैं। हिन्दू धर्म में शिव के साथ वृषभ, माँ दुर्गे के साथ शेर, माँ सरस्वती के हंस, माँ लक्ष्मी के उल्लू का भी पूजन किया जाता है। नन्दी के रूप में अनेक शिवमन्दिरों में वृषभ की मूर्ति आज भी देखी जा सकती है। गौ–पूजा भी समाज में प्रचलित थी। गौ को माता कहा जाता रहा है। 'सुरभि' नामक गौ को सभी गौओं की माँ माना जाता है, वैसे 'कामधेनु' नामक गौ भारतीय मिथक और पौराणिक कथाओं में अत्यधिक ख्यात रही है, जिसका दूध कभी समाप्त नही होता था, तथा जिसकी शक्ति अपरिसीम होती थी। उनकी सेवा करने से पुत्र की प्राप्ति होती थी। 'पंचगव्य' का हिन्दू धर्म में महत्व रहा है जो गौ के दूध, दही, मक्खन आदि को मिलाकर बनता है। नाग पूजा भारतीय समाज में प्रचलित थी। नागों को दूध, लावा, भुने जौ का आटा, दुग्ध मिला हुआ आटा, जल, पुष्प आदि अर्पित किया जाता था। आज भी नागपंचमी के दिन नागपूजा की जाती है।

हिन्दू धर्म में विभिन्न पर्वतों का भी महत्वपूर्ण स्थान रहा है, जिनका समय–समय पर पूजा होता था। मेरू, कैलाश, हिमालय आदि पर्वतों का उल्लेख हिन्दू धर्मशास्त्रों और पुराणों में हुआ है तथा उनके धार्मिक स्वरूप का विवरण दिया गया है। मेरू पर्वत का इसलिए महत्व था कि उसके आस–पास देवताओं का निवास था। शिव के कारण कैलाश पर्वत की महिमा थी। भगवान शिव स्वयं उस पर्वत पर विराजमान रहते थे। हिमालय की पुत्री पार्वती थीं, जिनका विवाह कैलाश पर्वत निवासी शंकर से हुआ था। आज भी हिमालय पर्वत शिखर का नाम कैलाश है, जिसका मान और महत्व शिव के कैलाश के रूप में है। इसी प्रकार 'विन्ध्य' पर्वत का महत्व 'विन्ध्यवासिनी' देवी से है, जहाँ शक्ति सम्प्रदाय और दुर्गा के अनुयायी लोग पूजन के लिए जाया करते हैं।

वैदिक दार्शनिक परम्परा में नदियों और सरिताओं की देवी व माँ के रूप में पूजा की जाती थी। ऐसे पवित्र नदियों का उल्लेख उत्तरवैदिक–कालीन ग्रन्थों के अतिरिक्त पुराणों और साहित्यिक ग्रन्थों में है। गंगा (जाह्नवी) नदी के लिए कहा जाता है कि वह भगवान विष्णु के पैर से निकलकर आकाश में प्रवाहित होती हुई (मन्दाकिनी) शिव की जटा से होकर पृथ्वी पर गिरी। गंगा को देवी के रूप में स्वीकार किया गया है। सरस्वती नदी भी देवी के रूप में स्वीकार की गई, जो भूतल के नीचे बहकर गंगा की धारा में मिल गई। प्रयाग का संगम तीन महान् पवित्र नदियों का संगम है, जिसमें गंगा, यमुना और सरस्वती नदियों की धाराएं मिलती है। दक्षिण में नर्मदा, गोदावरी, कृष्णा और कावेरी उत्तर की गंगा, यमुना, सरस्वती आदि नदियों की भाँति ख्यात हैं। इन नदियों के निकट रहने वाले लोग हृष्ट–पुष्ट, निरोगमय रहते थे तथा आपस में मिल–जुल कर सुखमय जीवन व्यतीत करते थे।

मनुस्मृति में निर्देश दिया गया है कि किसी भी व्यक्ति को जल में मल–मूत्र का त्याग तथा थूकना नहीं चाहिए। जल में वरूण देवता का वास माना गया है। सदैव से धर्मप्रिय और धर्म–भीरू रहने वाले भारतवासी जलप्रदूषण से सदैव दूर रहते थे।

यह प्रकृति और वातावरण से अनुकूल सम्बन्ध का परिणाम ही था कि मानव की औसत आयु 100 वर्ष थी। ''शतापुर्वे पुरुषः जीवम् शरदः शतम् एवं शतं वर्षाणि जीव्यासम्।'' इन सौ वर्षों के जीवनकाल के आधार पर ही चार आश्रमों को 25–25 वर्षों का मानकर **आश्रम व्यवस्था** का नियोजन किया गया। प्राचीन काल से मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन को विभिन्न स्तर के साथ अनुशासन, संयम और नियम के अन्तर्गत रखा गया था, जिसे आश्रम– व्यवस्था कहते हैं। मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन, बाल्यावस्था से वृद्धावस्था तक चार आश्रमों से विभाजित किया गया था– ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम। आश्रम की व्यवस्था हिन्दू विचारधारा के जीवन दर्शन की अभूतपूर्व व्यवस्था थी, जिसके माध्यम से मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन अत्यन्त नियमित और संयमित किया गया था।

वानप्रस्थं भैक्ष्यचर्य गार्हस्थ्य च महाश्रमम्।
ब्रह्मचर्याश्रमं प्राहुश्चयतुर्थ ब्राहणैर्वृतम्।।

(मनुस्मृति 18.12.8)

आश्रम धर्म के अनुपालन से मनुष्य अपना आत्मिक, नैतिक और शारीरिक विकास करता था। मनु के शास्त्रानुरूप ग्रहण किये गये इन चारों आश्रमों का विधिवत् अनुपालन करने वाला विप्र परम गति (मोक्ष) प्राप्त करता है।

सर्वेऽपि क्रमशस्त्वेते यथाशास्त्रं निषेयिताः।
यथोक्तकारिणं विप्रम् नयन्ति परमां गतिम्।।

(मनुस्मृति 18.12.16)

प्रत्येक आश्रम के अलग–अलग संयम और नियम हैं, जिनका अनुपालन करने के लिए धर्मशास्त्रकारों ने निर्देश दिया है। ब्रह्मचर्य आश्रम के अन्तर्गत ब्रह्मचारी का यह धर्म निर्दिष्ट किया गया था कि वह गुरु के सान्निध्य में रहकर वेदाध्ययन करें, सूर्योदय के पूर्व उठे, स्नानादि के पश्चात् सन्ध्योपासना और गायत्री–जप करें, शाकाहारी होते हुए प्रसाधन सामग्री, स्त्रीस्पर्श, संगीत, नृत्य आदि से दूर रहे, इन्द्रियों को वश में रखे, गुरु की सेवा करें तथा भिक्षाटन कर अपना तथा अपने गुरु का पोषण करें। भिक्षाटन का उद्देश्य छात्र को विनयशील तथा धैर्यवान बनाना था।

ब्रह्मचारी व्रती नित्यं नित्यं दीक्षापरो वशी।
परिचार्य तथा वेदं कृत्यं कुर्वन् वसेत् सदा।।

(मनुस्मृति 18.15.7)

गृहस्थ का यह परम कर्त्तव्य माना गया था कि वह त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ और काम) का पालन करता हुआ गृहस्थ कार्यों को करें। मनु ने सभी आश्रमों को गृहस्थ के अन्तर्गत मानकर यह लिखा है कि गृहस्थ आश्रम समुद्र के रूप में हैं, जिसमें अन्य आश्रम नदी के रूप में मिलते हैं। गृहस्थ के लिए अहिंसा, सत्य वचन, शम, दान आदि उत्तम धर्म माना गया है।

अहिंसा सत्यवचनं सर्वभूतानुकम्पनम्।
शमो दानं यथाशक्ति गार्हस्थ्यो धर्म उत्तमः।।

(मनुस्मृति 20.6.5)

विभिन्न यज्ञों का सम्पादन गृहस्थ आश्रम के माध्यम से ही सम्भव था। पंचमहायज्ञों की पूर्ति तथा सन्तानोत्पत्ति गृहस्थ आश्रम में रहकर सम्पन्न की जाती रही है। देव–ऋण और पितृ–ऋण जैसे ऋणों से मुक्ति गृहस्थ आश्रम का अनुपालन करने से ही संभव था। गृहस्थ जीवन से अवकाश लेकर व्यक्ति वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करता था। सांसारिक मोह–माया को त्यागकर एकान्त का आध्यात्मिक जीवन वानप्रस्थ का था। एक प्रकार से वानप्रस्थ आश्रम व्यक्ति के लिए संन्यास का प्रारम्भिक रूप था जिसमें वह वन में रहकर संयम, त्याग, अनुशासन, धर्माचरण, सेवाभाव, तपश्चर्या आदि का अभ्यास करता था तथा विषय भोग पर नियंत्रण रखता था। चौथा आश्रम संन्यास का जीवन था। संन्यास आश्रम में प्रवेश करने वाला व्यक्ति संन्यासी अथवा परिब्राजक कहा जाता था जो संसार से पूर्णतः विरक्त होकर अपने को ईश्वर–भक्ति में लगाता था। उसे रोष, मोह, लोभ आदि से दूर रहना पड़ता था

तथा सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर–प्रणिधान (भगवान् की आराधना) आदि का पालन करना पड़ता था।

एवं गृहस्थाश्रमे स्थित्वा विधिवत्स्नातको द्विजः।
वने वसेत्तु नियतो यथावद्विजितेन्द्रियः।।
देवताभ्यस्तु तद्धुत्वा वन्यं मेध्यतरं हविः।
शेषमात्मनि युंजीत लवणं च स्वयंकृतम्।।

(मनुस्मृति 18.12.2)

इन चारों आश्रमों का विभाजन क्रमशः धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के आधार पर किया गया था। इन आश्रमों का उद्देश्य मानव समाज का कल्याणकारी विकास करना था। इसमें धर्म और मोक्ष को नैतिक आधारशिला के रूप में स्वीकृत किया गया तथा अर्थ और काम को व्यवहारिक तथा मनोवैज्ञानिक आधार पर स्वीकार किया गया था। आश्रम धर्म के अनुपालन से व्यक्ति संस्कारवान् तथा संयमी बनकर जीवन को उन्नत और विशिष्ट बनाता था।

मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन जन्म से लेकर मृत्यु तक विभिन्न संस्कारों से शुद्ध और पवित्र होता रहा है। संस्कारों को सम्पन्न किये बिना व्यक्ति का जीवन अपवित्र, अपूर्ण और अव्यवस्थित था। शरीर और आत्मा की शुद्धि और पवित्रता संस्कारों के संपादन से ही सम्भव थी। जीवन को विविध बाधाओं और विघ्नों से दूर रखना संस्कारों का मूल उद्देश्य रहा है। इन संस्कारों के करने में हवन और अग्नि की सर्वाधिक अपेक्षा की जाती रही है। जल में अभिषिंचन करते हुए पूर्वाभिमुख होकर प्रतीक रूप में शुभ की प्राप्ति और अशुभ के निवारणार्थ मंगलमय घड़ी में अपने को पूर्णरूपेण पूजन में संलग्न करते हुए संस्कार क्रियान्वित किये जाते थे। इस प्रकार वैयक्तिक जीवन को योग्य, गुणाढ्य, परिष्कृत और व्यवस्थित रूप प्रदान करने में संस्कारों का महत्वपूर्ण योग रहा है। अतः जीवन को मंगलकारी बनाने के लिए **सोलह संस्कारों** का विधान किया गया। बालक को आदर्श नागरिक बनाने हेतु जन्म के पूर्व से ही विशेष संस्कार संपादित किये जाते थे जो उसके लिए एक उत्कृष्ट सामाजिक व सांस्कृतिक पर्यावरण का सृजन करते थे। इनमें से कतिपय महत्वपूर्ण संस्कार अधोलिखित हैं–

- **गर्भाधान संस्कार–** हिन्दू समाज में किया जाने वाला यह पहला संस्कार है। इस संस्कार के माध्यम से विवाहोपरान्त पुरुष स्त्री में अपना बीज स्थापित करता और सन्तान की कामना करता है। उपयुक्त *समय* और *वातावरण* का ध्यान रखना अपेक्षित रहा है। स्त्री का ऋतु–काल में रहना आवश्यक माना गया। ऋतु–स्नान के बाद चौथी रात्रि में सोलहवीं रात्रि तक गर्भधारण के लिए उपयुक्त समय अवधि मानी गई है। रात्रि का समय ही गर्भाधान के लिए ठीक माना गया है और वह भी अर्द्धरात्रि के बाद। दिन का समय निषिद्ध था। रात्रि में भी पिछला प्रहर श्रेयस्कर था। 8वीं, 15वीं, और 30वीं, रात्रियाँ गर्भाधान के लिए पूर्णतः वर्जित थीं।

षपोडशर्त्तुनिशाः स्त्रीणां तासु युग्मालु संविशेत्।
पर्वाण्याद्याश्च वर्जयेत।
पोडशर्त्तुनिशाः स्त्रीणां तासु युग्मासु संविशेत्।
ब्राह्मचार्येय पर्वाण्याद्याश्चतस्त्रस्तु वर्जयेत्।।

(मनुस्मृति 11.2.5)

इनके अतिरिक्त सोलह रात्रियों में प्रथम चार, ग्यारहवीं और तेरहवीं रात्रियाँ भी निन्दित थीं और शेष दस रात्रियाँ श्रेष्ठ थी। पुत्रेच्छुक पुरुष का सम रात्रियों में स्त्री–गमन करने का विधान किया गया। इस प्रकार गर्भाधान संस्कार का उद्देश्य था, स्वस्थ, सुन्दर और सुशील सन्तान का निरापद जन्म।

- **पुंसवन संस्कार–**गर्भ के तीसरे महीने 'पुंसवन संस्कार' का आरोपण किया जाता था। यह संस्कार पुत्र–सन्तानोत्पत्ति के निमित्त निष्पन्न होता था।

पुंसवनमिति कर्मनामधेयं येन कर्मणा निमित्तेन गर्भिणी पुमासमेव सूते सत्पुंसवनम्।

(मनुस्मृति)

इस संस्कार के माध्यम से पुत्र प्रदान करने वाले देवताओं को प्रसन्न किया जाता था। कभी–कभी यह दो मास से लेकर आठ मास तक के बीच किसी समय सम्पन्न होता था। जब चन्द्रमा पुष्प नक्षत्र में होता था तब यह संस्कार निष्पन्न किया जाता है। पुत्र–सन्तान के लिए यह नक्षत्र मंगलकारी थी। इसलिए रात्रि में *बरगद की छाल का रस* स्त्री को नाक के दाहिने छिद्र में डाला जाता था ताकि उसे गर्भपात न हो। वह व्रत रखती थी तथा देवताओं का पूजन–अर्चन करती थी। पुराणों में उल्लिखित है कि तेजस्वी पुत्र की प्राप्ति के लिए यह संस्कार होता था।

तस्यामाधत्त गर्भे स तेजस्विनुमुदारधीः।

(पुरुष, सुक्त, अर्थवेद)

• **नामकरण संस्कार–** हिन्दू समाज में सन्तान को नाम प्रदान करना भी एक संस्कार माना गया। परिवार में नाम का अत्यधिक महत्व रहा है, जो *शुभ कर्मों और भाग्य का आधार* माना गया है। शिशु के नाम का चुनाव धार्मिक क्रियाओं के साथ निश्चित तिथि को सम्पन्न किया जाता था। नामधेय के लिए नामकरण का काल और नामार्थक शब्दों का विचार भी इसका आवश्यक अंग था। मनु के अनुसार दसवें और बारहवें दिन शुभ तिथि, नक्षत्र और मुहर्त्त में नामकरण संस्कार का आयोजन करना चाहिए।

नामधेयं दशभ्यां तु द्वादश्यां वास्य कारयेत्।
पुण्ये तिथौ मूहूर्त्ते वा नक्षत्रे वा गुणान्विते।।

(मनुस्मृति 14.11.17)

• **निष्क्रमण संस्कार–** जन्म से एक निश्चित अवधि के बाद जब संतान को पहली बार घर के बाहर निकाला जाता था, तब वह 'निष्क्रमण' कहा जाता था। इस संस्कार के पहले माँ और शिशु को एक प्रकोष्ठ में रखा जाता था तथा वहां से कहीं और जाने की अनुमति नहीं होती थी। निष्क्रमण संस्कार सम्पन्न करने के बाद ही शिशु अपनी माता के साथ बाहर लाया जाता था। यह संस्कार प्रायः जन्म के बारहवें दिन से चौथे मास तक सम्पन्न हो जाता था। एक निश्चित मंगलमय तिथि को पूजा–पाठ के बाद सन्तान को घर के बाहर *प्राकृतिक वातावरण* में लाया जाता था। इस संस्कार को सम्पन्न करने की निर्धारित तिथि के दिन गृह के किसी ऐसे हिस्से को *गोबर और जल* से पवित्र किया जाता था, जहाँ से सूर्य का दर्शन सम्भव था। स्वस्तिक का चिन्ह बनाकर उस पर *धान* डाले जाते थे। शिशु को स्नान कराकर, नवीन वस्त्र धारण कराकर, यज्ञ के सम्मुख लाकर वेद–मन्त्रों का पाठ होता था। तत्पश्चात् शिशु को माँ की गोद में देकर सर्वप्रथम उसे सूर्य का दर्शन कराया जाता था।

• **अन्नप्राशन संस्कार–** पाँचवें महीने के बाद शिशु अन्न खाने लायक हो जाता है और वह धीरे–धीरे अन्न की ओर आकृष्ट होने लगता है। इस संस्कार के पूर्व तक शिशु माँ के दूध और गाय के दूध पर पलता है। पाँच–छह महीने के बाद माँ का दूध कम होने लगता है तथा बच्चे को अधिक पौष्टिक आहार की आवश्यकता पड़ती है जिससे उसके शरीर का विकास ठीक से हो सके। अतः अन्प्राशन संस्कार द्वारा बच्चे को *गोबर से लिपाई* युक्त जमीन पर बैठकर अन्न ग्रहण कराया जाता था।

• **उपनयन संस्कार–** 'उपनयन' का अभिप्राय स्वाध्याय अथवा वेद के अध्ययन से है, जब बालक आचार्य के निकट अध्ययनार्थ जाता था 'उपनयन' के लिए 'यज्ञोपवीत' शब्द का भी प्रचलन हुआ, जिसका अर्थ है यज्ञ का उपवीत। हिन्दू समाज में उपनयन संस्कार का सर्वाधिक महत्व है। जिसका सम्बन्ध व्यक्ति के *बौद्धिक उत्कर्ष* से है। यह संस्कार इस बात का प्रमाण था कि अनियमित और अनुत्तरदायी जीवन समाप्त होकर *नियमित, गम्भीर और अनुशासित जीवन* प्रारम्भ हुआ। शैक्षणिक और सांस्कृतिक दृष्टि से इस संस्कार की उल्लेखनीय महत्ता थी। इसके माध्यम से व्यक्ति गुरु, वेद, यम, निपयम और देवता के निकट पहुँचता था, ताकि वह ज्ञान प्राप्त कर सके। उपनयन संस्कार हो जाने के बाद ही बाल 'द्विज' अर्थात् दुबारा जन्म लिया हुआ कहा जाता था। उपनयन की तिथि के एक दिन पहले गणेश, लक्ष्मी, सरस्वती आदि विभिन्न देवी–देवताओं की पूजा की जाती थी। रात भर बालक मौन धारण किये रहता था। उपनयन के दिन माँ–बाप अपने बालक के साथ बैठक भोजन करते थे। इससे स्पष्ट है कि बालक माँ के स्नेह के बाद संसार–सागर में प्रवेश करता था। बालक स्नानादि करके

'कौपीन' धारण करता था। कमर में 'मेखला' पहनता था। गुरु द्वारा दिये गये 'उत्तरीय' को वह उपयोग में लाता था। तदनन्तर वह जनेऊ पहनता था, जिसके तीन धागे सत्, रज और तम गुणों के प्रतीक थे। साथ ही ये तीनों धागे उसे ऋषि–ऋण, देव–ऋण और पितृ–ऋण का भी स्मरण दिलाते थे।

यज्ञोपवीत संस्कार की कार्य–पद्धति के अन्तर्गत बालक को स्नान कराकर कौपीन (लँगोटी) धारण करने के लिए दी जाती थी। स्नान से उनका मन और शरीर शुद्ध होता था। आचार्य उसके कटि के चारों ओर मेखला बाँधता था तथा उसे उपवीत धारण करने के लिए दिया जाता था। आचार्य शिष्य को सावित्री मन्त्र के साथ उपदेश देता था। सावित्री मन्त्र बुद्धि और ज्ञान के उत्कर्ष का प्रमुख प्रेरक तत्व था, जिससे व्यक्ति आध्यात्मिक विकास करता था। ये कार्य सम्पादित कर दिये जाने के बाद विद्यार्थी को भिक्षा–याचना के लिए निर्देश दिया जाता था, जो उसकी *नम्रता और सदाचारिता* का प्रतीक था। साथ ही इससे यह भी स्पष्ट होता था कि विद्यार्थी सम्पूर्ण समाज पर आश्रित है।

हिन्दू समाज में जीवन को अनुशासित और बुद्धि संचालित बनाने में उपर्युक्त संस्कार विधानों का बहुत बड़ा योगदान था। इससे दायित्व–निर्वाह तथा निस्पृह और निर्लिप्त जीवन विकसित होता था। मनुष्य की सामाजिक और शैक्षणिक उपलब्धियाँ इस संस्कार की सम्पन्नता के पश्चात् ही संभव थी। आज भी हिन्दू परिवारों में उपनयन संस्कार की वही महत्ता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि वैदिक दर्शन में पर्यावरण शिक्षा व्यक्ति के व्यवहार में ही परिलक्षित होती थी। संस्कारिक तथा संयमित नागरिक स्वमेव पर्यावरण का मित्र होता था।

निष्कर्ष–

1. भौतिक तथा जैविक पर्यावरण का संतुलन तथा शुद्धता लोगों की सामाजिक तथा सांस्कृतिक पर्यावरण की पवित्रता और नैतिकता पर आश्रित थी।
2. मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन को आश्रम व्यवस्था के अन्तर्गत विशेष, अनुशासन, संयम और नियम के अधीन रखा गया था जो कल्याणकारी सामाजिक पर्यावरण की संरचना करता था।
3. मानव जीवन को पवित्र तथा व्यवस्थित बनाने के लिए 16 प्रकार के विभिन्न संस्कारों प्रमुखतः गर्भाधान संस्कार, पुंसवन संस्कार, सीमान्तोनयन संस्कार, नामकरण संस्कार, निष्क्रमण संस्कार, अन्नप्राशन तथा उपनयन संस्कार का विधान था।
4. नदियों, जलाशयों तथा पर्वतों को माता व देवी–देवताओं के रूप में पूजा जाता था। जल में वरूण देवता का वास माना गया तथा जल में मल–मूत्र का त्याग व थूकना पापकर्म समझा जाता था।
5. वृक्षों (पीपल, ऑवला, बरगद, तुलसी, केला, नीम, अशोक आदि) को देवी–देवताओं के रूप में तथा पशुओं (गाय, वृषभ, चूहा, शेर, हंस, नाग, मोर) को देवी–देवताओं के वाहन के रूप में वंदनीय स्वीकारा गया।
6. अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में कहा गया– ''हे! धरती माँ जो कुछ मैं तुमसे लूंगा, वह उतना ही होगा जिसे तू पुनः पैदा कर सके। तेरे मर्मस्थल पर या तेरी जीवन–शक्ति पर कभी आघात नही करूँगा।''
7. वैदिक मंत्रों में सम्पूर्ण जगत के लिए कल्याण एवं शान्ति की कामना की गई है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. पाण्डेय, आर0एस0 (1983), 'शिक्षा दर्शन'', विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा–2
2. शर्मा, बी0एल0, (1991), ''पर्यावरण नियोजन एवं परिस्थितिकी विकास'', आगरा, साहित्य भवन।
3. शर्मा, चंदधर, (1991), ''भारतीय दर्शन– आलोचन और अनुशीलन'', दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स प्रा0लि0।
4. गोपाल, कृष्णन सरोजिनी (1992), इम्पैक्ट ऑफ एन्वयर्मेन्टल एजुकेशन ऑन प्राइमरी स्कूल चिल्ड्रेन'', अविनाशिलिंगम इस्टीट्यूट फार होम साइंस एण्ड हायर एजुकेशन फार वुमेन, बुच सर्वे, भाग–2, पेज–1754
5. सिंह, बी0एन0, (1994), ''भारतीय दर्शन'', वाराणसी–5, स्टूडेण्ट्स फेण्ड्स एण्ड कंपनी।

6. दत्ता एवं चटर्जी (1994), भारतीय दर्शन पटना, पुस्तक भण्डार पब्लिशिंग हाउस।
7. पाठक, पी0डी0 (1995), ''भारतीय शिक्षा की समस्याएँ'', विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा–2
8. पाठक, पी0डी0, (1995), ''भारतीय शिक्षा की समस्याएँ,'' आगरा–2, विनोद पुस्तक मंदिर।
9. ग्रेवाल एवं राजपूत (1998), ''ए कम्परेटिव स्टडी ऑफ एन्वायमेन्टल एटीट्यूड ऑफ मिडिल स्टेज'', भोपाल रीजनल कालेज ऑफ एजुकेशन।
10. सिन्हा, प्रो0 हरेन्द्र प्रसाद (1999), ''भारतीय दर्शन की रूपरेखा'', दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास।
11. नसरीन, (1999), ''एनवायरनमेंट एजूकेशन'', नई दिल्ली, ए0पी0एच0 पब्लिसिंग कॉरपोरेशन।
12. श्रीवास्तव, वी0के0, (2001), ''पर्यावरण और पारिस्थितिकी'', गोरखपुर वसुन्धरा प्रकाशन।
13. पाण्डेय, आर0एस0, (2003), ''भारतीय शिक्षा की समसामायिक समस्याएँ'', आगरा–2, विनोद पुस्तक मंदिर।
14. वाजपेयी, एल0बी0, (2003), ''शिक्षा में नवाचार एवं तकनीकी'', लखनऊ–इलाहाबाद, आलोक प्रकाशन।

***

''महर्षि अरविन्द के दृष्टिकोण में पारमार्थिक सत्ता का स्वरूप : एक अवलोकन''

*डॉ. रवि शंकर कुमार**

श्री अरविन्द विदेशों में विदेशी ज्ञान से तो शिक्षित हुए, परन्तु भारतीय संस्कृति धर्म तथा दर्शन से प्रभावित होकर शिक्षाविद, कवि, रहस्यात्मक और तत्त्व चिन्तक के रूप में वे प्रसिद्धि हासिल करने में सफल भी हुए। अरविन्द का दृष्टिकोण अद्वैतवादी बना, परन्तु उनका दर्शन योग की अनुभूतियों से अभिभूत समन्वयकारी मार्ग की और अग्रसर हुआ। उन्होंने आत्मा (चैतन्य) ओर पदार्थ (भौतिक पदार्थ) दोनों के अस्तित्व को स्वीकार करके अध्यात्मवाद तथा भौतिकवाद दोनों के प्रति समन्वयात्मक दृष्टिकोण अपनाया है। समकालीन भारतीय दार्शनिकों में अरविन्द का दर्शन मूल रूप से अद्वैत वेदान्त का ही दर्शन है, परन्तु उन्होंने पारमार्थिक सत्ता की विवेचना एक महत्वपूर्ण रूप से शंकराचार्य के दर्शन से भिन्न प्रकार से की है। **उनका मानना है कि पारमार्थिक सत्ता मानवीय विचार से परे की सत्ता है**, पारामार्थिक सत्ता को न तो हम **एक** कह सकते है, न ही **दो** और न ही **अनेक** एवं न ही उस सत्ता की विवेचना **द्रव्य** और **गुणों** के रूप में कर सकते हैं मानवीय ज्ञान के संदर्भ में परमसत्ता की अवधारणा तीन रूपों में सम्भव है वे रूप हैं– सत्, चित–शक्ति और आनन्द । उनका मानना है कि परमसत्ता सत्, चित–शक्ति और आनन्द का रूप है जबकि जगत् (विश्व) का जड़, अचेतन और दुःखपूर्ण का रूप है। वहीं शंकराचार्य ने 'जगत्' को माया द्वारा उद्भूत मानकर जगत् को असत् स्वीकार किया, लेकिन अरविन्द ने जगत् को दिव्य या परमसत्ता की अभिव्यक्ति मानने के कारण जगत् को असत् न मानकर वास्तविक माना है। इनका मानना है कि माया केवल **शक्ति** है जिसके द्वारा **ब्रह्म** जगत् की उत्पत्ति करता है।

दर्शन के विद्धानों का मानना है कि श्री अरविन्द का दर्शन, दार्शनिक दृष्टि में वेदान्त की एक नयी व्याख्या है जिसे नव्य–वेदान्त कहा जा सकता है। वेदान्त की नयी व्याख्या का प्रारम्भ तो स्वामी विवेकानन्द ने किया, परन्तु नव्य–वेदान्तवाद के शिल्पकार श्री अरविन्द थे। दर्शन के विद्धानों के अनुसार आधुनिक भारत के महान् संत महात्मा गाँधी थे, तो महान कवि टैगोर, परन्तु सबसे बड़े विचारक श्री अरविन्द थे।

अरविन्द द्वारा दिया गया परमसत्ता के सिद्धान्त को सर्वागीण अव्दैतवाद (Integral Advaitism) कहा जाता है। उनका मानना है कि परमतत्व अव्दैत है, क्योंकि वह एक है और चित्, अचित् के द्वैत का निषेद्य करता है अर्थात् चित् और अचित् आदि दोनों ही इस एक अव्दैत, परमतत्व के आवश्यक अंग हैं, इसलिए सर्वांगीण कहा जाता है। इसे ऐक्य अद्वैतवाद भी कहा जाता है, क्योंकि यह चेतन, और जड़ के द्वैत को नहीं स्वीकार करता, बल्कि **जड़ चेतन की अन्तर्निहित एकता** पर बल प्रदान करता है। इसे **पूर्णांग अद्वैतवाद** भी कहा जाता है, क्योंकि चेतन और अचेतन पृथक रूप से अपूर्ण है, परन्तु एक साथ मिलकर दोनों पूर्ण हो जाते हैं। इनकी अपूर्णता ऐक्य में समाहित हो जाती है।

अरविन्द को मानना है कि परमतत्त्व चेतन–अचेतन दोनों से परे और एक है, परन्तु चेतन–अचेतन परमतत्त्व के स्वरूप है। अतः परमसत्ता दोनों का समन्वयवादी रूप प्रतीत होता है। इसलिए इसे समन्वयवादी मानते हैं। यह समन्वय इसके विरोधी स्वभावों का समन्वय है। यदि इनके विरोधों को समाप्त कर दिया जाय तो दोनों में एकता स्थापित हो जायेगी, दोनों एक अंग बन जायेंगी। दोनों पृथक रूप से एकांगी है और दोनों मिलकर सर्वांगीण बन जायेंगे। यही सर्वांगीण अद्वैतवाद है।

श्री अरविन्द के दृष्टिकोण में भूत (matter) तथा चेतन (Spirit) दोनों का अस्तित्त्व है। उन्होंने कहा कि भूत को स्वीकार करके चेतन को अस्वीकार करना और चेतन को स्वीकार करके अचेतन (भूत)

* अतिथि शिक्षक, दर्शनशास्त्र विभाग, ए.एन. कॉलेज, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना

को दर्शन के लिए उचित नहीं है। ऐसा करने से वह दर्शन एकपक्षीय दर्शन हो जाता है। इसी संदर्भ में कहा जाता है कि– ''उपनिषद् इस तथ्य को स्वीकारता है कि भूत वस्तुतः चेतन (Spirit) है। भूत भी ब्रह्म का अंश हैं। दर्शन के इतिहास में एक अजीब बात पाई जाती है। भौतिकवादियों ने आत्मा को नकार दिया और प्रत्ययवादियों ने भूत की सत्ता को नकार दिया। इसका परिणाम हुआ कि दर्शन या तो जीवन से कट गया या आत्मा से कट गया। भौतिकवादियों ने ज्ञान का एकमात्र स्रोत इन्द्रियजनित अनुभूति को माना है। इन्द्रियजनित ज्ञान की एक बड़ी सीमा है। ज्ञान का एक व्यापक क्षेत्र इन्द्रियों की परिधि के बाहर है। इसको अरविन्द ने जड़वादी निषेद्य (मैटिरियलिस्ट डिनायल ऑफ् दी स्पिरिट) कहा है तथा इसे एकपक्षीय बतलाया है। दूसरी तरहफ अध्यात्मवादियों ने वास्तविक जगत् की सत्ता को नकारा और उसे श्री अरविन्द ने वैराग्यमूलक अस्वीकृत (द रिफ्युजल ऑफ द एसेटिक) कहा। श्री अरविन्द ने इसे भी एकपक्षीय बतलाया। वेदान्त–दर्शन ने आत्मा की सत्ता को माना तथा भूत की सत्ता को नकार दिया। ''[1] उनका मानना है कि एकांगी दर्शन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के उत्थान में बाधक सिद्ध हुआ है। उन्होंने जड़वाद तथा प्रत्ययवाद दोनों का विचित्र रूप से अपने पूर्णवादी दर्शन में समन्वय प्रस्तुत किया और कहा कि जड़वाद ने मानवीय मन से अंधविश्वास हटाने में मदद की है वहीं प्रत्ययवाद (अध्यात्मवाद) मानव के सांस्कृतिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक जीवन को संपन्न बताया है। वे इन दोनों विचारों में समन्वयीकरण अपने संपूर्ण दर्शन में किया है। उनका मानना है कि एक सच्चा एकवाद (अद्वैतवादी)

दर्शन वही होगा जिसमें परमतत्त्व को सद् (शुभ/आत्मा) और असद् (अशुभ/अनात्म) दो प्रकार से विभाजित नहीं किया गया हो, क्योंकि तैत्तिरीय उपनिषद् में विचारित किया गया है कि आरम्भ में असद् (non-being) था और असद् से सद् (being) आया। अरविन्द को मानना है कि असद् का अर्थ सत्ता (Existence) का निषेध नहीं है बल्कि असद् का मतलब वह हमारी बुद्धि के क्षेत्र के बाहर है। जब हम 'शून्य' की जाँच करते हैं तो पाते हैं कि यह (शून्य) हमारी विवेक (बुद्धि) के परिधि से बाहर है हमारी बुद्धि शुद्ध–सत्ता (Pure-existence) या ब्रह्म को समझ नहीं सकता अर्थात् इसे समझने में हमारी बुद्धि असमर्थ है। श्री अरविन्द 'शून्य' का अर्थ सद्हीन नहीं बताया बल्कि एक भावात्मक अर्थ में स्वीकार किया है अर्थात् आधुनिक भारतीय विचारकों ने ''शून्य'' को भावात्मक अर्थ में स्वीकार करते हैं।

इस आलेख का मूल उद्देश्य है अरविन्द के दृष्टि में परमतत्त्व के स्वरूप को समझना। हमने पूर्व में उल्लेख किया है कि अरविन्द ने परमतत्त्व की अवधारणा को मानवीय ज्ञान के संदर्भ में तीन रूपों में सम्भव माना है–सत्, चित् और आनन्द। अतः सत्, चित् और आनन्द का विश्लेषण यहाँ आवश्यक जान पड़ता है ताकि इससे ब्रह्म/परमतत्त्व का स्वरूप स्पष्ट रूप उपस्थित होगी। हमने पूर्व में उल्लेख किया है कि श्री अरविन्द के दर्शन को पूर्ण अद्वैतवाद (integral advaitism) कहा जाता है। उनका यह विचार चेतन एवं अचेतन (ब्रह्म एवं विश्व/जगत) दोनों की सत्ता को स्वीकार करता है तथा दोनों में समन्वयीकरण करता है।

उल्लेखनीय है कि शंकराचार्य के अद्वैतवाद जगत को मिथ्या मानता है और परब्रह्म (सच्चिदानंद) को एकमात्र सत्ता स्वीकार करता हे। वे एकवादी (monist) दार्शनिक हैं तथा जगत् को मात्र व्यावहारिक सत्ता मानते है वहीं अरविन्द परमतत्त्व (Ultimate reality) को सच्चिदानंद का नाम देते है जो तीन रूपों से युक्त हैं। शंकर तथा अरविन्द दोनों ने ब्रह्म के तीन पक्षों को स्वीकार किया है जिसका संकेत हमें सच्चिदानंद से मिलता है यहाँ यह उल्लेखनीय है कि उपनिषद् एवं अद्वैततवेदान्त ने भी परमतत्त्व को सच्चिदानंद स्वीकार किया है। श्री अरविन्द ब्रह्म के दो प्रारूपों को बताते है– प्रथम रूप में ब्रह्म को सत् कहा है। इस परमसत् तथा जगत् के विभिन्नता में समन्वय स्थापित करने के लिए उन्होंने दूसरे रूप को **अतिमानस** (Super mind) कहा है। उनके अनुसार अतिमानस ब्रह्म का दूसरा प्रारूप है। उन्होंने ब्रह्म को विश्वातीत तथा विश्वव्यापी दोनों रूपों को स्वीकार किया। उन्होंने ब्रह्म को विश्वातीत सत्ता के रूप में तथा सच्चिदानंद (ब्रह्म) को विश्वव्याप्त सत्ता के रूप में अतिमानस कहा है। उनका मानना है कि ब्रह्म सृजन के रूप में सविशेष या सगुण ब्रह्म हैं; क्योंकि संभावना के रूप में सम्पूर्ण जगत् विद्यमान है। असर्जनात्मक रूप में परब्रह्म या सच्चिदानंद एक निर्विशेष या

निर्गुण है। उन्होंने परब्रह्म और अपरब्रह्म के बीच की कड़ी को ही अतमानस (Super mind) कहा। उनके दृष्टिकोण में सच्चिदांद (ब्रह्म) तथा अतिमानस, ये दो सत्ताएँ नहीं है, बल्कि एक ही सत्ता के दो पक्ष है। अतिमानस (Super Mind) ब्रह्म के सर्जनात्मक या जगत्व्यापी पक्ष को कहते है।

शंकराचार्य ने भी विश्वव्यापी पक्ष को ईश्वर का नाम दिया है। इस प्रकार शंकराचार्य के ईश्वर तथा श्री अरविन्द के अतिमानस (Super Mind) में एक अत्यंत गहरी साम्यता दिखाई देती है फिर भी दोनों विचारकों के ब्रह्म में अन्तर है, क्योंकि शंकराचार्य ने निषेध का दर्शन दिया है और एकमात्र परब्रह्म की सत्ता स्वीकार की है। वे ईश्वर की सत्ता को पारमार्थिकि दृष्टिकोण से नजरअंदाज कर देते हैं उनके दृष्टि में जब ब्रह्म माया की उपाधि से युक्त होती है तब वह ईश्वर कहलाती है, लेकिन अन्तिम अवस्था में ईश्वर की सत्ता को भी वे निषेध कर देते हैं। उनका मत है कि ब्रह्म मायारहित एक सत्ता है वहीं श्री अरविन्द अतिमानस को ब्रह्म का यथार्थ (वास्तविक) प्रारूप स्वीकार किया है जिसे वे नकारते नहीं हैं। फिर अरविन्द के दृष्टिकोण में ब्रह्म के पारमार्थिकि एवं व्यावहारिक सत्ता के रूप में देखने का प्रयास नही किया गया है। इस तरह अरविन्द अतिमानस (Super Mind) को यथार्थ (वास्तविक) कहते हैं। उन्हों अतिमानस सत्ता को किसी भी अवस्था में निषेध नहीं किया है अरविन्द के ब्रह्म के सम्बंध डी0आर0 जाटव कहते हैं कि ''अरविन्द ने ब्रह्म या परब्रह्म की सत्ता को स्वीकार किया जो परम्परागत ब्रह्म–विषयक विचारों से भिन्न है। उनके अनुसार ब्रह्म एक व निरपेक्ष है, वह अनिवर्चनीय तथा अचिन्तनीय है, और वह सबकी अन्तरात्मा भी है। यह परब्रह्म सभी कुछ है, अचेतन में चेतन है, अनेक में एक है, किन्तु उसे शब्दों में नहीं बाँधा जा सकता। अतः परब्रह्म एकत्व तथा अनेकत्व से परे न सत् है न असत् है, न चेतन है न अचेतन है, न आनन्द है न निरानन्द और न निराकार है न साकार है। इस प्रकार अरविन्द की दृष्टि में, ब्रह्म एक विलक्षण इन्द्रियातीत परमसत्ता है, वह अनभिव्यत, है, पर वह सत्, चित् और आनन्द रूप है। वह मात्र सत्, चित् या आनन्दरूप अलग–अलग नहीं हैं, बल्कि वह सच्चिदानन्दरूप में एक है। वह तीनों का एक समिष्टरूप है और सब प्राणियों में व्याप्त एक अन्तरात्मा है। ''[2] पुनः लिखते हैं कि ''अरविन्द के अनुसार, ब्रह्म या परब्रह्म एक है, वह निरपेक्ष ब्रह्म सत् के रूप एक है। ब्रह्म का तीनों कालों में अवस्थित रहना 'सत्' है और वह एकरूप है, किन्तु यह एकता असीम है। वह 'एक' सबकुछ है, एक समग्र सत्ता है। उसे परिवर्तनीय या अपरिवर्तनीय कुछ भी नहीं कहा जा सकता। वह सभी कालों तथा स्थितियों में अवस्थित रहता है अर्थात् ब्रह्म का कभी नितान्त अभास नहीं होता। वह सर्वातिशायी सत्, आत्मा, पुरूष, ईश्वर, प्रकाश, ज्ञान और सत्य है। अतः अरविन्द की दृष्टि से वह निरपेक्ष, असीम सत् ही 'परब्रह्म' है। 'सत्' के तीन रूप है– ईश्वर, आत्मा और पुरूष।''[3]

इसी संदर्भ में डॉ0 बी0एन0 सिंह लिखते है कि ''आध्यात्मिक अद्वैत रूप परमतत्व को वे सच्चिदानन्द कहते हैं। सच्चिदानन्द त्रयात्मक है अर्थात, सत् है, चित् है और आनन्द है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि परमतत्व तीन है। यह अद्वैत रूप है, इसमें किसी प्रकार का द्वैत नहीं परन्तु सत्, चित्, आनन्द इसके विभिन्न भेद हैं। परन्तु यह विभेदों में अभेद हैं, त्रिरूपात्मक होते हुए भी अद्वैत है। यही श्री अरविन्द का आध्यात्मिक अद्वैतवाद है यह अद्वैत पूर्ण है, क्योंकि दो अपूर्णवादों (भौतिकवाद और अध्यात्मवाद) को एकांगी और अपूर्ण बतलाया है। यही इसका सर्वांगीण स्वरूप है, क्योकिं इसे सर्वांग चित्, अचित्, दोनों का समावेश है। ''[4] त्रयात्मक स्वरूप के संबंध रमेश चन्द्र सिन्हा लिखते है कि ''जहाँ तक सत् पहलु का प्रश्न है, ब्रह्म अपने को तीन रूपों में अभिव्यक्त करता है। आत्मा, पुरूष, ईश्वर ईश्वर के रूप में ब्रह्म का सत् पहलू, अभिव्यक्त होता है। दूसरा पहलू चिद् का परन्तु यह चिद् मात्र शुद्ध चेतना के रूप में नहीं समझा गया है, बल्कि चिद्–शक्ति के रूप में लिया गया है। यह चिद्–शक्ति सत् के अन्तर्गत सन्निहित है। चिद्–शक्ति को सच्चिदानन्द की शक्ति के स्वरूप में श्री अरविन्द ने समझा है। जिस तरह सच्चिदानन्द आपने सत् को तीना रूपों में अभिव्यक्त करता है। ठीक उसी तरह चिद्–शक्ति भी तीन रूपों में अभिव्यक्त होती है। एक माया, दूसरी प्रकृति और तीसरी शक्ति कहते हैं। ये तीनों रूप सत् के तीनों रूपों से सम्बंधित हैं। आत्मन–माया, पुरूष–प्रकृति तथा ईश्वर–शक्ति साथ–साथ समझे जाते हैं। सच्चिदानन्द का एक तीसरा पक्ष है आनन्द। आनन्द किसी

भी सत्ता का मूल सिद्धान्त है। सृष्टि आनन्द के लिए हुई है, आनन्द के कारण हुई। जिस तरह चिद्–शक्ति सत्ता में अंतर्निहित है, ठीक उसी प्रकार आनन्द सत् और चिद्–शक्ति के अंतर्गत अंतर्निहित है। आनन्द एक रहस्यात्मक शक्ति है जो सभी जीवित पदार्थों में वर्तमान रहता है। दुःख –दर्द भी आनन्द का एक प्रतिरूप है। आनन्द दर्द और अवसाद के झीने पर्दे के पीछे रहता है। ''[5] इस प्रकार हमे मालूम पड़ता है कि अरविन्द के सच्चिदानन्द या ब्रह्म से आशय सत्, अर्थात 'सत्' का मतलब ईश्वर, आत्मा और पुरूष है और ये तीनों परस्पर मिलकर 'सत्' कहलाता है दूसरी तरफ चिद्–शक्ति का मतलब माया, प्रकृति और शक्ति है और ये तीनों परस्पर मिलकर चिद्–शक्ति कहलाती है। वहीं ये तीनों रूप सत् अर्थात, आत्मा–माया, ईश्वर–शक्ति, और पुरूष–प्रकृति जुड़ी हुई है। अन्ततः आनन्द भी जो कि एक रहस्यात्मक शक्ति है, सद् और चिद्–शक्ति अर्थात आत्मा–माया, ईश्वर–शक्ति और पुरूष–प्रकृति के अन्तर्गत सन्निहित है। इस प्रकार श्री अरविन्द का परमतत्व (ब्रह्म/सच्चिदानन्द) का स्वरूप परम्परागत भारतीय दर्शन से बिलकूल भिन्न प्रकार है यही कारण है उन्होंने परमतत्व को अपने दृष्टिकोण में सत्, चिद्–शक्ति और आनन्द कहा है जो कि शंकर के सत्, चित् और आनन्द से बिलकूल भिन्न प्रतीत होता है हालांकि शंकर और अरविन्द दोनों ने ब्रह्म या परब्रह्म को सच्चिादानन्द स्परूप माना, लेकिन दोनों के दृष्टिकोण भिन्नता है शंकर ने व्यावहारिक सत्ता के रूप सच्चिदानंद स्परूप को स्वीकार किया है, परन्तु श्री अरविन्द ने मानवीय ज्ञान के संदर्भ में सत्, चिद्–शक्ति और आनन्द को स्वीकार किया और बतलाया है कि पारमार्थिक सत्ता मानवीय विचार से परे की सत्ता है। हम पारमार्थिकि सत्ता को सत्, चिद्–शक्ति और आनन्द के विचार से ही जान सकते। उन्होंने कहा कि पारमार्थिकि सत्ता को हम न तो एक कह सकते हैं न तो दो, और न तो अनेक एवं न ही परमसत्ता की विवेचना (व्याख्या) उसके द्रव्य या गुण के आधार रूप में कर सकते हैं क्योंकि पारमार्थिकि सत्ता मानवीय बुद्धि से परे की सत्ता है। परे की सत्ता कहने का यह अर्थ नहीं है कि उसका अस्तित्व नहीं है, उसका अस्तित्व है पर हमारे बुद्धि से वह परे है।

हमने पाया कि अरविन्द अपने ब्रह्म/परब्रह्म को सद्–चिद्–शक्ति और आनन्द के रूप में अपनाया है और उनका मानना है कि सद्, चिद्–शक्ति और आनन्द एक ही परमसत्ता में अन्तर्निहित है। इस प्राकर उन्होंने शक्ति को सत्ता में अन्तर्भूत बतलाया है इस संदर्भ में रमेश चन्द्र सिन्हा लिखते हैं कि '' श्री अरविन्द ने ब्रह्म को शिव और काली दो रूपों में देखा है। शिव और काली दोनों में श्री अरन्दि ने अविच्छेद संबंध बतलाया है। श्री अरविन्द ने शंकराचार्य की तरह मात्र चिद् को नहीं माना बल्कि चिद्–शक्ति (Consciousness-Force) को माना है। शंकर ने शक्ति को माया के रूप में माना है। श्री अरविन्द शक्ति को माया के रूप में नहीं मानते। श्री अरविन्द ने इसे काली या भगवती या 'माँ' के रूप में माना है। इस चिद्–शक्ति को या माँ को सृजन का मुख्य सिद्धान्त बतलाया है।श्री अरविन्द ने इसे ''द मदर'' या दिव्यशक्ति कहा है श्री अरविन्द शंकराचार्य से भिन्न दिखते हैं; क्योंकि उन्होने ब्रह्म को आनन्दमय कहते हुए यह बतलाया है कि विश्व में व्याप्त दुःख, अशुभ एवं भ्रम असत्य नहीं है, क्योंकि इसकी भी सत्ता सापेक्ष विश्व में है। शंकराचार्य ने अपने शुद्ध अद्वैत की रक्षा के लिए अशुभ एवं दुःख को भ्रामक माना है, लेकिन अरविन्द ने अशुभ को बुद्धि के द्वारा निर्मित बतलाया है ताथा उनकी सत्ता को सापेक्षिक माना है। ''[6] इसी संदर्भ में डॉ0 लक्ष्मी सक्सेना लिखती है कि '' पर इस 'गत्यात्मक दिव्य' को श्री अरविन्द अंतिमता नहीं प्रदान करते। यह स्वयं एक मध्यस्थ कड़ी है और परम निर्विशेष सत् की आधार रूप में अपेक्षा करती है। शिव और काली का युगल रूप, शिव के वक्षस्थल पर काली का नर्तन उनके दार्शनिक दृष्टिकोण की बड़ी भावपूर्ण व्यंजना प्रस्तुत करता है। शिव और काली एक ही मूलसत् के दो आयाम है, जो इस प्रकार समन्वित हैं कि उन्हें सामान्य अर्थ में दो भी नहीं कह सकते । अंग्रेजी में इन आयामों के लिए 'पायज' (Poise) शब्द का प्रयोग किया गया है। ''[7]

निष्कर्ष :

अरविन्द द्वारा प्रस्तुत किए गए उपर्युक्त विचारों को मध्य नजर रखते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि पारमार्थिक सत्ता मानवीय बुद्धि से परे की सत्ता है जिसे हम न तो, एक कह सकते है, न तो दो और न ही अनेक एवं न ही उसकी व्याख्या द्रव्य और गुणों के रूप में कर सकते हैं, बल्कि

मानवीय ज्ञान के संदर्भ में उस सत्ता की अवधारणा तीन रूपों में संभव है–सद, चिद्–शक्ति और आनन्द। जिसे श्री अरविन्द ने सत्, चित्–शक्ति और आनन्द की संज्ञा दी। सत्–ईश्वर, आत्मा और पुरूष सन्निहित है वही चित्–शक्ति–माया, प्रकृति और शक्ति सन्निहित है पुनः सत् और चित्–शक्ति परस्पर सम्बंधित है–ईश्वर–शक्ति, आत्मा–माया और पुरूष–प्रकृति। पुनः सत् और चित्–शक्ति दोनों के अन्तर्गत आनन्द सन्निहित है जिसे एक रहस्यात्मक शक्ति माना गया जो सभी जीवित पदार्थों में विद्यमान रहता है।

संदर्भ सूचि :

1. रमेश चन्द्र सिन्हा विजयश्री, समकालीन भारतीय चिन्तक, ''वेदश्री'', एफ 395, सुदर्शन पार्क (मेट्रोस्टेशन : रमेश नगर) नई दिल्ली–110015, वर्ष–2013, पृ0 सं0–151,52
2. डी0 आर0 जाटव, भारतीय दर्शन, मलिक एण्ड कम्पनी (प्रकाशन), चौड़ा रास्ता, जयपुर वर्ष–1994, पृ0 सं0–182
3. वही
4. डॉ0 बी0 एन0 सिंह, भारतीय दर्शन की समस्याएँ और समकालीन दर्शन, आशा प्रकाशन एन0 1/12–सी, नगवा वाराणसी–5, वर्ष–2016, पृ0 सं0–194
5. रमेश चन्द्र सिन्हा पृ0 सं0–154,55
6. रमेशचन्द्र सिन्हा–पू0 सं0–160
7. डॉ0 लक्ष्मी सक्सेना, समकालीन भारतीय दर्शन, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, वर्ष–2002, पृ0 सं0–249

***

कुँवर नारायण का काव्य और समकालीन जीवन की अभिव्यक्ति

*अन्त लाल पाल**

कुँवर नारायण समकालीन हिन्दी कविता के महत्वपूर्ण कवि है। वे अपनी कविताओं के जरिए अमानवीयता के विरूद्ध लगातार संघर्ष करते हैं तथा समकालीन जीवन की तमाम विभिषिकाओं और जटिलताओं से संघर्ष करने वाले नैतिक विवेकशील व्यक्तित्व की तलाश भी करते हैं। उनकी कविताओं के मुख्य चरित्र बेचैन प्रश्नाकुलता से भरे है समय की विसंगतियों, सही व गलत की बदलती परिभाषाओं, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व धार्मिक विसंगतियों के भयावह दृश्य तथा इन सबसे संघर्ष करता, उनके बीच जीने को अभिशप्त आम आदमी के बेचैनी, अकेलेपन, निराशा को स्वर देते हुए कवि जीवन, आस्था व मनुष्यता का पक्षधर भी है।

समकालीनता पर विचार व्यक्त करते हुए संजय जैन कहते हैं ''समकालीन कवि जीवन संघर्ष और जनसंघर्ष के स्तर पर अपने दोहरे उत्तरदायित्वों का सार्थक निर्वाह करने हेतु संकल्पित आस्था को आत्मसात् कर रचना संघर्ष में संलग्न होता है।''[1]

समकालीनता का प्रयोग कुँवरनारायण की कविता के संदर्भों में व्यापक अर्थों में किया है। इनके काव्य में समकालीन समाज में विद्यमान प्राचीन परम्पराओं का विद्रोह, मुक्ति की आकांक्षा और नवीन मूल्यों का समर्थन दिखाई देता है जो कि हमारे वर्तमान समाज की मांग है। नीवं के पत्थर कविता में प्राचीन प्रतीकों और परम्पराओं से मुक्ति का स्वर विद्यमान है–

''कभी–कभी विद्रोह करते हैं पत्थर
और फूटने लगते हमारे सिर
वे चीखते–मुक्त करो हमें
अपने खोखले प्रतीकों से
अपनी कीर्ति के अरमानों से,
अपने मन्दिरों मस्जिदों और गुरुद्वारों से
तुम्हारी सदियों पुरानी स्थापनाएँ
बिल्कुल निष्प्राण
उनकी बुनियादों से हिलना चाहते
हम पाषाण।''[2]

समकालीन समाज में दिखावे या सत्य को छिपाने का प्रचलन है। कोई भी कार्य होता है तो ऐसा विश्वास नहीं किया जा सकता कि उस कार्य को करने वाला व्यक्ति वही है जो उसे कर रहा है। उस कार्य को कराने में किसी और का भी हाथ हो सकता है जो दूसरों को उस कार्य को करने के लिए बाध्य कर सकता है। 'सतहें' कविता में कुँवर नारायण लिखते हैं–

''क्या वह हाथ
जो लिख रहा
उतना ही है
जितना दिख रहा?
या उसके पीछे एक और हाथ भी है
उसे लिखने के लिए बाध्य करता हुआ?''[3]

वर्तमान समय में हमारे समाज में चारों और भ्रष्टाचार व्याप्त है। कही चोरी, कही गबन, कही हत्या, कही रिश्वत खोरी। आये दिन ये घटनायें हमारे समक्ष घटित हो रही है। यह भ्रष्टाचार इस कदर

---

* पी.एच.डी. (शोध छात्र), हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी (उ०प्र०)-221002

बढ़ गया है, बैंक जैसी संस्थाओं में गबन हो रहा है। इसी भ्रष्टाचार को कुँवर नारायण ने अपनी कविताओं में उजागर किया है–

"बैंक में लम्बा गबन–क्लर्क पकड़ा गया।
सेठ का दिवाला–कोई गरीब रगड़ा गया।
कैनेडी की हत्या
हत्यारा गिरफ्तार
हत्यारे की हत्या
असली हत्यारा फरार।"[4]

आज के समकालीन युग में समाज में मनुष्य की स्थिति ऐसी हो गयी है कि वह स्वंय द्वारा निर्मित हथियारों से घबरा रहा है। मनुष्य लोहे के समान कठोर हो गया है। हमारा सामाजिक जीवन ऐसा है कि व्यक्ति स्वयं से दूर होता जा रहा है। परिवेशः हम तुम काव्य संग्रह की 'यह युग' कविता में कुँवर नारायण ने यही चित्रण किया है–

"अपने हथियारों से घबराया मानव
पत्थर का देव और लोहे का दानव
... ...
इन्सान
मगर बेजान
मकानों–सा ढहता
अपने से दूर पास बस्ती के रहता,
सभ्यता
लगी नाखून पर मालिश जैसे
हम ठाठ फकीरी
बिकता जो पैसे–पैसे।"[5]

एक साहित्यकार जब समाज से प्रभावित होकर रचना करता है तो उसकी कृति में तत्कालीन समाज की समस्यायें उभर कर आती है। समाज की व्यवस्था का चित्रण भी उसकी रचनाओं में होता है। सामाजिक व्यवस्था और सामाजिक समस्यायें जैसे वर्ग विषमता, दुरावस्था, भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, आतंकवाद आदि का चित्रण तत्कालीन साहित्य में होने लगता है। कुँवर नारायण के साहित्य में भी समाज में प्रचलित इन समस्याओं को देखा जा सकता है।

समकालीन समाज में बेइमानी और गुलामी जैसी प्रवृत्तियाँ सर्वत्र दिखाई देता है। 'अगर इन्सान ही हूँ' कविता में बेईमानी और गुलामी का चित्रण करते हुए कुँवर नारायण ने मनुष्य की विभिन्न जानवरों से तुलना कर उसके अन्दर विद्यमान पाशविक प्रवृत्तियों को उजागर किया है–

"अगर कुत्ते से बेहतर हूँ
तो यह दुम किसकी हिल रही?
....
अगर दीमक नहीं हूँ
तो कौन चाट गया ईमान की फाइलें?
अगर मच्छर नहीं हूँ
तो कौन पी रहा है देश का खून?
सच बताइये
अगर इन्सान ही हूँ
तो इतनी अपमानित क्यों है
इतनी बड़ी सच्चाई?"[6]

आज का युग मशीनों द्वारा संचालित हो रहा है और मनुष्य मशीनों का गुलाम बनता जा रहा है। अत्यधिक मशीनों के प्रयोग से कुँवर नारायण चिन्तित है। 'एक सवाल' कविता में वे प्रश्न पूछते हैं कि आदमी मशीनों को चलाता है या मशीने आदमी को? उनकी यह चिन्ता मानवीय संवेदना से उद्‌भूत है।

''और उस तहस–नहस वातावरण में
एक सवाल चौंककर बाकायदा उठ बैठा था,
मशीनों को चलाता हुआ?
या आदमी को चलाती हुई मशीन?''[7]

कवि की आस्था मानवीय मूल्यों पर से उठती जा रही है। जीवन की पीड़ा एवं परिस्थितियों से समझौता कर जीने वालों या फिर उन परिस्थितियों को बदलने की कोशिश में पीड़ा झेलने वालों की तुलना कवि कीट जीवन का श्रेष्ठ समझता है और कहता है–

''कि या तो अ ब स की तरह बेसबब जीना है,
या सुकरात की जहर पीना है।
तो कोई इस बदनसीब ख़्याल का क्या करे–
कि एक जीती–जागती हलाहल पीड़ा से
क्या बुरा है फिलहाल चलता–फिरता कीड़ा?''[8]

समकालीन कविता में घटते मानवीय मूल्यों को कुँवर नारायण कहीं न कहीं सुरक्षित रखना चाहते हैं। उन्होंने नचिकेता के माध्यम से मानव मूल्यों को बचाने का संदेश देते हुए कहते हैं–

''असहमति को अवसर दो। सहिष्णुता को आचरण दो
कि बुद्धि सिर ऊँचा रख सके ....
उसे हताश मत करो काइयाँ स्वार्थों से
हरा–हरा कर।
अविनय को स्थापित मत करो,
उपेक्षा से खिन्न न हो जाये कहीं।
मनुष्यता की साहसिकता।''[9]

आशा–निराशा के भाव कुँवर नारायण के अन्तर्मन में विद्यमान है। आजादी के बाद की स्थिति को देखकर वे निराश हो जाते हैं फिर भी वे स्वयं को पूर्णतः निराशावादी मानते हैं। विनोद भारद्वाज से बातचीत के दौरान वे कहते हैं–''आज की श्रेष्ठतम प्रतिभाओं को देखता हूँ तो आशा बंधती है और इस मान में पूर्णतः आशावादी हूँ। सहसा एक बिम्ब दिमाग में उभरता है–स्टीफेन विलियम हॉकिंम का–शरीर से विकलांग, पर विलक्षण प्रतिभा के धनी। एक ओर घोर निराशा का कारण, पर दूसरी ओर विराट ब्रह्माण्ड से खेलती उनकी जागरूकता। अगली सदी में जाते हुए आदमी के इसी दूसरे पक्ष पर भरोसा रखना पसन्द करूँगा क्योंकि वहीं उसकी मानवता और रचनाशीलता की जड़े हैं।''[10]

कुँवर नारायण का मानना है कि युद्ध के बाद विजित और विजेता का भेद समाप्त हो जाता है विजेता को भी ग्लानि, पीड़ा और पश्चाताप जैसे भाव दुःखी करते हैं। 'महाकाव्यों का अतीत और वर्तमान निबन्ध में कुँवर नारायण ने कृष्ण और पाण्डवों का सन्दर्भ देकर लिखा है कि वे युद्ध जीतने के बाद भी ग्लानि और पापबोध से स्वयं को नष्ट करते चले जाते हैं–''गान्धारी के शाप को झेलते हुए विदग्ध कृष्ण मानो क्राइस्ट की तरह सम्पूर्ण मानवता के पाप ओर अविवेक का प्रायश्चित है, क्योंकि वे उसके सबसे संवेदनशील और बुद्धिमान साक्षी थे। ग्लानि और पापबोध से विगलित हिमालय की निर्जन ऊँचाइयों पर अपने शरीर को गलाते चले जाते पाण्डवों का पश्चाताप मानो विजित और विजेता के बीच कोई फर्क नहीं छोड़ता।''[11]

समकालीन सामाजिक स्थिति पर दृष्टि डालते हुए 'परिवेश : हम तुम' संग्रह की 'क्रय–विक्रय' कविता में कुँवर नारायण सामाजिक परिस्थितियों पर कटाक्ष करते हुए कहते हैं कि मैं रोज स्वयं को और अपने उस बेटे को बेच रहा हूँ जिसके लिए मुझे एक दुनिया खरीदनी है–

''मैं सोच रहा हूँ
रोज अपने को बेच रहा हूँ,
उस अपने को–लाड़ले को
जिसके लिए बाजार से
एक दुनिया खरीदनी है
वह दुनिया जो चाभी से चलती है,
खिलौनों की दुकान में बिकती है।''[12]

कुँवर नारायण आज के ऊर्जा विहीन मानव को अभिव्यक्ति देते हुए 'अपने सामने' संग्रह की कविता 'तब भी कुछ नहीं हुआ' में कहते हैं, जब मैंने बिजली के नंगे तारों को छुआ तो उनमें बिजली नहीं थी। तारों में बिजली न होने के बावजूद बिजली व्यक्ति के भीतर की ऊर्जा है जो अन्याय के खिला फ उसके भीतर होनी चाहिए जो आज के मानव में नहीं है।

''तब भी कुछ नहीं हुआ।
जिन नंगे तारों को मैंने अकस्मात छू लिया था
उनमें बिजली नहीं थी।
मुझे एक झटका लगा कि उसमें बिजली नहीं है।
मुझे अकसर एक झटका लगता है जब वहाँ
बिजली नहीं होती
जहाँ बिजली को होना चाहिए।''[13]

हमारा आज का समाज अनेक विसंगतियों से भरा पड़ा है। हमारे समाज में प्रत्येक दिन हदासे होते रहते हैं। इन हादसों के नाम पर घर जलाये जाते हैं, स्त्रियाँ बेइज्जत की जाती है। 'क्या फर्क पड़ता है' कविता में कुँवर नारायण कहते हैं–

''फिर एक हादसा
क्यों हुआ? कहाँ हुआ?
क्या फर्क पड़ता है कि कहाँ हुआ ...
पचास बेगुनाह मारे गए
सौ से अधिक घायल हुए
घर जलाए गए
स्त्रियाँ बेइज्जत की गई ...
शाबास दिलेरो
हम प्रभावित हुए तुम्हारी कामयाबी से।''[14]

बलात्कार, हत्या, चोरी, डकैती जैसी घटनाएँ आम हो गयी है। आये दिन ऐसी घटनाएँ होती रहती है। 'सामूहिक बलात्कार' कविता में कुँवर नारायण कहते हैं कि समूह जैसा शब्द जो किसी महत् उद्देश्य के बनी संस्थाओं से जुड़कर व्यापक और महान अर्थ का वहन करता है वह आज बलात्कार जैसी नृशंसा और मनुष्य की विकृति मनोवृत्ति के साथ जुड़कर अपनी हीनता का परिचय दे रहा है–

''सामूहिक शब्द के साथ
बलात्कार शब्द का जुड़ना
समूह और बलात्कार का
एकाकार होना है;
यानी समूह जैसी महान् संज्ञा के जन्में

सामूहिक जैसे विशेषण का
एक जघन्य क्रिया से किसी रूप में जुड़ना
पूरे समूह का गुनहगार होना है।''[15]

ये घटनाएँ मात्र घटना बनकर रह जाती है। कुँवर नारायण कहते हैं, व्यवस्था या पुलिस प्रशासन घटना स्थल पर उस समय पहुँचता है जबकि घटना को गवाहों के मुताबिक इतिहास रूप में लिखना होता है। जबकि लाशें जल चुकी होती है। इन लाशों को देखकर मानव के हृदय में करूणा नहीं, अपितु उत्साह के साथ चिताएँ बनायी जाती है–

''हमेशा की तरह इस बार भी
पुलिस पहुँच गयी थी घटनास्थनल
घटना के काफी बाद
ताकि इतिहास को सही–सही लिखा जा सके
चश्मदीद गवाहों के बयानों के मुताबिक।''[16]

समकालीन साहित्य के कवि कुँवर नारायण के साहित्य में अस्तित्व बोध, मृत्यु बोध, वैयक्तिक स्वच्छन्दता, अकेलापन, पीड़ा, निराशा दुःखबोध जैसे अस्तित्व वादी लक्षण भी दिखाई देते है। उनके काव्य में अकेलापन, मृत्यु और त्रास जैसे स्वर बार–बार आये हैं। 'तीसरा सप्तक' में संकलित कविता 'खामोशी : हलचल में घर के भीतर के अकेलेपन और ऊब का चित्रण हुआ है–

''एक–एक घूर रही मुझको बस दीवारें,
जी करता उन पर जा यह मत्था दे मारें,
चिल्ला कर गूँजो से पत्थर को थर्रा दें .....
घेरी खामोशी की दीवारें बिखरा दें,
इन मुरदा महलों की मीनारें हिल जायें,
अन्दर से बाहर आ सदियों की कुण्ठाएँ
बहुत बड़े जीवन की हलचल से मिल जाये।''[17]

आज व्यक्ति बाजार और भीड़–भाड़ में भी अकेलेपन से ग्रस्त है। भीड़–भाड़ के बावजूद सभी एक–दूसरे से अन्जान है। अकेलेपन को चित्रित करते हुए कुँवर नारायण 'बाजारों की तरफ भी' कविता में कहते हैं–

''आजकल अपना जयादा समय
अपने ही साथ बिताता हूँ
....
वैसे सच तो यह है कि मेरे लिए
बाजार एक ऐसी जगह है
जहाँ मैंने हमेशा पाया है
एक ऐसा अकेलापन जैसे मुझे
बड़े–बड़े जंगलों में भी नहीं मिला।''[18]

आत्मजयी के 'अचेतावस्था में' खण्ड में कुँवर नारायण ने अकेलेपन, ऊब और निराशा का चित्रण नचिकेता के माध्यम से किया है जो उनके व्यक्तिगत जीवन में भी दिखाई देता है–

''कहाँ जाऊँ?
हर दिशा में
मृत्यु से भी बहुत आगे की
अपिरिमित दूरियाँ हैं।
किसे अपनाऊँ?
कि अपनी निराशाओं का पार पाऊँ।
कहाँ है वह बाह, वह विश्वास जीवन–सिद्ध,

जो मुझ भटकते को ग्रहण कर ले
और मृतकों को सहस्त्रों पर्त गहरी
जर्जरित इस सभ्यता के पार पहुँचा दे?''[19]

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि कुँवरनारायण समकालीन कवियों में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। कवि का साहित्यिक परिदृश्य व्यापक है। इन्होंने अपने काव्य और गद्य में हर पहलू को उठाकर उसमें आज के मानव जीवन को दर्शाने का प्रयास किया है। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक धार्मिक विसंगतियों, भयावह दृश्यों, अकेलापन, निराशा, कुण्ठा, घुटन, संत्रास, मानवीय संघर्ष, दुःखबोध, मृत्युबोध, अस्तित्वबोध, वैयक्तिक स्वच्छता, मानवीय मूल्यों को बताने के साथ ही, प्रेरणा देने का कार्य भी किया है। समकालीन आधुनिकता के प्रति कवि का स्पष्ट दृष्टिकोण उनकी रचनाओं को अतिरिक्त शक्ति प्रदान करता है। मानवीयता की सर्वोच्चता कवि को सहज और श्रेष्ठ बनाती है।

सन्दर्भ :

1. संजय जैन, समकालीन कविता की कथ्य चेतना, महावीर प्रकाशन, पटियाला, प्रथम संस्करण, पृ0सं0 3
2. कुँवर नारायण, हाशिए का गवाह, मेधा बुक्स, प्रथम संस्करण–2009, पृ0सं0 25
3. कुँवर नारायण, आमने सामने, राजकमल प्रकाशन, चौथा संस्करण–1989, पहली आवृत्ति, पृ0सं0 43
4. वही, पृ0सं0 47–48
5. कुँवर नारायण, परिवेश : हम तुम, वाणी प्रकाशन, तृतीय संस्करण–2006, पृ0सं0 88
6. कुँवर नारायण, इन दिनों, राजकमल प्रकाशन, तृतीय संस्करण–2008 पृ0सं0 98
7. कुँवर नारायण, परिवेश : हम तुम, वाणी प्रकाशन, तृतीय संस्करण–2006, पृ0सं0 77
8. वही, पृ0सं0 87
9. कुँवर नारायण, आत्मजयी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली आठवाँ संस्करण–2008, पृ0सं0 25
10. कुँवर नारायण, मेरे साक्षात्कार, विनोद भारद्वाज (सम्पादक), किताबघर प्रकाशन, संशोधित एवं परिवर्धित, संस्करण 2010, पृ0स0 93
11. कुँवर नारायण, शब्द और देशकाल, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण–2013, पृ0सं0 60
12. कुँवर नारायण, परिवेश : हम तुम, वाणी प्रकाशन, तृतीय संस्करण–2006, पृ0सं0 86
13. कुँवर नारायण, आमने–सामने, राजकमल प्रकाशन, चौथा संस्करण–1989, पहली आवृत्ति–2003, पृ0सं0 19
14. कुँवर नारायण, हाशिए का गवाह, मेधा बुक्स, प्रथम संस्करण–2009, पृ0सं0 36
15. कुँवर नारायण, कोई दूसरा नहीं, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण–1993, चौथी आवृत्ति–2011, पृ0सं0 75
16. कुँवर नारायण, आमने सामने, राजकमल प्रकाशन, चौथा संस्करण–1989, पहली आवृत्ति–2003, पृ0सं0 101
17. अज्ञेय (सम्पादक), तीसरा सप्तक, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नौवां संस्करण–2009, पृ0सं0 161
18. कुँवर नारायण, इन दिनों, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण–2008, पृ0सं0 11–12
19. कुँवर नारायण, आत्मजयी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, आठवां संस्करण–2008, पृ0सं0 69

***

प्रगतिशील चेतक : कवि निराला

*पूजा सिंह**

छायावाद के स्तम्भ माने जाने वाले निराला स्वभाव से ही क्रांतिकारी थे। छायावादी युग में काव्य–साधना में प्रवृत्त होने पर भी प्रगतिशीलता और स्वच्छन्दता की प्रवृत्ति ने उन्हें निराला बना दिया था। वे पुरातन के रूढ़िग्रस्त विचारों के कट्टर विरोधी थे। वे रूढ़ियों का खण्डन कर नये जीवन का दर्शन कराना चाहते थे। निराला की प्रगतिशीलता उनके प्रौढ़ परिपक्व चिन्तन की प्रकृति है, जिसमें उनका विद्रोही पक्ष अधिक महत्वपूर्ण है, तत्कालीन जगत की परम्पराओं, अंधविश्वासों और अनाचारों को वे पसंद नहीं करते थे। प्रगति के उन्नायक विशिष्ट तत्वों के अविष्कारक एवं समर्थन को अपने जीवन का लक्ष्य मानते थे। वरूण प्रवृत्ति के प्रति अनुराग की भावना और व्यक्ति वादिता उनके व्यक्तित्व में देखी जा सकती है। निराला के कट्टर आलोचकों ने यह भी स्वीकार करना पड़ा कि निराला सचमुच निराला है। प्रगतिशील तत्वों के कारण ही निराला काव्य बहुमूल्य और बहुआयामी हो गया है। निराला में बुद्धिवाद और ह्रदयवाद दोनों का सुखद सम्मेलन है। उनके ह्रदय में करूणा और सहानुभूति का स्त्रोत बहता हुआ दिखाई पड़ता है। वे परदुखकातर व्यक्ति थे। निराला के प्रगतिशील विचारों का सच्चा परिचय रूढ़िवाद के विरूद्ध प्रस्तुत कविताओं से प्राप्त होता है। उद्‌बोधन, ध्वनि, बादल राग, पास हीरे की खान, बापू के प्रति, भगवान बुद्ध, क्या दुःख दूर कर दे बन्धन, तुलसीदास, सरोज स्मृति, कुकुरमुत्ता, विधवा, रानी कानी जैसी अन्य कविताओं में निराला के प्रगतिशील चेतक विचारों का सच्चा परिचय मिलता है। इन्होंने सदा ही गरीबों, शोषितों दीन–हीनों के लिए संघर्ष किया है।

आज की कविता उन्नीसवीं सदी की कविता से अलग है। कविता का रूप, भाव, गेयता, अन्तर्गुण सब परिवर्तित हुए है। युग चेतना से प्रेरित कवि ने रूढ़िवाद का खण्डन, ब्रिटिश शासन की दमन नीतियाँ, अछूत प्रथा, जातिवाद एवं साम्प्रदायिकता, नारी विमोचन, आर्थिक असन्तुलन, नव साहित्यान्दोलन आदि प्रगतिशील तत्वों को अपनी कविताओं में विशेष महत्व दिया। प्रगतिशील श्रम को महत्व देकर सामाजिक शोषण का विरोध करता है। हिन्दी काव्य में समाज की प्रगति को लक्ष्य बनाकर लिखा जाने वाला साहित्य प्रगतिशील है। प्रगतिशीलता में लघुता के प्रति संवेदनात्मक रूझान होती है।

'उद्‌बोधन' कविता में प्राचीनता को ध्वंस करने का आहवान है। निराला नव जीवन के पक्षपाती थे। उनका आग्रह था कि सदियों से बने रहने वाले अन्धविश्वास नष्ट भ्रष्ट हो जाये। वे चाहते थे कि जीवन के आकाश और भूमि में एक नया सुगन्ध छा जाए। एक नूतन स्वर और ताल से दिशाएँ मुखरित हो जाए। जीण–शीर्ण नियमों के अवशिष्ट तक लुप्तप्राय हो जाए। सदियों से जकड़े ह्रदय कपाट खुल जाए। निराला का यह आहवा्न है–

''छोड़, छोड़ दे शंकाएँ, रे निर्झर गर्जित वीर!
उठा केवल निर्मल निर्घोष;
देख सामने, बना अचल उपलों को उत्पल, धीर!
प्राप्त कर फिर नीरव सन्तोष।।''[1]

कवि आशा करता है कि सारी शंकाएँ दूर हो जाए। यहाँ नवीनता एवं परिवर्तन के प्रति निराला का पक्षपात स्पष्ट किया गया है।

'बादल राग' नामक कविता में पुरानी प्रथा से जन्मे आलस्य को दूर करके नवीनता की वर्षा करने वाले बादल का संगीत प्रस्तुत करते हैं। कवि आशा करता है कि एक नया अमर राग से आकाश में भर जाए।

---

* पी०एच०डी० (शोध छात्रा), हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी (उ०प्र०)–221002

"अरे वर्ष के हर्ष
बरस तू बरस–बरस रसधार!
पार ले चल तू मुझको,
बहा, दिखा मुझको भी निज
गर्जन–गौरव–संसार।"[2]

यहाँ रूढ़ियों के नाश एवं नवीनता का उत्कर्ष प्रकट किया गया है। कवि की दृष्टि में बाद अन्ध–तम–अगम अनर्गल हैं। विपल्व के प्लावन से नयी जलधारा बहाने की आशा बादल में है।

निराला नें प्रगतिशीलता को व्यापक अर्थों में ग्रहण किया है जिसमें व्यक्ति और समाज दोनों की सत्ता समान रूप से बनी रहती है। नागार्जुन ने लिखा है–"बड़े नगरों में रहकर आधुनिकता और प्रगतिशीलता का निर्वाह बड़ी आसानी से किया जा सकता है। सनातन रूढ़ियों से जकड़े हुए ग्राम–तन्त्री समाज के बीच रहते हुए क्रान्तिकारी निराला का वह जीवन चौमुँहे संघर्ष का जीवन था। यहाँ इलाहाबाद जैसे शहर में हम उस संघर्ष का आभास नहीं पा सकेंगे और अब पच्चीस–तीस वर्ष हो रहे हैं। बैसवाड़े के ग्राम्यांचल का वह समाज भी थोड़ा तो अवश्य बदला होगा। ऊँची बड़ी जाति वालों की अकड़ थोड़ी तो जरूर घटी होगी, छोटी जाति वालों में आत्मसम्मान की चेतना कुछ न कुछ अवश्य निखरी होगी।"[3]

'तुलसीदास' नवीन जागरण का आहवान करने वाला है। इसमें विषाद ही नहीं, कर्म की अपेक्षा करने वाला एक ओजस्वी आह्वान भी है। युगीन परिस्थितियों के कारण अन्धानुकरण और विलासिता छायी हुई थी–

"भूला दुख, अब सुख–स्वरित जाल
फैला यह केवल कल्प काल
कामिनी कुमुद कर कलित ताल पर चलना,
प्राणों की छवि मृदु–मन्द–स्पन्द,
लघु–गति, नियमित पद, ललित छन्द,
होगा कोई, जो निरानन्द कर मलता।"[4]

निराला अपने शोकगीत 'सरोज स्मृति' में रूढ़ियों का खण्डन कर नवजागरण को आहवा्न देने के अनेक प्रयास करते है। इनमें कुछ प्रसंग का विवेचन करना ही समीचीन मालूम पड़ता है। प्रायः अधिकांश हिन्दू ज्योतिष कुण्डली पर विश्वास रखने वाले है। इस रूढ़ि के कारण वे विपत्तियों के सामने लाचार एवं हताश हो जाते हैं। 'सरोज स्मृति' में निराला इस विश्वास का निराकरण करते हैं। एक दिन वे आंगन में बैठकर अपनी कुण्डली पढ़ रहे थे। उसमें दो विवाह का वर्णन पढ़कर उनको हँसी आयी और उन्होंने कुण्डली को खण्डित करना चाहा। वे भविष्य को शंकाहीन दृष्टि से देखने के पक्ष में थे–

"आँगन में फाटक के भीतर
मोढ़े पर, ले कुण्डली हाथ
अपने जीवन की दीर्घ गाथा।
पढ़ लिखे हुए दो शुभ दो विवाह
हँसता था, मन में बढ़ी चाह
खण्डित करने को भाग्य अंक
देखा भविष्य के प्रति अशंक।"[5]

निराला का युग जातिवाद की पराकाष्ठा का युग था। सामाजिक एकता के अभाव से देश को विदेशियों की दासता स्वीकार करनी पड़ी थी। जातिवाद के फलस्वरूप निम्न जाति में जन्में शूद्र को अंगीकार न मिलता था और समाज में उनको हीन जाति का माना। राजा राममोहन राय ने इसको देश की एकता में भारी बाधा माना। निराला ने भी अपनी 'प्रेमसंगीत' और 'गर्म पकौड़ी' 'मुक्तकों और तुलसीदास', 'राम की शक्तिपूजा', 'कुकुरमुत्ता', 'स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज' जैसी लम्बी कविताओं में जातिवाद का खण्डन किया।

'गर्म पकौड़ी' कविता में निराला ने सुधारवादियों के पथ में बाधाएँ उपस्थित करने वाले निम्न जाति वालों पर कटाक्ष किया। कवि कहते हैं–

''अरी तेरे लिए छोड़ी
बम्हन की पकायी
मै ने घी की कचौड़ी।''[6]

ब्राह्मण की सहज श्रेष्ठता की उपेक्षा करके निम्न जाति वालों का उद्धार करने के लिए प्रयत्न किये गये।

'तुलसीदास' कविता में निराला तुलसी के समकालीन भारतीय जनजीवन पर प्रकाश डालते हैं। शूद्र निम्न जाति वाले समझे जाते थे। कवि रोते हैं कि वे समाज के लिए अभिशाप और कलंक माने जाने लगे थे। उनकी हालत का चित्रण इस प्रकार हुआ है–

''चलते–फिरते, पर निस्सहाय
वे दीन, क्षीण कंकालकाय
आशा–केवल जीवनोपाय उर–उर में,
रण के अश्वों में शस्य सकल
दलमल जाते ज्यों, दल के दल
शूद्रगण शूद्र जीवन–सम्बल, पुन–पुर में।''[7]

भारतीय संस्कृति में नारी का महत्वपूर्ण स्थान माना जाता था। वह माँ, रमा और मंगदेवता समझी जाती थी। स्वतंत्र्य युग में भारतीय स्त्री को पुरुष की इच्छाओं का पालन करने वाला उपकरण मानने की प्रवृत्ति फैल गयी थी।

निराला ने तत्कालीन नारी–विमोचन आन्दोलन का पूर्णतः समर्थन किया। उन्होंने अपनी 'विधवा' 'सम्राट अष्टम एडवर्ड के प्रति', 'प्रेम संगीत', 'रानी और कानी', मुक्तकों और पंचवटी–प्रसंग एवं 'सरोज स्मृति' जैसी कविताओं में नारी की दुःस्थिति का जीता–जागता वर्णन प्रस्तुत किया है।

विधवा कविता में विधवा का दीन–हीन दशा का वर्णन करते हुए कवि ने प्रारम्भ में कहा है–

''व्यथा की भूली हुई कथा है
उसका एक स्वप्न अथवा है।''[8]

जब कभी उसे अपने मधु–सुहाग का स्मरण होता है तो वह रो उठती है। वह लोगों की दृष्टि से अपने को बचाकर जब रोती है, तो सुनने को कोई भी नहीं है–

''वह दुनिया की नजरों से दूर बचाकर,
रोती है अस्फुट स्वर में
दुख सुनता है आकाश धीर,
निश्चल समीर,
सरिता की वे लहरे भी ठहर–ठहर कर।
कौन उसको धीरज दे सके?
दुःख का भार कौन ले सके?''[9]

कोई भी उसको धीरज देने और उसके आँसुओं को पोछने के लिए नहीं आता। कवि अंत में यह बताते हैं कि सारा भारत उसके आसुओं से तर गया है। यहाँ नारी–विमोचन की सार्थकता पर बल दिया गया है और कवि का यह पवित्र आग्रह है कि नारी–सुधार के प्रयत्न प्रशस्त हो जाएँ।

प्रेम संगीत कविता में निराला ने नारी की महिमा की घोषणा की है। प्रणय में जाति–पाँति बाधा उपस्थिति नहीं कर पाती। ब्रह्म सौन्दर्य भी कभी–कभी महत्व का नहीं रहता। ब्राह्मण के लड़के का कहारिन पर आसक्त होने की घटना वर्णित है। 'रानी और कानी' कविता में दीन–हीन भारतीय नारी की उपेक्षा पर कवि ने अथाह सहानुभूति प्रकट की है। चिकने चुपड़े शब्दों में कवियों ने नारी का वर्णन किया हैं परन्तु उन्होंने उनके जीवन की वास्तविकता के प्रति प्रायः उपेक्षा ही दिखायी है। सम्मान

से लड़की रानी कहलायी जाती है, परन्तु उसका रूप नाम का उल्टा है, उसकी नाक चपटी, उसके मुख पर चेचक के दाग और रंग काला है। पड़ोस की औरतें अपना मत पेश करती है–

"औरत की जात रानी,
ब्याह भला कैसे हो
कानी जो है वह।"[10]

इन बातों से रानी का दिल दुखी हो जाता है। उसके सारे अंग काँप उठे और उसकी दायी आँख से आँसू उसकी माँ के दुःख के समान बह चले। यह सोचने की बात है कि रानी की विरूपता के लिए वह बिल्कुल उत्तरदायी नहीं हैं वह अपनी माँ द्वारा भी उपेक्षित होती है। कवि ने दीन–हीनों के लिए सुरक्षा–स्थानों के निर्माण की ओर इंगित किया है। निरपराध होने पर भी उपेक्षित स्त्रीत्व का सम्मान करने का परोक्ष आहवान इस कविता में निहित है।

'सरोज स्मृति' में नारी के विवाह–सम्बन्धी महत्वपूर्ण समस्याओं की चर्चा हुई है। जब सरोज बड़ी विवाह योग्य होती है तब कवि उसके विवाह में बारे में सोचता है। कुलमर्यादा और रूढ़ियों का पालन करने की असमर्थता एवं अनौचित्य उसके मान में आये। दहेज देना, बारात की अगुवानी करना आदि अनावश्यक व्यय नारी–विवाह को बोझिल बना देते हैं–

"जो कुछ है मेरा अपना धन
पूर्वज से मिला, करू अर्पण
यदि महाजनों को, तो विवाह
कर सकता हूँ, पर नहीं चाह
मेरी ऐसी, दहेज देकर
मैं मूर्ख बनूँ, यह नहीं सुघर
बारात बुलाकर मिथ्या व्यय
मैं करू, नहीं ऐसा सुसमय
तुम करो व्याह, तोड़ना नियम।"[11]

निराला इन दुराचारों को तोड़कर सरोज से विवाह करने का प्रस्ताव प्रतिश्रुत वर के सम्मुख रखते हैं और वह उनको स्वीकार करता है। इसमें निराला की प्रगतिशीलता कहीं न कहीं परिलक्षित होती है।

"अपने मूलरूप में जातीय भेद–भाव का आधार तर्कसंगत तथा वैज्ञानिक अवश्य था, किन्तु वर्तमान परिप्रेक्ष्य में उनकी उपयोगिता नष्ट हो चुकी है। आज मृतप्राय दंभ केवल भेदभाव कारक बनकर सामाजिक संगठन पर कुठाराघात करता है।"[12]

'कुकुरमुत्ता' कविता निराला के प्रगतिशीलता के वाहक के रूप में देखा जा सकता है। 'कुकुरमुत्ता' सचमुच उपेक्षित प्राकृतिक उपज है। उसको अकृत्रिम, सहज एवं सरल जीवन का प्रतिनिधि बनाकर उसकी तुलना विदेशी मूल और प्रभुता से सम्मानित गुलाब से करने का सफल प्रयास किया है। कुकुरमुत्ते के गुणों का वर्णन करके उसको शोषितों का प्रतिनिधि घोषित करने का उद्यम सचमुच सराहनीय है। कुकुरमुत्ता गुलाब की निन्दा करता है–

"अबे सुन बे गुलाब
भूल मत जो पाई खुशबू, रंगोआब
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट,
डाल पर इतराता है केपीटलिस्ट!
कितनों का तूने बनाया है गुलाम।"[13]

गुलाब अमीरों का प्यारा, साधारण से न्यारा और बनावटी जीवन व्यतीत करने वाला है। उसकी तुलना में कुकुरमुत्ता, आडंबरहीन और सादगी का जीवन व्यतीत करने वाला है। माली की बेटी ने जब कुकुरमुत्ते का कबाब खाया और उसे स्वादिष्ट मालूम पड़ा। इससे अवगत होने पर नवाब ने भी कबाब खाया और आदेश दिया कि गुलाब के स्थान पर कुकुरमुत्ता उगाया जाए–

''चल, गुलाब जहाँ थे, उगा,
सबके साथ हम चाहते हैं अब कुकुरमुत्ता।''[14]

आखिरकार कुकुरमुत्ते के अंगीकार एवं सम्मान होने के वर्णन के द्वारा कवि ने उपेक्षितों के नवोत्थान एवं उत्कर्ष का समर्थन किया हैं यह स्पष्ट है कि कुकुरमुत्ता कविता का प्रमेय बिल्कुल निराला है।

निराला उस वेदना के संसार से साक्षात्कार कराना चाहते हैं, जहाँ लोगों की वेदना मर चुकी है। जो दूसरे के दुःख को देखकर दुःख अनुभव नहीं करते। जहाँ मनुष्य सिर्फ अपने बारे में ही सोचता है। 'भिक्षुक' कविता में भिक्षुक अपने दो बच्चों को साथ लिए अपनी फटी झोली का मुँह फैलाता है। इस आशय से कि कोई दया करे और उसे कुछ खाने को मिल जाय। भूख की जो ज्वाला इनके पेट में जल रही है, शान्त हो सके। यही सोचकर कुछ पाने की आस में वह कातर दृष्टि से राहगीरों को देख रहा है–

''वह आता
दो टुक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता
पेट पीठ दोनों मिलकर है एक,
चल रहा लकुटिया टेक,
मुट्ठी भर दाने को–भूख मिटाने को
मुँह फटी पुरानी झोली का फैलाता
....
साथ दो बच्चे भी है सदा हाथ फैलाये,
बायें से मलते हुए पेट को चलते,
और दाहिना दया दृष्टि पाने की ओर बिछाये।
भूख से सूख ओठ जब जाते।
दाता भाग्य विधाता से क्या पाते?
घूट आंसुओं का पीकर रह जाते।''[15]

ये कैसी विडम्बना है हमारे समाज की जहाँ गरीब बच्चों को अपनी भूख शान्त करने के लिए रोटी का एक टुकड़ा तक नहीं मिलता। वह भिखारी अपने बच्चों को लेकर पेट की ज्वाला शांत करने के लिए गली–गली, सड़क–सड़क धूल फाक रहा है। जो कुत्ते के जीवन से भी तुच्छ है–

''चाट रहे जूठी पत्तल वे कभी सड़क पर खड़े हुए
और झपट लेने को उनसे कुत्ते भी है अड़े हुए।
ठहरा अहो मेरे हृदय में है अमृत, मैं सींच दूँगा
अभिमन्यु जैसे हो सकोगे तुम
तुम्हारे दुःख मैं अपने हृदय में खींच लूंगा।''[16]

निराला प्रगतिशील के साथ जनवादी भी है। यह दृश्य उनके हृदय को मर्म से भर देता है।

तोड़ती पत्थर कविता में स्त्री का पत्थर तोड़ना समाज पर व्यंग्य है। वह भी इलाहाबाद के मार्ग पर जिसे कुम्भ नगरी, देव स्थल, बुद्धिजीवियों का क्षेत्र कहा जाता है। शायद इसीलिए कवि ने मार्ग भी चुना तो इलाहाबाद का, वह स्त्री कठोर परिस्थिति में भी पूरे तन–मन से अपने कर्म में लीन है। हथौड़े के बार–बार प्रहार से वह उन पत्थरों को तोड़ देती है। पत्थर तोड़ना उस स्त्री का शोषक वर्ग के प्रति प्रतिकार का प्रमाण है। जिसमें प्रगतिशीलता की झलक को निराला ने दिखाने का प्रयास किया है।

''वह तोड़ती पत्थर।
देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर
वह तोड़ती पत्थर
कोई न छायादार

पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार,
श्याम तन, भर बधा यौवन,
नत नयन, प्रिय–कर्म–रत मन,
गुरु हथौड़ा हाथ,
करती बार–बार प्रहार

x x x

लीन होते कर्म में फिर ज्यों कहा–
मैं तोडती पत्थर।''[17]

तोड़ती पत्थर कविता में यथार्थ की तीव्रता दिखाई पड़ती है। रेखा खरे ने लिखा है–''वह स्त्री पत्थर–निर्जीव पत्थर नहीं तोड़ती, वह अपनी जीवित कामनाओं, यौवन के सुख स्वप्नों का हनन कर रही है। उल्लास–उन्माद, उन्मुक्ति निश्चिन्तता को चह चुनौती दे रही है। पूरी कविता में मूक मजदूरिनी का कंठ अन्त में 'मैं तोड़ती पत्थर' के बड़े साद और संक्षिप्त कथन में खुलता है और सारी विषमताओं, कटुताओं के बावजूद कर्म की निरन्तरता, जीवन की एकान्तिक यांत्रिकता को उभारता है।''[18]

निराला का मानना था अधिकारों के लिए क्रान्ति आवश्यक होती है। उनका यह भी मानना था कि क्रान्ति का आहवान निम्न, तिरस्कृत लोग ही करते हैं। 'बादल राग' कविता की अन्तिम पंक्ति उन्हीं अधिकारों की क्रान्ति को व्यक्त करती है।

''जीर्ण बाहु है, शीर्ण शरीर
तुझे बुलाता कृषक अधीर,
ऐ विप्लव के वीर!
चूस लिया है उसका सार,
हाड़ मात्र ही आधार,
ऐ जीवन के पारावार!''[19]

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि अनुभूतियाँ कवि के मन में उत्पन्न होती है। वे कविता का रूप तब ग्रहण करती है, जब कवि के संस्कारों से मिलकर शब्दों के रूप में प्रस्तुत हो जाती है। उनकी कविताएँ शोषक और शोषण के विरूद्ध क्रान्ति का आहवान है। निराला विचारधाराओं को बदलने के समर्थक है। निराला स्वयं भाग्य विरोधी है। वह कुछ भी भाग्य के भरोसे छोड़ने वाले नहीं है। उनकी यही प्रवृत्ति हमें उनके साहित्य से प्रभावित करने वाली है और उन्हें प्रगतिशील चेतक कवि के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत करती है।

सन्दर्भ :

1. आचार्य नन्दकिशोर नवल (सम्पादक), निराला रचनावली, भाग 1, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, चतुर्थ संस्करण, 2006, पृ0सं0 104
2. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', राग विराग (सम्पादक) राम विलास शर्मा, लोक भारती प्रकाशन, संस्करण 2010, पृ0सं0 118–119
3. नागार्जुन, चुनी हुई रचनाएँ, खण्ड 3, (सम्पादक) शोभाकान्त मिश्र, वाणी प्रकाशन, प्रकाशन वर्ष 2014, पृ0सं0 149
4. डॉ0 राम कुमार सिंह, निराला और उनकी तुलसीदास, प्रथम संस्करण 1976, पृ0सं0 283
5. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', राग विराग (सम्पादक) राम विलास शर्मा, लोक भारती प्रकाशन, संस्करण 2010, पृ0सं0 83–84
6. आचार्य नन्दकिशोर नवल (सम्पादक), निराला रचनावली, भाग–2, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, चतुर्थ संस्करण–2006, पृ0सं0 47
7. वही, पृ0सं0 287
8. वही, पृ0सं0 72

9. वही, पृ0सं0 73
10. बच्चन सिंह, क्रान्तिकारी कवि निराला, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, संशोधित परिवर्धित, पाँचवां संस्करण 2003, पृ0सं0 101
11. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', राग विराग (सम्पादक) राम विलास शर्मा, लोक भारती प्रकाशन, संस्करण 2010, पृ0सं0 89
12. डॉ0 सरोज मार्कण्डेय, निराला साहित्य में युगीन समस्यायें, विद्या प्रकाशन, कानपुर, पृ0सं0 196
13. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', राग विराग (सम्पादक) राम विलास शर्मा, लोक भारती प्रकाशन, संस्करण 2010, पृ0सं0 145
14. आचार्य नन्दकिशोर नवल (सम्पादक), 'निराला' रचनावली, भाग–2, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, चतुर्थ संस्करण–2006, पृ0सं0 62
15. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', अपरा (भिक्षुक) भण्डार भारती लीडर प्रेस, इलाहाबाद, संस्करण ग्यारहवांय, पृ0सं0 67
16. वही, पृ0सं0 67
17. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', राग विराग (सम्पादक) राम विलास शर्मा, लोक भारती प्रकाशन, संस्करण 2010, पृ0सं0 118–119
18. वही, पृ0सं0 56
19. रेखा खरे–निराला की कविताएँ और काव्य भाषा, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, तृतीय संस्करण 1998, पृ0सं0 100

***

समावेशनः दिव्यांगता केवल अभिशाप नहीं

*डॉ. सुनील कुमार यादव**

*संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा प्रारम्भ किये गये विश्व विकलांगता दिवस अर्थात् 3 दिसम्बर, 2021 की बेला अभी समाप्त हुई ही थी, कि 13 दिसम्बर को हमारे देश के प्रधान सेवक माननीय प्रधानमंत्री नरेन्द्र दामोदर दास मोदी जी ने एक ऐसा उत्कृष्ट कार्य किया, जो मानव हृदय की अतल गहराइयों को चीरते हुए सम्पूर्ण मानव समाज के सम्मुख एक कौतूहल पैदा कर दिया। यह आकर्षक दृश्य कही और नहीं बल्कि बाबा विश्वनाथ की नगरी में काशी विश्वनाथ कोरीडोर के उद्घाटन के समय का हैं, जिस समय उन्होनें **"या देवि सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता, नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः"** की उक्ति को साकार रूप प्रदान करते हुए दिव्यांग शिखा के पैर छू लिया। माननीय प्रधानमंत्री जी ने ही दिव्यांगजनो को न्याय व अधिकार दिलाने के लिए विशेष शक्ति और परिस्थिति के कारण उनको दिव्यांग रूप में सम्बोधित किया। कहना न होगा कि ऐसा करने वाले इस मनुवंश के प्रथम व्यक्ति बन गये।*

इस पहल में हम सर्वप्रथम उदाहरण स्वरूप शिखा को ही लेंगे। शिखा रस्तोगी सिगरा वाराणसी की रहने वाली है, जिनकी उम्र 40 वर्ष है। घर पर सिलाई बुनाई एवं नृत्य प्रशिक्षण देती है, जो जन्म से अस्थि दिव्यांग है, जो आत्मनिर्भर हैं। माननीय ने उन्हें सम्मान देते हुए काशीनाथ कोरीडोर में एक दुकान भी दी है। शिखा रस्तोगी ने अपने बुलन्द हौसलों के साथ दिव्यांगता को पीछे छोडकर आत्म निर्भर होने की शिक्षा दी है।

- **दीपा मलिक :–** अर्जुन पुरस्कार, राजीव गांधी खेल रत्न पुरस्कार से सम्मानित दिव्यांग दीपा मलिक ने रियो पैरालंपिक खेल 2016 (ब्राजील) में रजत पदक जीतकर, पैरालंपिक खेलों में मेडल जीतने वाली दीपा पहली भारतीय महिला
  बन गयी है। एनडी टी0वी0 बनेगा स्वस्थ इण्डिया से बातचीत के दौरान दीपा मलिक ने कहा कि सुधार है, भारत निश्चित रूप से महिला सशक्तिकरण, समावेशन, हाशिये के वर्ग को प्रगति में शामिल करने, ऐसी कई योजनाओं को प्रभावित करने जैसे विषयों पर सकारात्मक दिशा में आगे बढ़ा है जहॉ उन्हे सशक्त बनाया गया है। हालांकि हमें अभी लम्बा रास्ता तय करना है, लेकिन निश्चित रूप से हम आगे बढ़ चुके है। जिस तरह से भारत में पैरालंपिक का विकास हुआ है, यह निश्चित रूप से इस बात पर जोर डालता है कि मानसिकता बदल रही है। उन्होनें कहा एक दिव्यांग व्यक्ति और महिलाएं भारत की पैरालंपिक समिति का नेतृत्व कर रही है, जो खुद परिवर्तन को बयां करता है।
- **भाविना हसमुख भाई पटेल**– की जो भारत की महिला पैरा टेबल टेनिस खिलाड़ी है। यह एशियाई चैम्पियनशिप में रजत पदक जीतने वाली पहली भारतीय पैरा टेबल टेनिस खिलाड़ी है।
  एकता बयान– एक पैरा एथलीट है, जो भाला फेंक में भारत का प्रतिनिधित्व करती है। 2018 में इण्डोनेशिया के जकार्ता में आयोजित एशियाई खेलों में एकता ने भारत का प्रतिनिधित्व करते हुए क्लब थ्रो प्रतियोगिता में स्वर्ण पदक जीता।
  अन्य नामों जैसे प्रज्ञा धिल्डयाल, मालथी कृष्णामूर्ति होला, जानकी गोड के है। अगला नाम है,
- **अरूणिमा सिन्हा–** एवरेस्ट की बेटी के नाम से जानी जाने वाली है। उत्तर प्रदेश के अम्बेडकर नगर में जन्मी अरूणिमा दिव्यांग होते हुए एवरेस्ट शिखर पर चढ़ने वाली पहली भारतीय महिला दिव्यांग है।

* असि. प्रोफेसर (बी. एड्. विभाग), श्री दुर्गा जी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, चण्डेश्वर आजमगढ़।

- **आरती डोगरा :– देहरादून,** 3 फुट की आरती 2006 बैच की राजस्थान कैडर की आई0ए0एस0 है। आरती का लोग मजाक उड़ाते थे, परन्तु आई0ए0एस0 बनकर सबका मुंह बन्द कर दिया था। खुले में शौच से मुक्ति के लिए स्वच्छता माडल बंको विकाणों शुरू किया, जिसकी तारीफ पी0एम0ओ0 ने की है।
- **इरा सिंघल :– दिल्ली 2014 बैच की** आई0ए0एस0 है। वह सिविल सेवा परीक्षा में सर्वोच्च स्थान पर पहुॅचने वाली पहली दिव्यांग महिला भी है। इरा को स्कोलियोसिस (रीढ से संबंधित एक विकार) है जो हाथ की गति को बाधित करता है। उनका नाम लिम्का बुक ऑफ रिकॉर्ड्स में भी दर्ज है।
- **हिना खान :–** जौनपुर जिले की रहने वाली जिसकी ऊचाई लगभग चार फुट है, जो दिव्यांग है, श्री दुर्गा जी पी0जी0 कालेज चण्डेश्वर आजमगढ़ से बी0एड0 की उपाधि प्राप्त कर माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड द्वारा अंग्रेजी की सहायक अध्यापिका नियुक्त हो गयी है।
- **सुहास एल0वाई0–** देश के पहले ऐसे आई0ए0एस0 आफिसर जो टोक्यो पैरालम्पिक 2021 में देश के पैर वैडमिण्टन खिलाड़ी के रूप में प्रतिनिधित्व कर रजत पदक दिलाया। इसके साथ दुनिया के दूसरे नम्बर के पैरा वैडमिण्टन खिलाड़ी भी है। साथ ही साथ एक कर्मठशील जिलाधिकारी के रूप में भी इनकी पहचान है।
- **इन्द्रजीत साकेत –** मध्य प्रदेश के रीवां जिले के निवासी है, जो काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में संस्कृत के छात्र है, जो दृष्टिहीन है।

  उन्होंने कहा – ''अभी तो नापी है, मुट्ठी भर जमीन हमने''
  अभी तो सारा आसमान बाकी है।''

ये विलक्षण प्रतिभा के धनी है। मिमिक्री एवं हिन्दी फिल्मी गानों को संस्कृत वर्जन में गाना, भागवत कथा वाचन आदि में माहिर है।

- **गोकरण –** छत्तीसगढ़ का रहने वाला जिसके दोनो हाथ नहीं है, परन्तु दोनों पैर के माध्यम से पेटिंग के क्षेत्र में अद्भुत कार्य।

कोशिश करने वालों की कभी हार नहीं होती, इस उक्ति को चरितार्थ करने वाली ये बेटे–बेटियां यदि हार मानकर लाचार होकर घर पर बैठ जाते तो वह अपने परिवार के लिए बोझ होते। सम्पूर्ण जीवन उन्हें दूसरों के सहारे गुजारना पड़ता।

इसलिए मैं यह कहना चाहता हूॅ कि मुश्किलें तो हर इंसान के जीवन में आती है, लेकिन विजयी वहीं होता है जो उन मुश्किलों का बुलन्द हौसलों के साथ डटकर मुकाबला करता है।

दिव्यांगता एक ऐसा शब्द है, जो किसी को भी उसके शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक विकास में अवरोध उत्पन्न करता है। आकड़ो के अनुसार विश्व में लगभग एक अरब लोग किसी न किसी प्रकार की दिव्यांगता के शिकार है। निःसन्देह ऐसे व्यक्तियों को शुरूआत से ही चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। दिव्यांगता की ऐसी स्थिति होती है, जिसमें हम सहज जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकते है। परन्तु कुछ पाना है, कुछ कर दिखाना है, तो यह जज्बा उनके भीतर भी भरना होगा, जिन्हे अब तक हम असहाय समझते रहे, परन्तु अब वह दिव्यांग है। जो अपनी जिद से दुनिया बदल डालने की ताकत रखते है, न कि दुनिया के आगे झुकने की।

ऐसे ही दिव्यांगजनों के लिए प्रारम्भ की गयी कुछ संस्थाओं का जिक्र करेंगे, जिनका वर्तमान सामाजिक एवं शैक्षिक परिवेश में महत्वपूर्ण योगदान है।

- **पागीर–** द पीपुल्स एक्शन ग्रुप फार इनकलूजन एण्ड राईट्स – सन् 2007 में दि मोहम्मद इकबाल द्वारा लेह–लद्दाख में स्थापित– इसमे काम करने वाले लोग कहने के लिए दिव्यांग है। परन्तु इनके हाथ का हूनर वो जादू विखेरता है, जिसे देखकर इनका लोहा मानना पड़ता है। सहज विश्वास नहीं होता है कि बेकार सामग्री से तैयार किये गये सभी उत्पाद जैसे सोफा कुशन, हैण्डबैग, हैण्ड पर्श, इत्यादि किसी सामान्य नहीं बल्कि दिव्यांग व्यक्ति द्वारा बनाया गया है। आज यह Best to craft के अन्तर्गत यह लेह ही नहीं बल्कि भारत की राजधानी दिल्ली जैसे

बाजारों में अपनी छाप छोड़ रखा है। Himalya on wheels programme के अन्तर्गत चलाये जा रहे अपने कार्यक्रम के बारे में मोहम्मद इकबाल ने बताया कि हम दिव्यांग पर्यटकों को वह सारी सुविधाएं देते है, जिससे वो भी अन्य पर्यटकों को वह सारी सुविधाएं देते है, जिससे वो भी अन्य पर्यटकों की तरह अपनी मात्रा का भरपूर आनन्द उठा सके।

- **हेल्प फाउन्डेशन (Help foundation)** :– जम्मू कश्मीर 2015 में युवा चिकित्सक इमरान खान ने अपने कदम आगे बढ़ाये है। वहां पर मानसिक बीमारों की संख्या सर्वाधिक है, जिनकी शिक्षा पुनर्वास, सशक्तिकरण एवं क्षमता निर्माण के साथ–साथ सामान्य देखभाल और मानसिक सुरक्षा पर काम कर रही है।
- **नारायण सेवा संस्थान उदयपुर** –इसके संस्थापक कैलाश जी अग्रवाल मानव है, यह एक दिव्यांग तथा पोलियो चिकित्सा सेवाकारी संस्था है।
- **जगद्गुरू राम भद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय चित्रकूट उ0प्र0** इसकी स्थापना 27 सितम्बर 2001 को हुयी थी, जो उ0प्र0 का प्रथम दिव्यांग विश्वविद्यालय बना। इसका ध्येय वाक्य है –सेवा का कर्तव्य अत्यन्त कठिन है।
- **डा0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय लखनऊ** इसकी स्थापना 2008 में की गयी। यह एक राज्य विश्वविद्यालय है। यह दिव्यांग शिक्षा से सम्बन्धित विश्वविद्यालय है।

इस लेख के माध्यम से मैं यह संदेश देना चाहता हूँ कि हम तन से लाचार हो सकते है पर मन से लाजवाब है। हमें दया नहीं अधिकार चाहिए, सम्मान चाहिये। हम भी इसी समाज के अभिन्न अंग है। जब यह सोच हमारे समाज के हर तबके में फैलेगी और एक अच्छी सोच अर्थात बिना किसी भेदभाव, अस्पृश्यता रहित समानता एंव भ्रातृत्व के साथ व्यवहार करेंगे तो समावेशन की प्रक्रिया सार्थक होगी।

इस प्रकार इन गिने चुने नामों को हम अनगिनत की श्रेणी में ले जाना चाहते है और यह तभी सम्भव होगा, जब हम माननीय प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जी द्वारा किये गये कार्यो को साकार रूप देने में स्वयं की भूमिका तलाशेंगे। जिस प्रकार पी0एम0 मोदी जी द्वारा मिले सम्मान ने प्रत्येक व्यक्ति को यह संदेश दिया कि शारीरिक दिव्यांगता कोई कमी नहीं होती है। यह सिर्फ मन का विकार होता है। जिसे दूर किया जा सकता है। दुनिया में कुछ भी असंभव नहीं है, हमें अपने आत्म विश्वास के साथ अपनी लड़ाई स्वयं लड़नी होती है। उसके वाद पूरी दुनिया हमारी काविलियत और हुनर को समझेगी, इसलिए मैं सारे भारतवासी से यह अपील करना चाहूंगा कि दिव्यांगो को कभी कमजोर न समझे उनका हौसला बुलन्द करें और उनको आगे बढ़ाये। यह सर्वविदित है कि किसी विकसित या विकासशील देश में माता–पिता, भाई–बहन, अभिभावक, मित्र विद्यालय, समुदाय, समाज आदि चाहें जो भी घटक हो वहॉ समावेशन एक विकासमान धारणा एवं प्रसारमान व्यवहार है, किन्तु यह साध्य नहीं एक साधन है, मंजिल नहीं सफर हैं, और परिणाम नहीं प्रक्रिया हैं। अब आवश्कता इस बात की हैं कि इस पृष्ठभूमि पर होने वाले अनावश्यक संवाद की इति श्री हो और दिव्यांगता के प्रति सबकी भावनाएं सकारात्मक हो। अतः आज से, अभी से, यही से, निष्क्रियता एवं प्रतिक्षा की तिलांजलि देते हुए, दिव्यांगजनों के प्रति तुरन्त कार्य प्रारम्भ कर देना लोक कल्याणकारी होगा।

सन्दर्भ :

w.w.w. Aaj Tak
w.w.w. gov.in
दैनिक जागरण 14 दिसम्बर 2021
नवभारत टाइम्स 14 दिसम्बर 2021
amar Ujala .com
https ://jrdu.ac.in
Navbharattimes.India times.com
https://dsmru.up.nic.in

***

महिला सशक्तिकरण के राजनीतिक आयाम

*डॉ. नीरा वर्मा**

ऐसा कहा जाता है कि हर सफल पुरूष के पीछे एक महिला का हाथ होता है। इस वक्तव्य में निहित अर्थ से पृथक होकर यदि महिलाओं की स्थिति में आपतिजनक विघटन को देखा जाए तो कम से कम अब तक कि राजनीति से सम्बद्ध पुरूषों के संबंध में यह कहना उचित होगा कि राजनीति में प्रत्येक सफल पुरूष के पीछे वह महिला ही है, जिसे स्वयं उन अवसरों से वंचित होना पड़ा है।

महिलाएँ विश्व की लगभग आधी आबादी का प्रतिनिधित्व करती है एवं वैश्विक निर्वाचन क्षेत्रों में उसका प्रतिनिधित्व आधे से भी कम है, तथापि विश्व के वैधानिक निकायो में महिलाओं का प्रतिनिधित्व हाशिए पर है, इस असंतुलन में सुधार के प्रति भारत अभी सीमित सफलता ही प्राप्त कर चुका है। हालॉकि प्रथम लोकतांत्रिक राष्ट्रों में से भारत भी एक ऐसा देश था जिसने महिलाओं को वोट का अधिकार प्रदान किया। परन्तु महिलाओं को न तो वैधानिक क्षेत्र में प्रतिनिधित्व हासिल था और न ही राष्ट्रीय नीति के निर्माण में उनका कोई योगदान था। आजादी के लगभग सात दशक उपरांत जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं की स्थिति में सुधार की दृष्टि से सरकार एवं नागरिक समाज द्वारा असंख्य प्रयास किए गए। इसका प्रमुख उद्देश्य उन्हें पुरूषों के समान अधिकार प्रदान करके समाज, अर्थव्यवस्था, राजनीति एवं शिक्षा के क्षेत्रों में उनकी स्थिति को उन्नत करना था। इतने प्रयासों के बावजूद अभी भी महिलाओं की आबादी का बहुत बड़ा भाग अपने मूलभूत मानवाधिकारों अर्थात राजनीति में सहभागिता के अधिकार से वंचित है। इसका एक महत्वपूर्ण अस्तित्व की वास्तविकता के अभाव ने महिलाओं को सदियों से शक्तिहीन बनाए रखा है। स्वतंत्रता के तत्काल बाद हमारी सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक स्थिति पहले से अधिक विखंडित हो चुकी थी, परंतु फिर भी संविधान सभा में भारत में नए संविधान का प्रारूप तैयार करने के लिए शिक्षित वर्ग की अनेक महिलाओं ने सहभागिता दिखाई। विश्व भर में नीति–निर्माण प्रक्रिया के अंतर्गत महिलाएँ की आवाजें प्रायः नहीं सुनी जाती। लोकतांत्रिक संस्थाओं में उनका अल्प प्रतिनिधित्व हैं तथा महिला संगठनों के पास भी राजनीतिक संवाद को प्रभावित करने के अवसर प्रायः कम है। कुछ देशों में तो अभी भी महिलाएँ वोट देने अथवा चुनाव में खड़े होने में असमर्थ है।

विश्व की आधी आबादी महिलाओं की है, कोई भी देश अपनी आधी जनसंख्या की कार्यकुशलता, प्रतिभा एवं दक्षता की उपेक्षा नहीं कर सकता। इसके अतिरिक्त वे संस्थाएँ जो महिलाओं के अनुभवों एवं दृष्टिकोण को नहीं अपनाती, वे प्रायः ऐसी नीतियाँ बनाती है जिनका महिलाओं के जीवन की वास्तविकता से कोई सरोकार नहीं होता। ऐसी परिस्थितियों में निर्मित नीतियाँ महिलाओं की आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर सकती, अब यह मान्यता बढ़ने लगी है कि लोकतांत्रिक संरचनाएँ वास्तविक प्रतिनिधित्व का दावा नहीं कर सकती क्योंकि जिस आबादी का प्रतिनिधित्व उन्हें करना चाहिए उसे प्रतिबिंबित करने में वे असफल साबित हुई है। राजनीति में महिलाओं के प्रतिनिधित्व में वृद्धि का लक्ष्य अनेक सम्मेलनों एवं संधियों का विषय रहा है। हालॉकि पिछले कुछ वर्षों में लोकतंत्र में महिलाओं की सहभागिता के विषय को राजनीतिक एजेण्डा में जोरदार ढंग से उठाया गया है, परंतु महिला राजनीतिज्ञों का वास्तविक अनुपात निम्न ही रहा है।

नारी का राजनीतिक सशक्तिकरण को देखा जाय तो इसमें दो मूल्य केन्द्रित शब्द है–पहला राजनीतिक और दूसरा सशक्तिकरण। सशक्तिकरण शब्द को प्रायः अधिकार, सामर्थ्य या प्रदत्ता के अर्थो में प्रयोग किया जाता है। यदि किसी का सबलीकरण हो चुका है तो इसका अर्थ है कि व्यक्ति के पास निर्णय लेने और प्रभावित करने की क्षमता आ चुकी है, और वह निर्णय लेने में समर्थ है। सबलीकरण व्यक्ति को हस्तक्षेप करने, रणनीति निर्धारित करने और कदम उठाने के लिए भी समर्थ बना देता है।[1]

---

* कॉन्ट्रेक्चुअल सहायक प्राध्यापिका (I.C.P.R.-JRF), दर्शनशास्त्र विभाग, माड़वारी कॉलेज, राँची

आधुनिक राष्ट्र राज्य की व्यवस्था में राज्य द्वारा बनाई जाने वाली नीतियाँ प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से व्यक्ति के बेहद निजी पहलुओं तक को भी प्रभावित करती है, इसलिए यह बेहद जरूरी है कि व्यक्ति के पास इन नीतियों को प्रभावित करने के लिए कुछ क्षमता अवश्य होनी चाहिए। हालांकि जहाँ तक एक वोट का सन्दर्भ है, यह सत्य है कि व्यक्तिगत राय का भी महत्व तो होता ही है, लेकिन एक प्रतिनिधित्व केन्द्रित लोकतंत्र में सार्वजनिक नीतियों को मूलतः पूरे समुदाय/समूह की क्षमता ही निर्धारित करती है। इस सन्दर्भ में ही एक समूह के रूप में महिलाओं का राजनीतिक सबलीकरण आवश्यक हो उठता है ताकि वह भी सार्वजनिक नीतियों को प्रभावित करने में सक्षम हो सके।[2]

भारतीय सन्दर्भ में देखा जाय तो राष्ट्रीय आन्दोलन के शुरूआत में कई समूहों ने महिलाओं के भाग लेने को अच्छा नहीं समझा और उन्हें रोकना चाहा लेकिन दूसरी ओर राजनीतिक जीवन में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी की वजह से यह स्थिति ज्यादा दिन तक नहीं चली। राजनीति में महिलाओं की भागीदारी के पक्षधर और विरोधी दोनों ही भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति की जटिलता को अच्छी तरह समझते थे। एक समूह का मत था कि स्वतंत्र भारत के भावी समाज की रूप रेखा में परंपराओं और महिलाओं की स्थिति पर पुनर्विचार करना होगा। दूसरे समूह का मत था कि हमें भारतीय परंपराओं की पुष्टि करनी हैं और स्वतंत्र भारत के भावी स्वरूप में जो भी बदलाव लाए जाएंगे उसी पुराने ढांचे के भीतर रहकर लाने है दूसरी विचारधारा ब्रिटीश औपनिवेशिक शासन से भारत के पारंपरिक मूल्यों और रीति–रिवाजों के प्रति खतरे के डर से प्रभावित थी। उनकी विशेष चिंता यह थी कि महिलाओं की जगह कहाँ हो और कहाँ नहीं तथा उनकी सार्वजनिक भूमिका क्या हो? इस खतरे के डर से अक्सर महिलाओं की रेडिकल माँगों की आवाज उठने ही नहीं जाती थी या फिर उन्हें सामाजिक और राजनीतिक मांगों में विभाजित करके देखा जाता था।

भारतीय आंदोलन की उदारवादी धारा का मानना था कि महिलाओं की स्थिति में सुधार तभी संभव है जब वे अपने निर्णय स्वयं ले सके। हालॉकि महिलाओं की बराबरी का सवाल उनकी सामाजिक स्थिति को लेकर उठा था पर वह शुरू से ही एक गहरा राजनीतिक सवाल था। महिलाओं को लामबंदी करने, और उनके मुद्दे उठाने में सबसे ज्यादा सक्रिय संगठन ऑल इंडिया बूमेंस कांफ्रेंस था, जिसकी स्थापना कांग्रेस ने 1928 में महिलाओं को आंदोलन में बढ़ती भागीदारी को देखकर की थी। 19वीं सदी के अंत और 20वीं सदी के प्रारंभ में महिलाओं के दर्जे और अधिकारों को लेकर आंदोलन से बीसवीं सदी में महिलाओं की मताधिकार की माँग उठी। राष्ट्रीय कांग्रेस के 1933 के सातवें सबकी रिपोर्ट के अंश से साफ है, महिला नेताओं का यह स्पष्ट था कि महिलाएँ अपने हितों के कारण राजनीति में भाग लेना चाहती है। उस समय काफी महिलाओं की सोच के अनुसार उनके प्रतिनिधित्व के अधिकार का अर्थ था–निर्णय प्रक्रिया के पुरूष प्रभुत्ववाले क्षेत्र में महिलाओं का प्रवेश।

अपने राजनीतिक अधिकार के लिए भारतीय महिलाओं की तरफ से पहली माँग 1917 में उठी थी कि महिलाओं को भी नागरिक का दर्जा दिया जाए। उसी साल सरोजनी नायडू द्वारा पहली बार मताधिकार की मांग की गई। 1919 में जब मताधिकार के प्रश्न पर बात करने के लिए 'साउथ बोरो कमीशन' भारत आया था तो श्रीमती एनी बेसेन्ट के नेतृत्व में एक प्रतिनिधिमंडल भारतीय महिलाओं के मताधिकार के पक्ष में दबाव डालने के लिए आयोग से मिला था। औपनिवेशिक भारत में 1919 में मांटेग्य चेम्सफोर्ड ने कई कानूनी सुधार किए, जब सुधारों को लागू किए जाने की बात उठी तो प्रांतीय सरकारों को इस मुद्दे पर निर्णय लेने का अधिकार दिया गया। सबसे पहले मद्रास में महिलाओं को मताधिकार 1926 को मिला तथा महिलाओं को विधानसभा में प्रवेश मिला। डॉ. एस नृत्युलक्ष्मी पहली महिला विधायक बनी, जैसा कि गांधीजी ने कहा था कि ''महिलाओं को वोट देने का अधिकार और बराबर का कानूनी दर्जा मिलना चाहिए, लेकिन समस्या वहीं समाप्त नहीं होती। यह उस बिन्दु से शुरू होती है, जहाँ महिलाएँ देश की राजनीति पर असर डालना शुरू करेगी।[3]

औपनिवेशिक शासन की समाप्ति पर देश के नेताओं ने उन कई बाधाओं को दूर करने का प्रयास किया जिनके कारण महिलाएँ कानूनी, राजनीतिक, शैक्षिक और आर्थिक संस्थाओं से दूर रखी जाती थी। ऐसी आशा की गई कि इससे समाज में जेंडर के आधार पर व्याप्त असमानताओं को कम

किया जा सकेगा और इससे महिलाओं की विभिन्न क्षेत्रों में भागीदारी भी बढ़ेगी। इससे दो उद्देश्यों की पूर्ति हुई। एक तो यह कि इससे सामाजिक और राजनीतिक ढाँचों से फोकस हटाकर व्यक्तिगत राजनीतिक अधिकारों के मुद्दों पर ध्यान केन्द्रित किया गया। इस प्रकार से संवैधानिक प्रावधानों और सार्वजनिक नीतियों द्वारा प्राप्त सीमित फायदों को महिलाओं की व्यक्तिगत स्तर पर असफलता के रूप में आँका गया जैसे कि वे संविधान सभा द्वारा दी गई उन बुनियादी राजनीतिक समानता के लाभों को पूरी तरह न पाने के लिए स्वयं जिम्मेदार है।[4] आरक्षण के सैद्धांतिक, दार्शनिक और व्यावहारिक सभी पक्षों पर चर्चा हुई। राजनीतिक बराबरी बिना, आर्थिक बराबरी मिल ही नहीं सकती क्योंकि इन सबके मूल में सामाजिक सत्ता का सवाल है। भारत में अनेक धर्मवृत्तियों और अनेकदेववाद के बावजूद जाति व्यवस्था के 'लौह आवरण' ने हिन्दू समाज को बांधकर रखा है। इस वजह से सामाजिक गतिशीलता के लिए व्यक्तिवाद की रणनीति यहाँ काम नहीं कर सकती। संविधान सभा ने जातीय गैर बराबरी को कानूनी दृष्टि से 'सामाजिक पिछड़ेपन' की परिभाषा दी। उन्होंने कहा कि कुछ व्यक्ति/समूह इसलिए पिछड़ गए हैं कि क्योंकि उन्हें जीवन में आगे बढ़ने के मौके नहीं दिए गए। इस पिछड़ेपन का कारण उनका समाज में निम्न आर्थिक स्थान तो था ही साथ में प्रचलित मूल्य और सोच भी थी।[5]

ए. आई. डब्ल्यू. सी. के अपने अध्यक्षीय भाषण में सरोजनी नायडू ने कही थी कि ''मेरे विचार से ए. आई. डब्ल्यू. सी. के इस सम्मेलन में विश्व की महिलाओं का इतिहास लिखा जा चुका है। मैं आपके सामने यह स्वीकार करना चाहती हूँ कि मैं नारीवादी नहीं हूँ। नारीवादी होने का मतलब यह स्वीकारना है कि स्त्रियों का दमन हुआ है। अगर वे विशेष सुविधाएँ चाहती हैं तो इसका मतलब है कि वे अपनी हीनता स्वीकार कर रही है। लेकिन भारत में इसकी कोई जरूरत नहीं है। यहाँ स्त्रियाँ राज समितियों और युद्धों में पुरूषों के साथ–साथ रही है...हमें घर या बाहर आपसी टकराव की स्थिति पैदा नहीं करनी है। हमें अपने मतभेदों से उपर उठना है। हमें राष्ट्रवाद, धर्म और लिंग से उपर उठना है।[6] इससे स्पष्ट है कि महिलाओं के बेहतर दर्जे के लिए आरक्षण को एक पिछड़ा कदम करार करके ही महिला नेताओं ने अस्वीकार कर दिया था। उन्होंने ब्रिटेन के प्रधानमंत्री और नए संविधान में प्रस्तावित महिलाओं के दर्जे पर बनी अल्पसंख्यक समिति के अध्यक्ष को लिखे पत्र में तीनों संगठनों (ए. आई. डब्ल्यू. सी, विमेंस इंडिया एसोसिएशन और सेंट्रल कमेटी ऑफ द नेशनल काउंसिल ऑफ विमेन ऑफ इंडिया) ने महिलाओं को तुरंत व सम्पूर्ण सैद्धांतिक और व्यावहारिक बराबरी दिए जाने की माँग की। उन्होंने साथ ही स्पष्ट किया ''हम किसी भी छोटे समूह द्वारा उठाई गई इस माँग का विरोध करते हैं, जो कि विधानपालिकाओं में महिलाओं के समुचित प्रतिनिधित्व, जो कि सीटों के आरक्षण या मनोनयन चाहे वह दर्जे, परंपरा या केंद्रीय और प्रांतीय सरकारों की इच्छा से हो, को हासिल करने के लिए अल्पकालिक रियायतों या दूसरे तरीकों को अपनाना चाहते हैं। कोई इस प्रकार की रियायती सुविधाओं को हासिल करने का मतलब है कि राजनीतिक क्षेत्र में पूर्ण बराबरी की महिलाओं की सार्वभौमिक माँग की अखंडता को तोड़ना।'' 16 नवंबर 1931 को इन तीनों संगठनों ने 'नए संविधान में महिलाओं के दर्जे' पर ब्रिटेन के प्रधानमंत्री को एक संयुक्त ज्ञापन दिया। सरोजनी नायडू और बेगम शाहनबाज द्वारा मिलकर लिखे गए इस 'ड्राफ्ट मेमोरेडम' को सभी निर्वाचन क्षेत्रों में भेजकर उनसे आरक्षण के मुद्दों पर उनकी राय माँगी गई। ए. आई. डब्ल्यू. सी. कि 1931 के वार्षिक रिपोर्ट में उस समय केवल एक निर्वाचन क्षेत्र से आरक्षण के पक्ष में उत्तर का जिक्र मिलता है, जिसने भी बाद में अपना मत बदल दिया।[7]

राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान राजनीतिक संस्थानों में महिलाओं के लिए कोटे या आरक्षण का मुद्दा उठा ही नहीं। फिर भी राष्ट्रीय आंदोलनों में महिलाओं की भारी संख्या में भागीदारी से स्वतंत्र भारत के संविधान में उन्हें हर तरह की बराबरी का बुनियादी अधिकार मिला। इस व्यक्तिगत बराबरी पर जोर को हम 'नियोजित अर्थव्यवस्था में महिलाओं की भूमिका पर उपसमिति' की रिपोर्ट में साफ देख सकते हैं।[8] महिलाओं को व्यक्तिगत रूप से प्रमुखता तो मिली, उन्हें 'उपयोगी नागरिक' और 'उत्पादक श्रमिक माना गया' क्योंकि अब राष्ट्र–राज्य के जन्म के साथ महिलाओं की उन्नति का सवाल

राष्ट्र की उन्नति का सवाल बन गया है।[9] महिलाओं को एक अलग श्रेणी में रखने और उनके बीच के अंतरों को पहचानने की मुश्किल फिर भी बनी रही।[10]

भारतीय समाज के साथ–साथ पूरे विश्व में महिलाओं के लिए सबसे अच्छे व्यवसाय शिक्षिका, चिकित्सक, परिचारिका के ही माने जाते रहे हैं। स्त्रियों के लिए राजनीतिक को तो अधिकतर लोगों ने एकमत से वर्जित क्षेत्र माना है। उसके पीछे धारणा यह रही है कि इन व्यवसायों में रहकर भी महिलाएँ अपने परिवार की जिम्मेदारी सरलता से उठा सकती है। अर्थ स्पष्ट है कि स्त्री चाहे पढ़ी–लिखी हो या नहीं, कामकाजी हो या हाउसवाइफ, परिवार और बच्चों का जिम्मा उसी के कंधों पर है और रहेगा। राजनीति और सत्ता का संबंध तो सीधे तौर पर पुरूषों से ही रहा है। उसी कारण महिलाओं को राजनीति से दूर रखा जाता रहा है।[11] राजनीति इन औरतों के लिए नहीं है, इनका काम घर की साफ–सफाई और अपने परिवार की देखभाल करना है। अगर देश को चलाने का काम भी इन औरतों ने करना शुरू कर दिया तो फिर हम आदमी लोग क्या करेंगे? घर–बार और इन बच्चों को पिफर कौन देखेगा? राजनीति वैसे भी कीचड़ की तरह होती है, औरतें इससे जितना दूर रहे उनके लिए उतना ही अच्छा है इत्यादि। हमारे समाज में स्त्रियों को लेकर इस तरह की बातें हर किसी ने कीाी न कभी अपने घर, परिवार या गली–मोहल्ले में जरूर सुनी होगी।

भारतीय संविधान के द्वारा महिलाओं को पुरूषों के समान राजनैतिक अधिकार, समानतायें और स्वतंत्रता प्रदान की गई है। भारत के प्रत्येक स्त्री–पुरूष को सक्रिय राजनीति में प्रवेश करने तथा देश की विधान निर्मात्री सभाओं का सदस्य बनकर नीति–निर्माता के रूप में अपनी सेवाओं से देश को लाभान्वित करने की स्वतंत्रता है। स्वतंत्रता के छः दशकों के इतिहास का यदि अवलोकन किया जाये तो हम पायेगें कि इस स्वतंत्रता का प्रयोग जितना पुरुषों ने किया है, उतना महिलाओं ने नहीं। जिस देश की सर्वोच्च शासक एक महिला रही हो तथा आम स्त्री क्या आज भी अपने संवैधानिक अधिकारों का प्रयोग कर पाती है? क्या आज उसको समाज में समानता की वह स्थिति प्राप्त है, जिसका दावा हमारा संविधान करता है? क्या भारत के राजनीतिक विकास में महिलाओं की भागीदारी उतनी है जितनी होनी चाहिए? क्या स्वतंत्रता के छह दशकों में महिला नेतृत्व तथा प्रतिनिधित्व की एक सशक्त पीढ़ी उभरकर सामने आयी है? दुर्भाग्य से उन समस्त प्रश्नों के उत्तर नकारात्मक है। हमारे संवैधानिक विकास के क्रम में देश की आधी आबादी की भागीदारी केवल कुछ सम्पन्न वर्ग की महिलाओं अथवा राजवंशों की महिलाओं तक ही सीमित है। यदि किसी आम स्त्री ने अपने संवैधानिक अधिकारों का प्रयोग करते हुए सक्रिय राजनीति में कदम बढ़ाने का दुःसाहस किया है तो उसे अवश्य अपने परिवार के किसी पुरूष के सहारे की वैशाखी को साथ में लेकर चलना पड़ा है। आज भी सक्रिय राजनीति में तथा विधानमंडलों में महिलाओं का प्रवेश उनकी स्वयं की इच्छा तथा निर्णय पर कम निर्भर करता। उन्हें या तो उनके राजनैतिक व्यक्तित्व रखनेवाले पिता था पति की मृत्यु के पश्चात् सहानुभूति के वोट बटोरने के लिए राजनीति में लाया जाता है। अथवा पति की घूमिल होती जा रही राजनीतिक छवि पर पर्दा डालने के लिए रातों–रात रसोई घर से निकालकर सत्ता की प्रमुख आसदी पर सजावटी शासक बनाकर बैठा दिया जाता है।[12]

वर्तमान में महिलाओं की दशा एवं दिशा दोनों बदला है। खास कर राजनीति क्षेत्र में उचित प्रतिनिधित्व तो नहीं मिला है फिर भी पहले की अपेक्षा संख्या बढ़ी है। केन्द्र सरकार द्वारा लोकसभा एवं विधान सभाओं में महिलाओं के लिए 33% आरक्षण संबंधी विधेयक आज तक पास नहीं हो सका। बिहार सरकार द्वारा स्थानीय निकायों में महिलाओं को आरक्षण दिये जाने से बिहार की राजनीति में काफी बदलाव हुआ है तथा इसका असर भारतीय राजनीति पर भी पड़ा है। वर्तमान में बिहार विधान सभाओं में महिलाओं की संख्या 28 है। अर्थात् 11.8% है। जबकि लोकसभाओं में महिला प्रतिशम मात्र 7% है। इस दृष्टि से देखा जाय तो महिला सशक्तिकरण के विविध आयामों में राजनीति क्षेत्र में काफी बदलाव हुआ है। वर्तमान में राजनीतिक सशक्तिकरण अवश्य हुआ है।

सन्दर्भ सूची :

1. साधना आर्य, निवेदिता मेनन जिनी लोकनीता – नारीवादी राजनीति संधर्ष एवं मुडडे, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली वि.वि., पृ.–340–41
2. वही
3. गांधी– यंग इंडिया 1929
4. Kuonud Sharma - 1984 - Women in Focus New Delhi Sangam Publication
5. Gyanendra Shah - Social Backwardnes and Reservation Politics Economic and Political Weekly
6. A.I.W.C. का चौथा अधिवेशन, मुंबई – 1930
7. A.I.W.C. का वार्षिक रिपोर्ट– 1931
8. वीमेंस रोल इन प्लान इकोनामी – 1996, पृ.–218
9. Chaudhari Maitrayee - 1990 - Citizens Workes and Emblens of Culture
10. Bacchi Carol Lee - 1996 - The Politics of Affirmative Action - Women Equality and Category Politics
11. डॉ. आर.पी. तिवारी एवं डॉ. पी. शुक्ला, भारतीय नारी वर्तमान समस्याएँ और भावी समाधान, पृ.–86
12. साधना आर्य– निवेदिता मेनन– जिनी लोकनीता नारीवादी राजनीति : संघर्ष एवं मुद्दे, पृ.–342

***

बौद्ध दर्शन में वर्णित नैतिक मूल्य की वर्तमान में प्रासंगिकता

*डॉ. प्रेम कुमार**

वैश्विकरण के इस युग में जहाँ एक ओर भौतिक विकास हो रहा है वहीं दूसरी ओर आध्यात्मिकता का ह्रास हो रहा है। जबकि आध्यात्म के अभाव में भौतिक संवृद्धि टीकाऊ नहीं हो सकता है। इसलिए इस परिस्थिति में बौद्ध दर्शन में वर्णित नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की प्रासंगिकता बढ़ जाती है। बौद्ध नीतिमीमांसा में वर्णित ब्रह्म विहार की अवधारणा इस दिशा में काफी प्रासंगिक हो जाता है। इस संदर्भ में राकेशा राणा बताते हैं कि नैतिक मूल्य स्वस्थ समाज के आधार स्तम्भ हैं।[1] विवेक वह आधार भूमि हैं जिस पर नैतिकता के मूल्य अंकुरित होते हैं। नैतिकता के वाह्य प्रभाव शनै–शनै हमारे व्यक्तित्व में समाहित होते जाते हैं। धीरे–धीरे नैतिक व्यवहार के बाहरी स्रोत समाप्त हो जाते हैं। व्यक्तित्व विकास में नैतिक मूल्य और संस्कार सहायक होते हैं। यह मानवता की पहचान है। सच्ची शिक्षा वही है जो शिक्षार्थी में नैतिक व आध्यात्मिक मूल्यों को विकसित करें।[2] नैतिक मूल्यों का विस्तार व्यक्ति से विश्व तक जीवन के सभी क्षेत्रों में होता है। इसी संदर्भ में महात्मा गाँधी ने कहा है, 'शिक्षा का मूल लक्ष्य नैतिक शिक्षा है, चरित्र निर्माण है, इस विश्वास को उत्पन्न करता है कि आदर्श की प्राप्ति के लिये स्वार्थ तथा वैयक्तिक सुख से ऊपर उठना अनिवार्य है।[3] इस तरह से देखा जाय तो नैतिक मूल्यों की बात हर जगह की गयी है पर बौद्ध धर्म दर्शन में इसके व्यावहारिक पक्ष पर जोर देते हुए कई सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया है जिसका केन्द्र नैतिक–मूल्य ही है। चाहे ब्रह्मविहार, पंचशील, अस्टाँगिक मार्ग, प्रज्ञा, शील समाधि आदि के केन्द्र में यही है। बौद्ध धर्म दर्शन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह नीतिमीमांसा से ज्ञानमीमांसा फिर ज्ञानमीमांसा से तत्वमीमांसा की ओर बढ़ता है, जबकि ठीक इसके विपरीत जैन दर्शन तत्वमीमांसा से नीतिमीमांसा की ओर बढ़ता है। दोनों दर्शन में यही प्रमुख अन्तर भी है।

बौद्ध धर्म दर्शन में वर्णित ब्रह्म विहार की अवधारणा नैतिक मूल्यों को दर्शाता है। इसमें मानव के नैतिक पक्ष को प्रमुखता प्रदान की गयी है। सामान्यतः ब्रह्म विहार संस्कृत शब्द है, जिसका अर्थ है– ब्रह्म स्वर्ग में निवास। बौद्ध दर्शन में मानसिक विकास की चार उच्च रीतियाँ बताई गयी है जिनमें मनुष्य ब्रह्म स्वर्ग में पुनर्जन्म ले सकता है। ये चार रीतियाँ हैं– मैत्री, करूणा, मुदिता और उपेक्षा। इन्हीं चार उदात अवस्थाओं को ब्रह्मविहार कहा जाता है। मैत्री सभी जीवों के प्रति प्रेमभाव रखना तथा उसके हितों का ख्याल रखना मैत्री कहलाता है। अर्थात यह सहानुभूति का तत्व, जो जीवों को प्रसन्नता देता है। दूसरा प्रमुख है करूणा, करूणा का आदर्श तत्व जो जीवों के दुःख हरता है। करूणा के कारण बोधिसत्व निर्वाण में प्रवेश को स्थगित करते हैं ताकि अन्य लोगों की मुक्ति के लिए काम किया जा सके। तीसरा तत्व मुदिता आनन्द का तत्व है। आनन्द प्राप्त लोगों को देखकर आनन्दित होना तथा अंतिम चौथा उपेक्षा है। सभी जीवों के प्रति समभाव हो जाना उपेक्षा है। उपेक्षा समबुद्धि का आदर्श तत्व है। सभी वस्तुओं के प्रति आसक्ति से मुक्त होना और जीवों के प्रति उदासीन होना। इन्हें चार अपरामानस (आनन्द अनुभव) कहते हैं, क्योंकि ये चारों अनन्त जीवों को प्रसन्नता देते हैं यहाँ पर जिस प्रकार से ब्रह्म विहार की चर्चा की गई है यह नैतिक मूल्यों की चरम पराकाष्ठा को दर्शाता है।
बौद्ध दर्शन में वर्णित ब्रह्मविहार की तुलना अन्य धर्मों के शील से किया जा सकता है। जैसे हिन्दू धर्म में वर्णित पंचशील या जैन दर्शन में वर्णित पंचमहाव्रत तथा गीता में वर्णित लोक संग्रह आदि इसी प्रकार का उपदेश देता है। योग दर्शन में अष्टांग योग के अन्तर्गत यम, नियम आदि इसी तरह है। बौद्ध धर्म में नैतिक पक्ष पर विशेष बल दिया गया है। इसलिए जनकल्याण या लोक संग्रह को ध्यान में रखते हुए इस प्रकार का उपदेश दिया गया है। लिखता है–

---

* सहायक प्राध्यापक (गेस्ट फेकल्टी) दर्शनशास्त्र विभाग, एम.जे.के. कॉलेज, बेतिया (I.C.P.R., J.R.F.)

करणीयमत्व कुमलेन यतं सन्तं पदं अभिसमेच्च।
सक्को उचू च सूज च सुवचों चस्स भृदु अनतिमानी।

पुनः[4]

सतुन्स्सको न सुमरो च आप्पकिच्चो च सल्लहुकवृत्ति।
सन्तिन्द्रियो च निपको च अप्पगएभो कुलेसु अननुगिद्दो।।

बौद्ध धर्म कहता है कि जो आदमी शांत पद चाहता है, जो कल्याण करने में कुशल है, उसे चाहिए कि वह योग्य और परम सरल बने। उसकी बातें सुन्दर मीठी और नम्रता से भरी हो। उसे संतोष होना चाहिए। उसका पोषण सहज होना चाहिए। उसका जीवन सादा हो। उसकी इन्द्रियां शांत हो। किसी कुल में उसकी आसक्ति नहीं होनी चाहिए।

न च खुद समाचरे किंचियेन विञ्चु परे उपदेयुं।
सुखिनो वो खेमिनो होन्तु सत्वे सत्ता भवन्तु सुखितता।।[5]

वह ऐसा छोटे से छोटे से काम भी न करे, जिसके लिए दूसरे जानकार लोग उसे दोष दें। उसके मन में ऐसी भावना होनी चाहिए कि सब प्राणी सुखी हो, सबका कल्याण हो, सभी अच्छी तरह रहे। आगे कहा गया है कि जितने भी प्राणी हैं, फिर वे जंगल हो या स्थावर बड़े हो या छोटे, बहुत सूक्ष्म हो या स्थूल दिखाई पड़ने वाला हो कोई किसी को कष्ट नहीं दे, किसी का अपमान नहीं करें। वैर या विरोध से एक–दूसरे के दुःख की इच्छा न करें।

माता यथा नियं पुत्त आयुमा एक पुत्त मनुरक्खे।
एवऽपि सत्वभुतेसु मानस भावये अपरिमाणां।।[6]

अर्थात् माता जैसे अपनी जान की परवाह न कर अपने इकलौते बेटे की रक्षा करती है, उसी तरह मनुष्य सभी प्राणियों के प्रति असीम प्रेमभाव बढ़ाए। आगे कहते हैं कि बिना वाधा के बिना वैर या शत्रुता के मनुष्य ऊपर नीचे, इधर–उधर सारे संसार के प्रति असीम प्रेम बढ़ाए। किसी भी स्थिति में मनुष्य को सत्यवादी होना चाहिए। इसी का नाम ब्रह्म विहार है। ऐसा मनुष्य किसी मिथ्या दृष्टि में नहीं पड़ता। शीलवान व शुद्ध दर्शनवाला होकर वह काम, तृष्णा का नाश कर डालता है। उसका पुनर्जन्म नहीं होता। अर्थात् बौद्ध धर्म में ब्रह्मविहार की धारणा सर्वकल्याण की बात करता है। इसी तरह की अवधारणा यजुर्वेद में भी पृथ्वी, आकाश एवं पाताल में स्थित सभी प्राणियों के सुख शांति की बात कही गयी है।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भ्रदाणि पश्यन्तु मा कचिद दुःख भागवेत।।[7]

अर्थात् सभी प्रसन्न रहे, सभी स्वस्थ रहें, सबका भला हो, किसी को कोई दुःख न हों।

इस प्रकार बौद्ध नीतिमीमांसा में ब्रह्म विहार अपने आप में अद्भूत है जिसमें मानव में इस प्रकार के सद्गुणों के विकास की बात कही गयी है। कुछ ग्रीक पाश्चात्य चिंतक जैसे सुकरात, प्लेटो, अरस्तू आदि के दर्शनों में भी इसी तरह के नैतिक सद्गुणों की बात कहीं गयी है। मनुष्य एक अद्भुत प्राणी है उसके स्वभाव में अच्छे–बुरे, शुभ और अशुभ दोनों का ही सम्मिश्रण है। उसमें संत की सात्विक निर्मलता भी है और साथ ही दानव की दूषित प्रवृत्ति भी। कब, कैसे, कौन सी प्रवृति उभरकर उसपर हावी हो जाय यह कहा नहीं जा सकता। इन दोनों विरोधी शक्तियों के कारण मानव एक ओर सद्गुणों का आगार हो सकता है तो दूसरी ओर अशुभ, अकुशल और दुष्ट कार्यों को सम्पन्न करने में भी समर्थ है जो व्यक्ति संत बनकर जन–जन में हितकारी कार्य करके आर्य बनना चाहते हैं वे प्रयत्नपूर्वक इन आसुरी प्रवृत्तियों से बचकर दैवी गुणों को धारणा कर लेते हैं। तथा उसमें नैतिक मूल्यों का विकास होता है। इस तरह से देखा जाय तो बौद्ध नीतिमीमांसा में नैतिक मूल्यों के विकास में ब्रह्मविहार की अवधारणा अद्भुत है।

बौद्ध के नैतिक विचारों में पंचशील का भी महत्वपूर्ण स्थान है। शील का अर्थ है सत्कर्मों को करना और असत्कर्मो से बचना। पंचशील के अन्तर्गत सत्य, अहिंसा, अस्तेस, ब्रह्मचर्य एवं मदिरापान का त्याग आता है।

पंचशील का सम्बन्ध सत्कर्मों से है। कर्मसिद्धांत को प्रमुखता प्रदान किया गया है। भगवान बुद्ध ने जीवन जगत व्यवस्था नियम के रूप में कर्म सिद्धांत को स्वीकार किया है। सुत्तनिपात में भगवान ने स्वयं कहा है कि किसी का कर्म नष्ट नहीं होता, कर्त्ता उसे प्राप्त करता ही है। पाप कर्म करने पर परलोक में वह अपने को दुःख में पड़ा पाता है। संसार कर्म से चलता है प्रजा कर्म से चलती है। रथ का चक्र जिस प्रकार आणी बंधा रहता है उसी प्रकार प्राणी कर्म से बंधा रहता है।[8] आचार्य नरेन्द्र देव के शब्दों में जीव लोक और मानव लोक की विचित्रता ईश्वर कृत नहीं है। कोई ईश्वर नहीं है जिसने बुद्धिपूर्वक इसकी रचना की हो। लोक वैचित्र्य कर्मज है यह सत्वों के कर्म से उत्पन्न होता है।

महात्मा बुद्ध ने कहा है कि मैं चेतनापूर्वक किये हुए संचित कर्मो के फल का प्रतिवेदन किये बिना उनके और उनके दुःख का अन्त नहीं बताता हूँ। प्रत्येक के लिए दुःख का अन्त बोधपूर्वक किये गये कर्मों के क्षीण होने पर भी संभव है। जीवों का अपना कर्म ही उनकी विरासत है, कर्म उनका प्रसव है, कर्म उनका बन्धु है और कर्म ही उनका सहारा है। भगवान स्पष्टतः कहते हैं–चेतना हे भिक्खवे कम्मं वदामि।

भिक्षुओं! चेतना ही कर्म है। चेतना के द्वारा ही जीव कर्म करता है, काया से वाणी से या मन से।[9] चेतना से चित्त तथा कर्म में पारस्परिक अभिन्नता दर्शाते हुए मज्झिम निकाय में माणवक के प्रश्न का उत्तर देते हुए बुद्ध कहते हैं 'हे माणवक! प्राणी कर्म स्वयं कर्म दायाद, कर्मयोनि कर्म बन्धु, कर्म प्रतिशरण है। कर्म ही प्राणियों को इस हीनता और उद्यमता में विभक्त करता है। बौद्ध दर्शन में कर्म को चैत्तसिक प्रत्यय के रूप में स्वीकार किया गया है तथा कर्म के कारण ही आचार–विचार एवं स्वरूप की यह विचित्रता है। भगवान बुद्ध कर्म का सार मानसिक संकल्प या कर्म करने का मानसिक निर्णय मानते थे जिसे चेतना कहा जाता था। अभिधर्मकोश में भी कर्म की परिभाषा चेतना और चेतयित्वा के पदों में दी गयी है। मनुष्य की पहचान कर्म से होता है जन्म से नहीं, कर्म से ही कोई उच्च या नीच होता है।

मन सभी वृत्तियों का अगुआ है। अतः हम जो भी कर्म करते हैं उनका अग्रणी मन ही है।[10] मन के द्वारा ही कुशल–अकुशल कर्म किये जाते हैं तथा ये कर्म ही हमें पुनर्भव में डालते हैं। अंगुत्तर निकाय में कहा गया है कि कर्म खेत है और ज्ञान बीज है। तृष्णा नमी है। कर्म के न होने पर विज्ञान रूपी बीज का अंकुरण संभव नहीं है। कर्म को ही पुराने तथा नये कर्म की कड़ी मानी गयी है। जो जैसा कर्म करता है वैसा ही फल पाता है। उक्त तथ्य का विश्लेषात्मक एवं सर्वांगीण अध्ययन बुद्धोपदिष्ट प्रतीत्यसमुत्पाद में प्राप्त होता है। अभिधर्म दर्शनानुसार कर्म को धम्म एवं चित्त का पयार्य स्वीकारा गया है। हेतु या मूल लोग, मोह आदि के आधार पर कर्म को ही कुशल–अकुशल में विभक्त कर कुशल–अकुशल धर्म या चित्त कहा गया है। इस प्रकार कर्म, धर्म और चित्त में तीनों ही समानार्थी है, कर्मवाद के साथ प्रतीत्यसमुत्पाद का घनिष्ठ सम्बन्ध है। महात्मा बुद्ध ने मध्यम मार्ग, शील, समाधि, प्रज्ञा का उपेदश देकर मानव पर बहुत बड़ा उपकार किया है।

इस प्रकार देखा जाय तो बौद्ध दर्शन में वर्णित नैतिक मूल्य का केन्द्र कर्म सिद्धांत ही है। खास बात यह है कि जितने भी धर्म हैं सभी में ईश्वर आत्मा आदि को लेकर मतान्तर है पर कर्म सिद्धांत को लेकर किसी प्रकार का मतभेद नहीं है। चाहे हिन्दू धर्म, यहूदी धर्म, ईसाई धर्म, इस्लाम धर्म, जैन धर्म अथवा बौद्ध धर्म हो। सभी इस बात में एकमत है कि जैसा कर्म करते हैं वैसा फल की प्राप्ति होती है। कर्म के अनुसार फल भोगना पड़ता है। अच्छा या बुरा। बौद्ध धर्म में वर्णित नैतिकमूल्य का आधार भी यही है। इसमें चतुर्थ आर्यसत्य के द्वारा प्रथम आर्यसत्य में दुःख के अस्तित्व को स्वीकारा गया है। द्वितीय आर्य सत्य में दुःख के कारण को बताया गया है उसे प्रतीप्य समुतपाद भी कहा गया है तथा कारण कार्य सिद्धांत पर कार्य करता है। तृतीय आर्य सत्य में निर्वाण तथा चतुर्थ आर्य सत्य में

निर्वाण प्राप्ति के अष्टांगमार्ग का वर्णन पाते हैं। अष्टांग मार्ग का अनुसरण ही नैतिकमूल्य का केन्द्र है तथा वर्तमान में काफी प्रासंगिक हैं।

सन्दर्भ सूची :

1. राकेश राणा, स्वस्थ समाज के आधार स्तम्भ नैतिक मूल्य, मेन्टल हेल्थ केयर ई–पत्रिका 27.9.20
2. राधेश्याम द्विवेदी, नैतिक मूल्य मानवता की पहचान, ई–पत्रिका 2020
3. बसन्तु कुमार लाल, समकालीन भारतीय दर्शन, मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन दिल्ली 1993, पृ. –195
4. डॉ. भिक्षु धर्मरक्षित– धम्मपद (हिन्दी अनुवाद) 413
5. वही, 2/9
6. वही, 2/11
7. वृहदाराण्यक उपनिषद्, 1.4.14
8. सुत्तनिपात वासेड़सुत्त, 60.61
9. अंगुत्तर निकाय 1/240
10. धम्मपद यमक पग्ग 1/1

***

कालिदास-सौन्दर्य-भावना

डॉ. वन्दना पाण्डेय *

कालिदास ने प्रकृति की रमणीयताओं का जितना सरस एवं ललित वर्णन किया है, उससे भी अधिक हृदयावर्जक चित्रण उन्होंने मानव–सौन्दर्य का किया है। वस्तुतः कालिदास रूप की माया से सर्वात्मना अभिभूत हैं और नारी सौन्दर्य का संस्पर्श मानों उनकी हृदय–विपंची के सम्पूर्ण तारों को एक साथ झंकृत कर देता है। उनकी दृष्टि में सौन्दर्य देवी विभूति है जो, क्या मानव–रूप और क्या प्रकृति रूप दोनों में समान भाव से भास्वर हो रही है। नारी देह में जो सौन्दर्य प्रकाश करता है, वही प्रकृति के विभिन्न पदार्थों में भी प्रतिबिंबित है और जिस प्रकाश से प्रकृति की नाना–रूपिणी छवियाँ विश्व में अपनी सम्मोहनी बिखेरे हुये हैं, वही प्रकरण नारी–रूप में फूटकर चराचर सृष्टि को बन्दी बना देता है। कालिदास सौन्दर्य के इस रहस्य से भली–भाँति परिचित हैं। यही कारण है कि नारी रूप के वर्णन में उनकी दृष्टि प्रकृति जगत् का अनुसंधान करने लगती है और प्रकृति रूपों के चित्रण में वह नारी रूप से अनुप्राणित हो जाती है। 'कुमारसम्भव' में नवतरूणी पार्वती का रूप कवि ने प्रकृति की सहायता से क्यों कर सँवारा है, इसे निम्नोद्धृत पद्य में देखिये–

आवर्जिता किंचिदिव–लतेव (3/54)[1]

'मेघदूत' वी यक्षप्रिया का सौन्दर्य प्रकृति भिन्न–भिन्न रूपों अथवा पदार्थों की विशिष्टताओं को संकलित कर निर्मित किया गया है। इसी प्रकार, प्रकृति की वस्तुओं एवं दृश्यों का अंकन करते समय, कालिदास मानव–सुषमा के अंगों एवं तत्वों को उपमान–रूप में नियोजित करना नहीं भूलते। वसन्त की शोभा ने अपना श्रृंगार कैसे किया है, इसका चित्रण निम्नोद्धृत श्लोक में देखिये– (कु0 1/32)

कालिदास ने यह निदर्शित किया है कि धर्म में जो सौन्दर्य है, वही ध्रुव है और प्रेम का जो शान्त तथा संयत रूप है, वही श्रेष्ठ है, बन्धन में ही यथार्थ शोभा है और उच्छृंखला में सौन्दर्य की विकृति।

कालिदास के काव्यों में प्रकृति की नानारूपिणी छवियों के नितान्त मनोरम एवं प्रभावशाली चित्रण उपलब्ध होते हैं। यह सचमुच हमारे कवि के समृद्ध व्यक्तित्व का प्रकाशक है कि श्रृंगार की कमनीयता तथा उद्देश्य की शालीनता का जो मणिकांमचन संयोग उसकी कृतियों में प्रतिफलित हुआ है, उसमें प्रकृति नटी के अभिराम नृत्यों का सन्निवेश कम आकर्षक नहीं हैं कवि प्रकृति में रम गया है, घुल–मिल गया है और जिस प्रकार प्रकृति की रमणीयताएँ चिर–पुरातन होने पर भी चिर–नवीन रहती हैं, उसी प्रकार कवि की कूँची प्रकृति–चित्रों को सजाने में जिस कौशल का परिचय देती है, उसमें उसकी परिचित कला का संस्पर्श रहते हुये भी; चिर–नव्यता, चिर–उल्लास एवं चिर–लालित्य के तत्त्व स्पंदित होते रहते हैं। राइडर की यह टिप्पणी दृष्टव्य है–''कालिदास के चरित्र में वह विस्मयजनक सन्तुलन है जिसके कारण वे वन और महल दोनों का वर्णन समान सजीवता के साथ करते हैं। प्राकृतिक सौन्दर्य में शेक्सपियर की आश्चर्योत्पादक सूझ स्वीकार की गयी है, लेकिन, वह भी मुख्यतः मानव हृदय का कवि है और न यही कहा जा सकता है कि वे मुख्यतः प्राकृतिक सौन्दर्य के कवि हैं। ये दोनों गुण उनमें रासायनिक ढंग से मिले हुये हैं– ऐसा कहा जा सकता है। जो तथ्य मैं स्पष्ट करना चाहती हूँ वह 'मेघदूत' में सुन्दरतापूर्वक प्रतिफलित है। पूर्वमेघ में बाह्य प्रकृति का वर्णन है, फिर भी उसमें मानवीय भावनाएँ उलझी हुयी हैं। 'उत्तरमेघ' मानव–हृदय का चित्र है फिर भी वह चित्र प्राकृतिक सौन्दर्य के 'फ्रेम' में मढ़ा हुआ है। यह इतनी खूबी से किया गया है कि यह कहना कठिन है कि इन दोनों में कौन भाग श्रेष्ठतर है।

---

* एसोसिएट प्रोफेसर (संस्कृत), सर्वोदय पी०जी० कॉलेज, घोसी, मऊ

कालिदास के अनुसार–''संसार मनुष्य के लिये नहीं बना है, मनुष्य अपनी पूरी ऊँचाई तक तभी पहुँचता है जब वह मानवेतर जीवन का मूल्य तथा गौरव समझ जाता है।''

कालिदास ने प्रकृति–विषयक अपनी दृष्टि भंगिमा को हिन्दू जाति की चिराचरित प्रतिभा से प्राप्त किया था। भारतीय मानव के लिये मानव–जीवन विभिन्न जीवनों की श्रृंखला में तथा सृष्टि की समग्रता में एक कड़ी मात्र है।

प्रकृति के प्रति मनुष्य का प्रेम चित्रित करते–करते कवि की भावना मनुष्य के प्रति प्रकृति का प्रेम चित्रित करने लग जाती है और फिर इन दोनों से हटकर परमेश्वर के प्रति इन दोनों के अनुराग का वर्णन करने लग जाती है, उसके मूल में हमारी जातीय मनोवृत्ति की ही प्रेरणा विद्यमान समझी जानी चाहिये।

प्रतिभा के विकास के साथ–साथ कालिदास के प्रकृति–वर्णन में भी विकास हुआ है। ऋतुसंहार युवक कवि की रचना है जो प्रकृति को प्यार करता है। कुमारसंभव में प्रकृतिजीवन तथा देवी जीवन पारस्परिक सम्बन्ध में अनुस्यूत हो गये हैं। काव्य की कथावस्तु सृष्टि के भव्यतम् उदात्ततम् स्थल में उपन्यस्त हुयी है। विश्व का कोई काव्य इतनी ऊँचाई तक जाने का साहस नहीं कर सका है। लेकिन मेघदूत में कवि ने प्रकृति एवं मनुष्य को एक नवीन एवं मौलिक ढंग से परस्पर जोड़ दिया है। मानव–जीवन तथा प्रकृति जीवन को एक आवश्यकता और एक आनन्द के रूप में चित्रित किया गया है। 'पूर्वमेघ' में प्रणय कातर प्रेमी सृष्टि के सौन्दर्य पर रूकता थिरकता है और अपने घायल हृदय के लिये एकमलहम प्राप्त करता हैं 'उत्तरमेघ' में जो प्रेम के आस्वादित आनन्द की स्मृतियों तथा प्रत्याशित संयोग की सुखमयी सम्भावनाओं के द्रावक चित्रों से आपूर्ण है, हमें एक ऐसी शान्त एवं आनन्दमयी पृष्ठभूमि मिल जाती है जिससे प्रणयी की उत्कण्ठाओं की शान्त एवं आनन्दमयी फलोपलब्धि का निश्चय सा हो जाता है। रघुवंश तक पहुँचने पर, कवि की कला का स्वरूप अधिक व्यापक एवं प्रकृष्ट हो गया है। (प्रथम सर्ग में ही प्रकृति के जीवन को व्यक्तिगत मानवजीवन के साथ ही नहीं, अपितु राष्ट्र अथवा जाति के बृहत्तर जीवन के साथ सम्बन्धित दिखाया गया है। कवि ने यह संकेत किया कि नगर और तपोवन के गठबन्धन से, लौकिक और पारलौकिक आदर्शों के परिणय से अत्यन्त शुभ एवं श्रेयस्कर परिणाम उत्पन्न हो सकते हैं। काव्य का पर्यवसान नागरिकता, मदिरा तथा विषपयोग में दिखाकर, उसने यह व्यंजित किया है कि मनुष्य का जीवन, प्रकृति के जीवन एवं ईश्वरीय जीवन से पृथक् होने पर निश्चय ही व्यक्तिगत निर्वार्यता, सामाजिक विनाश तथा राजनीतिक विपत्ति में अधिग्रस्त हो जाता है। शाकुंतल में मानव जीवन का नितान्त सान्द्र एवं उत्कट संगीतमुखरित हुआ है, तो भी वह प्रकृति जीवन में एकदम घुला–मिला है।

समग्र प्रकृति की अपेक्षा कालिदास प्रकृति के रूपों में अधिक अनुरक्त हैं और प्रकृति के रूपों में भी सौन्दर्य के व्यापक प्रभाओं (Mass Effects) का नहीं, अपितु अलग–अलग सुन्दर वस्तुओं का चित्रण करते हैं। वहाँ भी उन्होंने मानवीय भावनाओं एवं व्यापारों का चित्रण किया है तथा इन वस्तुओं को मानवीय रागों से जोड़ दिया है। समुद्र के शांत वा विक्षुब्ध रूपों के, विध्वंसकारी भयंकर झंझाओं के, सूर्योदय तथा सूर्यास्त के भव्य दृश्यों के, विशाल वनराजि को अशान्त बनाने वाली नीरवता के अथवा गगनचुम्बी निर्वाक् पर्वतों के उदात्त चित्र कालिदास की कृतियों में उपलब्ध नहीं होते।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा है कि 'अभिज्ञानशाकुन्तल' में दुष्यंत, अनुसूया, प्रियंवदा इत्यादि के साथ तपोवन की प्रकृति भी एक विशेष पात्र है। 'मेघदूत' में तो 'धूमज्योतिः सलिलमरुतां सन्निपातः' मेघ स्वयमेव नायक की गरिमा से भंडित हो गया है।''

अतः यह स्पष्ट है कि कालिदास के काव्य में प्रकृति और मनुष्य, समशीलता एवं समप्राणता के 'सीमेन्ट' से जुड़कर एकात्म बन गये हैं। प्रकृति और मानव का एतादृश ऐकात्म्य साहित्य में प्राप्त नहीं है।

राबिन्सन का कथन है कि ''उसकी आँखें पारदर्शी 'प्रिज्म' के समान जीवन के सभी गहरे चमकीले रंगों को पहचान लेती थी और उसका मस्तिष्क कलाकार की रंग मिलाने वाली पटरी के समान उन्हें ग्रहण कर रत्नोपम सौन्दर्य के चित्रणों में अनूदित कर देता था–

''His eyes singled out like a prison all the rich glowing hints of life's colours, and his brain, receiving them, as if had been a balette, translated them into descriptions of jewel like beauty.'' (R.E. Robinson)

कालिदास ने प्रकृतिजीवन के विशिष्ट रूपों का जो ललित एवं उल्लसित चित्रण किया है, उसका विवेचन कर लेना हमारे लिये स्पृहणीय प्रतीत होता है।

प्रस्तुत है राइडर की उक्ति है– ''कम ही ऐसे व्यक्ति ने पृथ्वी पर चरणक्षेप किया होगा जिसने जीवित प्रकृति के रूपों का इतना सूक्ष्म निरीक्षण किया हो जितना कालिदास। यद्यपि उनका निरीक्षण कवि का था, वैज्ञानिक का नहीं।'' कालिदास के काव्य का पूर्ण आस्वाद लेने के लिये पाठक को एक ऐसे वनों एवं पर्वतों में अवश्य कुछ सप्ताह व्यतीत करना चाहिये जहाँ मानव की पहुँच नहीं हुयी हो तथा अपने जीवन का रस लूटते हैं। नागरी परिवेशों में लौटने पर वह अनुभूति खंडित हो जाती है, तथापि एक रहस्यानुभाव की झांकी के रूप में, एक श्रेष्ठतर सत्य की सहजानुभूति के रूप में उसकी स्मृति बनी रहती है। कालिदास का प्रकृति ज्ञान केवल सहानुभूतिमूलक ही नहीं है, अपितु वह सूक्ष्मतया सटीक है। हिमालय की हिमराशि तथा पवन संगीत और पवित्र गंगा की शक्तिशाली धारा ही केवल उनके अधिकार की वस्तुएँ नहीं है। छोटी–छोटी सरिताएँ, विटप तथा छोटे से छोटा फूल भी उनकी सृष्टिव्यापिनी दृष्टि से बाहर नहीं जा सके हैं। कालिदास और प्रसिद्ध विकासवादी वैज्ञानिक डार्विन में मुलाकात का अनुमान करना आकर्षक होगा। उन्होंने एक–दूसरे को भलीभांति समझ लिया होता, क्योंकि उन दोनों में समान समृद्ध अन्वीक्षण के साथ समान समृद्ध कल्पना वर्तमान थी। पुनर्जन्म में विश्वास करने वाले हिन्दू से लेकर परमात्मा तक में व्याप्त जीवन की एकता का अनुभव करना निस्सन्देह अधिक आसान है, तथापि हिन्दुओं में भी कालिदास के समान अन्य किसी ने इस भावना को इतनी विश्वासोत्पादक सुन्दरता के साथ व्यक्त नहीं किया है।''

कालिदास भारतीय जीवन के सच्चे प्रवक्ता एवं वैतालिक हैं। भारतवर्ष की आत्मा उनमें जीती है और साँस लेती है–वह भारतवर्ष जिसकी अखण्ड परम्परा में हम जीवित रहे हैं, उनमें सुरक्षित हैं, हमारे सोचने विचारने, रोने हँसने और कर्म–धर्म करने का सम्पूर्ण तरीका प्रायः अद्यापि वही है, जो कालिदास ने अपनी कृतियों में प्रतिष्ठित किया है। उनकी दुर्बलताएँ भारतीय जीवन की दुर्बलताएँ और उनकी शक्तियाँ उसकी शक्तियाँ हैं। भारत की धरती से, उसकी प्रकृति से उन्हें प्रगाढ़ अनुराग है और इसी कारण अपनी ललित कल्पना के रंगों से रंजित कर, उन्होंने उसके अत्यंत प्राणवान् चित्र अंकित किये हैं। इस दृष्टि से; कालिदास भारतवर्ष को 'राष्ट्रीय कवि' कहना पूर्णतया उचित एवं न्याय्य समझा जाएगा।

'मेघदूत' में कालिदास ने काव्य की एक सर्वथा अभिनव सारणी का उद्घाटन किया है और भाऊ दाजी तथा हिलब्रांट जैसे विद्वानों के मतानुसार अपनी ही भावनाओं एवं व्यथाओं को अभिव्यक्त किया है। अर्थात् कालिदास इस काव्य में सर्वथा नवीन और वैयक्तिक हैं। लेकिन, मेघ को दूत बनाकर उन्होंने सबसे अधिक 'भारतीय' होने का प्रमाण प्रस्तुत किया है। भारतवर्ष के जन–जीवन में मेघ को क्या महत्व प्राप्त है, यह वे ही समझ सकते हैं जो ग्रामों में निवास करते हैं। मेघ भारतीय ग्रामीणों के लिये मित्र और देवता, दोनों है क्योंकि उसी के ऊपर उनकी सम्पन्नता अथवा विपन्नता निर्भर करती है। भारतीयों के मनोजगत् में बादल का जो विशिष्ट स्थान है उसके संकेत वैदिक ऋचाओं तक में भी मिलते हैं। सामान्य के साथ–साथ जलदागम ने भारतवर्ष में शिक्षित बुद्धिजीवियों, अलंकारशास्त्रियों को भी प्रभावित किया है जिन्होंने इस काव्य रूढ़ि की स्थापना की है कि मेघ के दर्शन से प्रेम के भाव हृदय को उद्वेलित् करने लग जाते हैं।

कालिदास मेघ की इस परम्परागत लोकप्रियता से पूर्णतया अवगत थे और इसीलिये आषाढ़ के दिन पहाड़ी की चोटी से लिपटे हुये बादल को देखकर 'मेघदूत' के कान्ता–विश्लेषित यक्ष को अपनी प्रिया की स्मृतियाँ व्यथित करने लगी और भाव विह्वल होकर गा उठा–

मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्तिचेतः।
कण्ठाश्लेशप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे।।[2]

प्रस्तुत काव्य में अत्यन्त कलात्मक निपुणता के साथ मेघ के सौन्दर्य, उपकारित्व तथा जनमन–ह्लादकारिता का इतना पुष्कल चित्रण हुआ है कि यह मानने के लिये पाठक प्रवृत्त हो जाता है कि काव्य का प्रकृत नायक मेघ ही है और यक्ष–यक्षिणी केवल अपर कोटि के व्यक्ति है। इस प्रकार, कालिदास ने मेघवर्णन के माध्यम से लोकमानस के साथ अपनी समरसता उत्पन्न की है।

कालिदास ने भारतभूमि की प्रकृति एवं सौन्दर्य का नितान्त आकर्षक और तन्मयतापूर्ण वर्णन किया है। इससे भी वे सच्चे अर्थों में भारतीय कवि सिद्ध होते हें जिसे अपनी जन्मभूमि के कोने–कोने का घनिष्ठ ज्ञान है और जो उसे बड़ी गहराई से प्यार करता है। 'मेघदूत' में ऐसा जान पड़ता है, उन्होंने जान–बूझकर मेघ से लम्बे मार्ग की यात्रा कराई है, जिससे रागगिरि से लेकर कैलाश–पर्वत भारतवर्ष की नदियों, पर्वतों, नगरों, तीर्थों इत्यादि के सुन्दर चित्र अंकित किये जा सकें। हिलब्रांट का यह कथन सर्वथा उचित है–''पर्वतों और तीर्थों से लिपटी हुयी पुराणगाथाओं को कवि जानता है तथा भारतीय संसार का वर्णाढ्य चित्र सुकुमार रेखाओं से खींचता है। सुतरां, वह सचमुच भारतभूमि का कवि है।''

तथापि भारतीय प्रकृति के भारतवर्ष के रंगीन एवं वैचित्र्यपूर्ण ग्राम्यांचलों तथा सुमनों की संपदा से समन्वित अरण्यों और उसकी ऋतुओं की परिवर्तमान छवियों के अभिराम चित्र कालिदास को भारतवर्ष का राष्ट्रीय कवि बनाने में सर्वाधिक समृद्ध हैं। केवल कालिदास ने ही ऐसे सजीव चित्र अंकित किये हैं जो भारतीय प्रकृति की रमणीयताओं को अत्यंत आकर्षक ढंग से रूपायित करते हैं। 'मेघदूत' का वर्षा–वर्णन अपनी सटीकता एवं लालित्य में सर्वथा अनुपमेय है।

प्रकृति–चित्रण के प्रसंग में कालिदास की कविता की एक अन्य विशिष्टता हैं और वह हमारा ध्यान खीचंती है। वह है प्रकृति एवं मनुष्य का जटिल ग्रन्थिबन्धन उनका एवं दूसरे के साथ घुल–मिल जाना। कालिदास के सम्पूर्ण काव्य में यह प्रकृति मानव मिलन इस ढंग से सम्पन्न हुआ है। जो भारतीय मानस की अपनी विशेषता है। 'मेघदूत' का पूर्वार्द्ध बाह्य प्रकृति का चित्रण है, किन्तु वह मानवीय भावों से ओतप्रोत है, उसका उत्तरार्द्ध मानव हृदय का चित्र है, किन्तु वह चित्र प्राकृतिक सौन्दर्य के चौखटे में मढ़ा है। कालिदास के लिये प्रकृति मानवीय भावों से अपूर्ण है और मनुष्य स्वयं प्रकृति का एक अंग है। 'मेघदूत' में 'कामचारी' पयेाद और उसकी छवियों एवं कीर्तियों के उपभोग के हेतु लालायित मनुष्य, दोनों अभिभाव से एक तन, एक मन, एक भाव, एक रस बन गये हैं।

यक्ष पहले तो मेघ की अचेतन 'घूमज्योतिः, सलिलमरूता सन्निपात समझता है और उसे प्रवृत्ति वाहक बनाने के लिये यह सफाई देता है–कार्मार्ताहि प्रकृतिकृपणाश्चेतना चेतनेषु'[3] ''किन्तु शीघ्र ही उसकी यह मनोमुद्रा बदल जाती हे ओर मेघ एक सजीव सत्ता बन जाता है जो मानवीय भावों से भरित है और साथ ही, प्रकृति वे सम्पूर्ण वेगशील गुणों से समन्वित भी है। चित्रकूट पर्वत तथा मेघ में मधुर मैत्री भाव स्थापित हो जाता है, यहाँ तक कि प्रतिवर्ष जो उनका मिलन और वियोग होता है, वह अत्यंत करूणाप्लुत बन जाताहै और वियोग की घड़ियों में तो मेघ वेदना के आंसू बहाने लगता है–''स्नेहव्यक्तिश्चिरविरहजं मुंचतो वाष्पमुष्णम्।'' फिर तो यात्रा प्रारम्भ करने पर वह मधुर भावों से परिपूर्ण मानव बन गया है और मार्गश्रम मिटाने के लिये नदी, पर्वत इत्यादि सभी वस्तुएँ उसके उपभोग की सामग्री बन गई हैं। उज्जयिनी के महाकाल मन्दिर में पहुँचने पर मेघ मानो आस्तिक हिन्दू हो जाता है। हिमालय में स्थित 'शिवपाद' की प्रदक्षिणा कर चुकने पर जब शंकर गौरी को हाथ से पकड़े हुये चल रहे हैं, वह अपने को सीढ़ियों की श्रृंखला के समान सजा लेगा जिसके सहारे गौरी लीलागिरि पर पहुँच जायेगी। इन निर्देशनों में यक्ष एक प्रकार से मेघ को प्रलोभन अथवा आश्वासन दे रहा है कि यदि तुम मेरी पत्नी के पास मेरा सन्देश पहुँचा दोगे, तो तुम्हें पुण्य भी मिलेगा। अलका में पहुँचने पर जब वह यक्षप्रिया को विरह–विह्वल दशा में देखेगा, तब वह अपने आँसुओं के अजस्र प्रवाह को रोकने में असमर्थ सिद्ध हो जायेगा–

त्वामप्यस्रं नवजलमयं मोचयिष्यत्यवश्यं
प्रायः सर्वो भवति करूणावृत्तिरार्द्रान्तरात्मा।। (उ0मे0)[4]

प्रकृति और मनुष्य के इस तादात्म्य के अन्य चित्रण 'रघुवंश' के 'द्वितीय सर्ग', 'विक्रमोवर्शीय' के चतुर्थ तथा 'शाकुन्तल' के भी चतुर्थ अंक में करने लग जाते हैं कि ''यह कहना कि कालिदास नदियों, वृक्षों तथा पर्वतों का मानवीकरण करते हैं; सत्य नहीं है। उनके निकट ये एक सचेतन व्यक्तित्व रखते हैं जो उतना ही सच्चा एवं उतना ही निश्चित है जितना पशुओं, मनुष्यों अथवा देवताओं का।''

प्रकृति और मानव के तादात्म्य की यह अनुभूति वैदिक ऋषियों द्वारा अर्जित थी। प्रकृति के सम्पूर्ण पदार्थों को उन्होंने मानव–जीवन अथवा अधिक सही शब्दों में भगवदीय जीवन से अनुप्राणित माना था जिस कारण उनकी पूजा–अर्चना भी प्रारम्भ हो गई थी। उषा–विषयक मन्त्रों में पुरातन ऋषियों को प्रस्तुत दृष्टिभंगी स्पष्ट लक्षित हो जाती है। 'पुनर्जन्म' के सिद्धान्त की निरूपणा से इस मान्यता को और भी प्रोत्साहन मिला क्योंकि कर्मानुसार 84 लाख योनियों में जन्म ग्रहण आवश्यक था। पत्थर की शिला अहिल्या जैसी सुन्दर तरूणी बन सकती थी और उर्वशी जैसी सुन्दरी लता बन सकती थी। सम्पूर्ण सृष्टि में एक ही आत्मतत्त्व का स्पंदन भारतीय तत्त्वदर्शन की महत्त्वमय विशेषता थी, और कालिदास ने 'कान्तासम्मित' शैली में इस पुराने विश्वास को पुनः प्रतिष्ठित किया है। इस दृष्टि से भी, वे भारतवर्ष के राष्ट्रीय कवि हैं।

व्यास और वाल्मीकि के समान ही कालिदास भारतीय संस्कृति के प्रवक्ता प्रतिनिधि है, यह बात एक अन्य दृष्टि से भी प्रमाणित होती है। यद्यपि उन्हें एक आनन्दवादी सभ्यता का देवदूत समझा गया है जो बहुत कुछ सही है, तथापि उनकी काव्य–साधना के पीछे एक उद्देश्य स्पष्ट रूप से वर्तमान रहा है और वह है मानव की मूल्य योजना में प्रेम को कर्त्तव्य से नियंत्रित एवं मर्यादित रखना तथा जीवन की सार्थकता के लिये तपस्या का अवलम्बन करना। कालिदास ने पार्वती की तपस्साधना का उतना ही तन्मयता से वर्णन किया है जितनी तन्मयता से वसन्त श्री के आकस्मिक प्रस्फुटन का। उनके सभी प्रमुख पात्रों ने किसी न किसी रूप में तपस्या की है और तपस्या के बल पर ही जीवन के अवरोधों तथा अवसादों पर अपूर्व विजय–लाभ किया है। जब मनुष्य के चिर–संचित मनोरथ भग्न होते सिद्ध होते हें, तब एकमात्र तपस्या ही साधन रह जाती है। उनकी प्राप्ति का और कोई भी महान् संकल्प कठोर तपस्या के अभाव में क्योंकर सफल हो सकता है? भग्न मनोरथा पार्वती का यह निश्चय कवि सबके लिये संदेश रूप में निर्देशित करता है–

तथा समक्षं दहता मनोभवं निनाकिना भग्न मनोरथा सती।
निनिन्द रूपं हृदयेन पार्वती प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता।।[5]

तपस्या का यह महत्त्व भारतीय संस्कृति का प्रधान अंग है। सबसे बड़ी बात यह है कि कालिदास ने ऋषियों और मुनियों की तपस्या को लोक–निरपेक्ष नहीं बनाया है। जो भारतवर्ष की वास्तविक जीवन दृष्टि का प्रधान तत्त्व है। आश्रमों ओर तपोवनों के जो चित्र कवि ने अंकित किये हैं उनमें मानवीय रस की कुल्याएँ स्पटतया निनाद करती सुनाई पड़ती हैं। ये ऋषि परम् दयालु हैं, कुसुमों से स्नेह करते हैं, पशुओं का पालन करते हैं, एक प्रकार का पारिवारिक जीवन भी व्यतीत करते हैं। महर्षि वाल्मीकि परित्यक्ता सीता को समझाते–बुझाते हैं तथा यह विश्वास दिलाते हैं कि उनके आश्रम में वे शान्तिपूर्वक जीवन–यापन करेंगी। वस्तुतः रवीन्द्रनाथ ठाकुर का यह कथन सर्वथा उचित है कि–''हमारे साहित्य में आश्रम स्थल के रूप में दैदीप्यमान है जहाँ मनुष्य और अन्य सृष्टि के बीच की खाईं पाट दी गई है।'' अतएव कालिदास द्वारा वर्णित आश्रम प्रकृति की शान्ति एवं आनन्दों से परिपूर्ण, साथ ही निषिद्ध मानवीय रस से ओत–प्रोत, सुरमय आगार है जहाँ पारिवारिक जीवन के विधि–विधानों का उचित आदर होता है। ''भारतीय आश्रम–जीवन के ये सजीव चित्र अंकित करने में जिनमें तपस्या का प्रमुख महत्व है, कालिदास ने अपने उत्तराधिकार की सर्वोत्तम सेवा की है। पूर्णत्व की ओर उन्मुख अपनी यात्रा में भारतवर्ष ने यह एक महान् प्रयोग किया है और यद्यपि वह भिन्न मार्ग का वरण कर सकता है तथा अन्य प्रयोगों को प्रारम्भ कर सकता है, तथापि भारतीय जीवन एवं

संस्कृति के इस पटल के अन्यतम् आकर्षक एवं मुखर चित्रों के लिये वह निरन्तर कालिदास की ओर पीछे फिरकर देखता रहेगा। इस दृष्टि से भी कालिदास भारतवर्ष के राष्ट्रीय कवि हैं।

इस स्थल पर अब यह समझा जा सकता है कि कालिदास ने कहाँ तक राष्ट्रीय चेतना को अभिव्यक्त एवं परिष्कृत करने में सफलता पाई गई है? राष्ट्रीय चेतना के दो अर्थ यहाँ अभिप्रेत हैं–प्रथम राष्ट्र के प्रति अनुराग एवं आस्था की भावना और द्वितीय, हमारी जाति का चिरसंचित एंव चिराचरित मनोमयकोषजिनमें उसकी आस्थायें और आसक्तियाँ समवेतरूपेण छिपी पड़ी हैं। कालिदास ने भारत की धरती एवं प्रकृति के जो ललित–ललाम चित्र अंकित किये हैं, उनके अवलोकन या आस्वादन से हमारे भीतर, निश्चित भाव से, अपने देश एवं राष्ट्र के प्रति अनुराग–भावना उदित होती है। नगाधिराज हिमालय, गंगा, यमुना अत्यादि नदियों, यहाँ की वनस्पतियों तथा पशु–पक्षियों, यहाँ की नाना छविमयी ऋतुओं, यहाँ के तीर्थस्थलों एवं नगरियों, यहाँ की लोककथाओं एवं पौराणिक मान्यताओं, यहाँ की रीति–रस्मों एवं विश्वासों, किं बहुना यहाँ के लोकजीवन के भी प्रति हमारे हृदय में ममत्व का भी स्पन्दन करने लगता है। जनजीवन की विपन्नता के चित्र अवश्य उसके काव्य में लक्षित नहीं होते, किन्तु हमारा लोक–जीवन किन–किन आस्थाओं एवं मान्यताओं का मधुर संबल प्राप्त कर अद्यावधि चल रहा है, उनकी विज्ञप्ति सुन्दर ढंग से इसमें हुई है, और इससे भी हम भारतीय लोकजीवन के प्रति अनुराग–भावना के साथ आकृष्ट होते हैं। प्रकृति की शक्तियों की पूजा आज तक भी हम करते आये है। और मानव एवं प्रकृति में एक ही आत्मतत्व के आकाश की प्रतीति हमें आज तक भी स्पन्दित करती चली है। कालिदास ने अपने प्रकृति वर्णन में मनुष्य और प्रकृति का पूर्ण तादात्म्य प्रदर्शित करके प्रकारान्तर से इसी भाव को ध्वनित किया है। राज्य एवं शासन के कर्तव्यों, नारी–धर्म, ऋषियों एवं साधु–मुनियों इत्यादि के विषय में हमारी चिर–पोषित धारणाएँ उनकी रचनाओं में यथावत् प्रतिफलित हुई है। परिवार व्यवथा में सुचारु संचालन के लिये जिन भावों तथा विचारणाओं को भारतीय महत्त्व देता आ रहा है। वे कालिदास के काव्यों में सुन्दरतापूर्वक मुखरित हुई है। महर्षि कण्व को जो तृप्ति शकुन्तला को पतिग्रह भेजकर मिली थी, वह प्रत्येक भारतीय पिता के अनुभव की वस्तु है–

अर्थो हि कन्या परकीय एवं तामद्य संप्रेष्य परिग्रहीतुः।
जातो ममायं विशदः प्रकामं प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा।[6]

प्रणय की मर्यादाओं का जो चित्रण कवि ने किया है, वह चिरकाल से भारतीय जीवन का नियामक रहा है। पुनर्जन्म में विश्वास तथा उससे चिरन्तन मुक्ति प्राप्त करने की कामना, जो भारतीय लोक–समाज को अनुप्राणित करती रही है, उनकी कृतियों में सहज भाव से अभिव्यक्त हुई है।

सामन्तीय वातावरण में लिखते हुये भी तथा उसके वैभव–विलास का तन्मयतापूर्ण चित्रण करते हुये भी, कालिदास ने उस व्यवस्था को, अशेष भाव से स्वीकार नहीं किया। अनेक पत्नियों के रखे जाने का अनुमोदन करते हुये भी, उन्होंने एकपत्नीव्रत के आदर्श को स्पष्टतया प्रतिपादित किया है। सीता के पृथ्वी गर्भ में चले जाने के बाद राम ने दूसरा विवाह नहीं किया और उनकी स्वर्ण–प्रतिमा बनाकर, यज्ञ का अनुष्ठान पूरा किया। सामन्तों एवं नरेशों की मधुकरी–वृत्ति को भी उन्होंने प्रकारान्तर से, हंसपदिका के गति के द्वारा निन्दा की है। साथ ही, राजाओं के आदर्श गुणों का वर्णन भी उन्होंने तत्कालीन शासकों की जीवनचर्या में परिष्कार लाने का प्रयत्न किया है।

अभी कहा जा चुका है कि कालिदास ने संघर्षों की अवतारणा नहीं की। जीवन की तथोक्त समस्याओं का उनके या किसी भी प्रकार प्राचीन भारतीय कवि के लिये कोई तात्त्विक महत्त्व नहीं था। हमारी जातीय यावत् अभीप्सिताओं की सिद्धि की सम्यक् व्यवस्था है, किन्तु जिसमें प्रेयस् के लिये श्रेयस् की अवमानना नहीं की गई है, सुन्दर के लिये शिवं की कदर्थना नहीं की गई है। युग–युग का मानव मूलतः उसी संघर्ष से उलझता है और मंगल–मार्ग का वरण कर ही अपने विकास की यात्रा में अग्रसर होता है। वस्तुतः लौकिक साधनाओं में प्राथमिकता का यही क्रम अंगीकार कर सभी काल का मनुष्य विश्व–कल्याण की यह कामना करता आया है–

सर्वस्तरतु दुर्गाणि सर्वोभद्राणि पश्यतु।
सर्वः कामानवाप्नोतु सर्वः सर्वत्र नन्दतु।।

कालिदास ने प्रेम और सौन्दर्य की जो स्रोतस्विनी अपनी रचनाओं में प्रभावित की है, वह युग–युग में मनुष्य को मनोमुग्ध करती रहेगी। वे सिद्ध–सारस्वत कवि हैं। वाङ्मधु का आद्योपान्त परिश्रवण कराने वाला 'नारिकेलपाक' उनके काव्य की प्रधान विभूति है।

कालिदास का काव्य विश्वकुलूहली है। इसी कारण वे युग–युग के कवि हैं, समग्र मानवता के मनोमयकोष के मधुर एवं मनस्वी गायक हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ :

1. कुमारसम्भवम्
2. कालिदास, पूर्वमेघदूत, श्लोक 9
3. मेघदूत, श्लोक 5
4. मेघदूत
5. कुमारसम्भवम्, पं. सर्ग, श्लोक 1
6. कालिदास, शाकुन्तलम्, चतुर्थ अंक

***

आदिवासी साहित्यः चुनौतियाँ और संभावनाएँ

*अनुराग यादव**

बीसवीं सदी के अंतिम दशक में नवउदारवादी प्रतिमान के आगमन से विकास की प्रकृति के साथ ही विकास की चर्चा के प्रतिमानों में परिवर्तन आया। विकास के प्रतिमानों में परिवर्तन के फलस्वरूप भारत में कई नए आंदोलनों का उदय हुआ। महिलाओं, किसानों, दलितों, आदिवासियों और विभिन्न जातीय समूहों ने एक साथ आकर ऐसी मांग की और मुद्दे उठाए जिन्हें न तो स्थापित सिद्धान्तों से समझा जा सकता था और न ही राजनीतिक मुहावरों के माध्यम से सुलझाया जा सकता था। शोषितों ने शोषण और भेदभाव से लड़ने के लिए अन्य शोषित समूहों/समुदायों को साथ लेकर मुक्ति के लिए एक संयुक्त आंदोलन शुरू किया। अपनी अस्मिता को बचाने के लिए उन्होंने शोषण के खिलाफ संघर्ष किया और इस प्रक्रिया को ''अस्मितावादी'' कहा जाने लगा। वंचितों के शोषण के खिलाफ इस लड़ाई में सामाजिक–राजनीतिक आंदोलनों के अलावा साहित्यिक आंदोलन भी शामिल हुए। नारीवादी साहित्य और दलित साहित्य इसी के प्रतिफल हैं। अब आदिवासी साहित्य ने, आदिवासी चेतना से ओतप्रोत, साहित्य और आलोचना की दुनिया में अपनी उपस्थिति दर्ज कराई है।

आदिवासी लोक साहित्य विशाल है। आदिवासी कला के विभिन्न रूपों का विकास तथाकथित मुख्यधारा के साहित्य और कलाओं के उद्भव से पहले हुआ लेकिन आदिवासी साहित्यिक परंपरा मुख्य रूप से मौखिक थी और उसी रूप में संरक्षित थी। ''अलिखित समाजों की भाषा–संस्कृति,कला–साहित्य,ज्ञान विज्ञान, धर्म–परम्परा और जीवनानुभव उसके 'पुरखौती साहित्य' में संग्रहित होता है।''[1] जंगल में धकेले जाने के बाद भी आदिवासी समुदायों ने अपने वाचिक परम्परा को जारी रखा। यह साहित्य अपरिष्कृत लोक भाषाओं में था और आदिवासी सत्ता के केंद्रों से दूर थे इसलिए उनके साहित्य उपेक्षा की गई। आज भी सैकड़ों देशी भाषाओं में आदिवासी साहित्य रचा जा रहा है लेकिन हम इसके बारे में बहुत कम जानते हैं।

समकालीन आदिवासी आन्दोलन के उदय के ऐतिहासिक और भौतिक कारण है। लगभग तीन दशक पहले, केंद्र सरकार ने आर्थिक उदारीकरण की नीति अपनाई और इसने बाजारवादी अर्थव्यवस्था के दरवाजे खोल दिए। मुक्त व्यापार और मुक्त बाजार के नाम पर अधिक से अधिक लाभ अर्जित करने की गलाकाट प्रतिस्पर्धा शुरू हो गई। आदिवासियों के लिए पहाड़ तथा जंगलों में अपने झोपड़ो में अत्यंत गरीबी के साथ रहने एंव जीवन निर्वाह करने का अधिकार भी अब संभव नहीं रहा। आर्थिक उदारीकरण ने सार्वजनिक तथा प्राकृतिक संसाधनों की भारी लूट को वैध बना दिया जिसके परिणामस्वरूप लाखों आदिवासीयों को अपने जमीन से विस्थापित होना पड़ा। उनमें से ज्यादातर दिल्ली, मुम्बई, हैदराबाद जैसे महानगरों में घरेलू नौकर या दिहाड़ी मजदूर के रूप में काम कर रहे हैं। विडंबना यह है कि सरकार यह तर्क देती है कि राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली के क्षेत्र में कोई आदिवासी समुदाय नहीं है, इसलिए इस क्षेत्र में शैक्षणिक संस्थानों और सरकारी नौकरियों में आदिवासियों के लिए आरक्षण का कोई प्रावधान नहीं है। विकास के नाम पर अपने पूर्वजों की जमीन से बेघर हुए ये लोग कहां जाएं ? संयुक्त राष्ट्र ने वर्ष 1993 को 'स्वदेशी लोगों के अंतर्राष्ट्रीय वर्ष' के रूप में मनाने का फैसला किया तो भारत सरकार की आधिकारिक प्रतिक्रिया यह थी कि ''संयुक्त राष्ट्र द्वारा परिभाषित देशज लोग भारतीय आदिवासी या अनुसूचित जनजातियाँ नहीं हैं,बल्कि भारत के सभी लोग देशज हैं और न यहाँ के आदिवासी या अनुसूचित जनजातियां किसी प्रकार के सामाजिक, राजनैतिक या आर्थिक पक्षपात के शिकार हो रहे हैं।''[2]

यह मसला आदिवासियों को आत्मनिर्णय का अधिकार देने का था। आदिवासी साहित्य भी इस मांग को उठा रहा है। अपने जल, जंगल और जमीन से वंचित और महानगरों में दयनीय जीवन जी

---

* शोध छात्र, हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद

रहे आदिवासी किस आधार पर इस देश को अपना कह सकते हैं? सत्ता और पूंजीवाद के गठजोड़ ने आदिवासियों के सम्मुख अस्तित्व को बचाने के लिए एक चुनौती खड़ी कर दी है। जो आदिवासी जंगलों में रह गये वे सरकार और उग्र वामपंथ की दोहरी हिंसा में फंस गए हैं। जो आदिवासी कहीं और बस गए हैं वे जड़ रहित वृक्षों के समान हो गए हैं। नदियाँ, पहाड़ और जंगल जो उनकी भाषा और संस्कृति के विशिष्ट पहचान है विलुप्त हो रहे हैं। आदिवासियों को पहचान और अस्तित्व के इतने गहरे संकट का सामना कभी नहीं करना पड़ा। किसी भी समुदाय के लिए अपने अस्तित्व के लिए खतरों का विरोध करना स्वाभाविक है। यह प्रतिरोध सामाजिक और राजनीतिक स्तरों पर व कला और साहित्य में भी प्रकट हुआ। इस प्रकार समकालीन आदिवासी साहित्य का जन्म हुआ।

जब भी बाहरी लोगों ने आदिवासियों के जीवन में हस्तक्षेप किया, तो आदिवासियों ने इसका विरोध किया। पिछली दो शताब्दियां आदिवासी विद्रोहों की एक लम्बी श्रंखला की साक्षी रही हैं। इन विद्रोहों ने रचनात्मक ऊर्जा भी उत्पन्न की, लेकिन यह ज्यादातर मौखिक थी। ''दरअसल आदिवासी चेतना का लेखन जहाँ एक तरफ अपनी पीड़ा खुद कहने, अपने समाधान खुद ढूढने की चेष्टा है,वही आज वह प्रस्थापितों द्वारा अपनी संस्कृति को नष्ट करने,अपने संसाधनो पर कब्जा जमाने के षड्यंत्रों के बरक्स प्रतिरोध की चेतना से भी लैस है।''[3] संचार के साधनों की कमी के कारण इसे कभी भी अखिल भारतीय मान्यता नहीं मिल सकी। समय–समय पर गैर–आदिवासी लेखकों ने भी आदिवासी जीवन और समाज पर विचार किया। साहित्य में आदिवासी जीवन के चित्रण की इस पूरी परंपरा को समकालीन आदिवासी साहित्य की पृष्ठभूमि माना जा सकता है। कोई भी साहित्यिक आंदोलन एक निश्चित तिथि पर अचानक शुरू नहीं होता है। इसके उद्‌भव और विकास में विभिन्न परिस्थितियां जिम्मेदार होती है। मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि समकालीन आदिवासी लेखन और विमर्श बीसवीं सदी के अंतिम दशक में शुरू हुआ। जैसे–जैसे सरकार की आर्थिक नीतियों ने आदिवासियों के उत्पीड़न और शोषण को बढ़ाया, प्रतिरोध भी बढ़ता गया। चूंकि शोषण और उसका प्रतिरोध एक अखिल भारतीय घटना थी इसलिए उससे पैदा हुई रचनात्मक ऊर्जा भी व्यापक प्रभाव से युक्त थी। इस प्रकार हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि आदिवासी साहित्य 1991 के बाद राष्ट्रीय स्तर पर उत्पन्न रचनात्मक ऊर्जा है जो आर्थिक उदारीकरण के कारण तीव्र शोषण की स्थिति में आदिवासी अस्मिता और अस्तित्व की रक्षा के लिए है। आदिवासी और गैर आदिवासी दोनों लेखक इसमें भूमिका निभा रहे हैं। इस साहित्य का भौगोलिक, सामाजिक और भाषायी संदर्भ बाकी भारतीय साहित्य से उतना ही अलग है जितना कि आदिवासी बाकी भारतीयों से और यही विशिष्टता इसकी प्रमुख विशेषता है।

आदिवासी साहित्य अस्मिता की खोज, बाहरी लोगों द्वारा शोषण के अतीत और वर्तमान रूपों को उजागर करने व आदिवासी पहचान और अस्तित्व के लिए खतरों और प्रतिरोध का साहित्य है। यह परिवर्तन रचनात्मक हस्तक्षेप है जो भारत के मूल निवासियों के वंशजों के खिलाफ किसी भी प्रकार के भेदभाव का विरोध करता है। यह उनके संसाधनों जल, जंगल और जमीन की रक्षा करने के उनके अधिकार और आत्मनिर्णय के अधिकार का समर्थन करता है। समकालीन आदिवासी लेखन और उस पर चर्चा अपने प्रारंभिक चरण में हैं, यह देखकर खुशी होती है कि 'अनुभूति बनाम सहानुभूति' जैसी बेकार बहसें हाशिये पर हैं। वैसे भी, अनुभूति और सहानुभूति की प्रामाणिकता को इतना महत्व देने का कोई कारण नहीं है। अनुभूति की प्रामाणिकता निश्चित रूप से भावनाओं की प्रामाणिकता से अधिक महत्वपूर्ण है, और होनी चाहिए। यह सच है कि लंबे अनुभव, निकट संपर्क और संवेदनशीलता के बिना प्रामाणिक अभिव्यक्ति संभव नहीं है, खासकर आदिवासियों के संदर्भ में। लेकिन प्रामाणिकता को आंकने के लिए अनुभूति या सहानुभूति को अभी भी एकमात्र मानदंड नहीं बनाया जा सकता है। "यह सच तर्कातीत है कि आदिवासी जनजीवन का प्रामाणिक चित्रण उसके नैसर्गिक रंग–चेतना के साथ वही लेखक कर सकता है जो स्वयं उस समाज का हो प्आदिवासी समाज के सच्चे चित्र वही उपस्थित कर सकता है जिसका आदिवासी समाज से नाभि दृनाल सम्बन्ध हो जो उसी समाज में जीता मरता हो और आदिवासी जीवन संस्कृति उसकी नस–नाड़ियों में बहती हो।"[4]

आदिवासी विमर्श जैसे जैसे बढ़ रहा है वैसे–वैसे इसके मुद्दे भी आकार ले रहे हैं। 'आदिवासी कौन हैं?' से शुरू होकर, विमर्श ने पिछले दो–तीन दशक में आदिवासी समाज, इतिहास, संस्कृति, भाषा आदि से संबंधित मुद्दों पर चर्चा की है। पत्रिकाएं प्रत्येक साहित्यिक आंदोलन के आरम्भ और विकास में

महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। निम्नलिखित पत्रिकाओं ने साहित्य की दुनिया में आदिवासी मुद्दों को उठाने और उनसे संबंधित रचनात्मक साहित्य को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी हैरू युद्धरत आम आदमी, अरावली उदगोश, झारखंडी भाषा साहित्य, संस्कृति अखाड़ा और आदिवासी सत्ता आदि आदिवासी विमर्श को बढ़ा रहे हैं। कई मुख्यधारा की पत्रिकाओं ने विशेषांक निकाल आदिवासी मुद्दों को भी प्रकाशित किया और आदिवासी विमर्श के विकास में योगदान दिया है। इनमें समकलीन जनमत (2003), कथाक्रम (2012), इस्पातिका (2012), वांग्मय (2013), वागर्थ (2019) और पक्षधर (2018–19) शामिल हैं। प्रारंभ में प्रमुख हिंदी पत्रिकाओं ने आदिवासी मुद्दों में बहुत कम रुचि दिखाई लेकिन विमर्श की बढ़ती स्वीकृति के साथ आदिवासी जीवन को ऐसी पत्रिकाओं के कॉलम में जगह मिल रही है। "पिछले दो दशकों में हाशिएके लोगों पर काफी रचनाएँ हुई हैं। हिंदी के रचनाकारों ने इसी क्रम में आदिवासियों के जीवन को भी रचना का विषय बनाया है।हाशिए के इन लोगो को रचना का विषय बनाना साहित्य का सकारात्मक कदम है।"[5]

आदिवासी लेखन विविधता से भरा है। वाचिक परंपरा से लाभ आदिवासी लेखकों को हुआ है। आदिवासी साहित्य की कोई केंद्रीय विधा नहीं है जैसे स्त्री विमर्श और दलित विमर्श के मामले में आत्मकथा केन्द्रीय विधा है। आदिवासी और गैर–आदिवासी लेखकों ने कविता, कहानियों, उपन्यासों और नाटकों के माध्यम से आदिवासी जीवन और समाज को चित्रित किया है। आदिवासी लेखकों ने आदिवासी पहचान और अस्तित्व के लिए अपने संघर्ष में कविता को मुख्य हथियार बनाया है। आदिवासी साहित्य में आत्मकथात्मक लेखन कम हुआ ऐसा इसलिए है क्योंकि आदिवासी सामूहिक जिन्दगी जीता है वह व्यक्तिवादी नहीं है जबकि बाकि संस्कृतियाँ व्यक्तिवादी हैं। आदिवासी समुदायों में 'निजी' और 'गोपनीयता' जैसी अवधारणाएं कभी नहीं रहीं। उनकी परंपरा, संस्कृति, इतिहास, शोषण और उसका प्रतिरोध–सभी सामूहिक हैं। और सामूहिक भावनाओं को आत्मकथात्मक कार्यों की तुलना में लोक गीतों के माध्यम से बेहतर ढंग से व्यक्त किया जाता है। "आदिवासी विश्व का साहित्य सामूहिक अभिव्यक्ति और कला रूपों की एक अविभाज्य और संयुक्त इकाई के बतौर सत्ता के किसी भी संरचना और अवधारणाओं की पैरवी नहीं करता। वह किसी व्यक्ति एंव सत्ता की बजाय समूची समष्टि के प्रति अपनी जवाबदेही प्रकट करता है।"[6]

औपनिवेशिक भारत में आदिवासियों की समस्याएँ मुख्य रूप से वनोपजों के संग्रह पर प्रतिबंध, विभिन्न प्रकार के भू–राजस्व, साहूकारों के शोषण और पुलिस प्रशासन के अत्याचारों से संबंधित थीं। आजादी के बाद सरकार द्वारा अपनाए गए विकास के दोषपूर्ण मॉडल ने आदिवासियों को उनके जल, जंगल और जमीन से वंचित कर दिया और उन्हें उनके घरों से विस्थापित कर दिया। आज आदिवासियों के सामने सबसे बड़ी समस्या विस्थापन है। यह एक ओर तो उन्हें उनकी सांस्कृतिक पहचान से वंचित कर रहा है और दूसरी ओर उनके अस्तित्व को खतरे में डाल रहा है। यदि वे अपनी पहचान को संरक्षित करने का प्रयास करते हैं, तो उनका अस्तित्व खतरे में पड़ जाता है और यदि वे अपने अस्तित्व को सुरक्षित करने का प्रयास करते हैं, तो उनकी पहचान खो जाती है। इसलिए आज आदिवासी विमर्श अस्तित्व और अस्मिता का विमर्श है। इन सब के बावजूद आदिवासी जैसे दृजैसे मुख्यधारा में शामिल हो रहा है उसके सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में परिवर्तन आ रहा है। आज आदिवासी समाज और परम्परा और आधुनिकता का द्वंद्व चुनौती बनकर खड़ा है। इसलिए इसमें से किस विषय को छोड़ना है और किसे नही, इस पर आदिवासियों को गंभीरता से विचार करना चाहिए, इसी में आदिवासी समाज का हित है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचीः–

1. आदिवासी साहित्य परम्परा और प्रयोजन : वन्दना टेटे
2. देशज कौन ? आदिवासी कौन ? : सम्पादक तपन बोस
3. आदिवासी साहित्य यात्रा : रमणिका गुप्ता
4. स्वाधीनता आन्दोलन और आदिवासी साहित्य : राकेश कुमार सिंह कथाक्रम अक्टूबर–दिसम्बर 2014)
5. साहित्य में हाशिए के लोग : राजीव रंजन गिरी, समकालीन भारतीय साहित्य नवम्बर – दिसम्बर 2004)
6. आदिवासी साहित्य परम्परा और प्रयोजन : वन्दना टेटे

***

''विकास एवं पर्यावरणवाद'' (एक समाजशास्त्रीय अध्ययन)

*अनामिका कुमारी**

विकास एवं पर्यावरण घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं। दोनों परस्पर निर्भर हैं एवं परस्पर प्रभावित करते हैं। यदि पर्यावरण विकास को आधार देता है तो विकास पर्यावरण के रख–रखाव, उसके पोषण एवं समृद्धि में सहायक होता है। यदि विकास मानव की आवश्यकता है तो उन्नत पर्यावरण उसके स्वस्थ जीवन की अनिवार्यता है। विकास एक सतत् प्रक्रिया है। यह जीवन की गतिशीलता का सूचकांक है। विकास शब्द कई अर्थों में प्रयोग में आता है। सीमित अर्थ में विकास मानव की भौतिक सुख–सुविधाओं में वृद्धि का सूचक है। व्यापक अर्थ में विकास मानव द्वारा शैक्षिक, आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, आध्यात्मिक एवं नैतिक क्षेत्रों में होने वाली प्रगति की समग्रता का द्योतक है। कुछ विचारक आधुनिकीकरण को ही विकास कहते हैं। कौम एवं ग्रेगर के अनुसार, 'वृद्धिकारी परिवर्तन को विकास कहते हैं । वीडनर का कथन है कि, 'विकास वृद्धि की वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा राष्ट्र–निर्माण और सामाजिक–आर्थिक उन्नति होती है। कभी–कभी यह भी कहा जाता है कि विकास सामाजिक परिवर्तन की एक प्रक्रिया है जिसका उद्देश्य एक प्राचीन एवं पिछड़ी हुई व्यवस्था को आधुनिक व्यवस्था में बदलना है।

वास्तव में विकास एक बहु–आयामी प्रक्रिया है। इसके कई पक्ष हैं–राजनीतिक विकास में विवेकशीलता, पंथनिरपेक्षता, व्यापक जन–सहभागिता शामिल है। सामाजिक विकास में सामाजिक बुराइयों का अन्त, मानवीय भेदभाव की समाप्ति, स्तर की समानता, सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि शामिल है। इसके आर्थिक पक्ष में सामाजिक सुरक्षा के लिए व्यवस्था करना, शोषण का अभाव, निरन्तर आर्थिक वृद्धि, प्रचुरता और खुशहाली की प्राप्ति शामिल है। संक्षेप में, विकास–

1. एक गत्यात्मक अवधारणा है। यह स्थिर अवधारणा नहीं है।
2. एक बहु–पक्षीय प्रक्रिया है और इसके विविध पक्ष परस्पर सम्बन्धित हैं और एक दूसरे को प्रभावित करते हैं।
3. विकास वृद्धि से अधिक है। आर्थिक समृद्धि तथा भौतिक सुख–सुविधाओं की बहुलता को वृद्धि (Growth) कहते हैं। किन्तु विकास इतना ही नहीं है। विकास को पर्यावरण से जोड़ कर देखा जाता है। जब आर्थिक समृद्धि एवं भौतिक सुख–सुविधाओं की बहुलता बिना पर्यावरण को क्षति पहुँचाये आती है तो उसे विकास कहते हैं।
4. विकास का विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी से गहरा रिश्ता है। वास्तव में आज तकनीकी दृष्टि से उन्नत समाज को ही विकसित समाज कहते हैं।

यह तो विकास का उज्ज्वल पक्ष है, सकारात्मक पक्ष है। किन्तु, व्यवहार में इसका एक निषेधात्मक पक्ष भी दिखाई देता है। विकास का नकारात्मक परिणाम उभर कर आया है जो पर्यावरण–संकट के रूप में दिखाई देता है। जहाँ एक ओर विकास ने आर्थिक समृद्धि लाकर मानव की भौतिक सुख–सुविधाओं को बढ़ाया है वहीं दूसरी ओर मानव के समक्ष पर्यावरण–संकट भी उत्पन्न किया है। इससे मानव का अस्तित्व, उसका स्वास्थ्य बुरी तरह प्रभावित हुआ है। इस पर्यावरण–संकट का कारण विज्ञान एवं तकनीकी ज्ञान का अन्धाधुन्ध–प्रयोग, औद्योगीकरण, नगरीकरण, आदि हैं। यह वास्तविकता है कि विज्ञान एवं तकनीकी ज्ञान ने मानव की शक्ति को अत्यधिक बढ़ा दिया है। परिणामतः आज मानव आर्थिक एवं भौतिक समृद्धि के लिए विज्ञान एवं तकनीकी ज्ञान एवं साधनों का असंयमित प्रयोग करके प्रकृति पर नियन्त्रण स्थापित करने का प्रयास कर रहा है, उससे छेड़छाड़ कर रहा है, ऊर्जा के पारम्परिक स्रोतों का अनियन्त्रित दोहन कर रहा है। इसके परिणामस्वरूप हमारी धरती, जल, वायु, सब कुछ प्रदूषित हो गयी है। इससे आज मानव अनेक प्रकार की असाध्य बीमारियों का शिकार है। आधुनिक पारिस्थितिकीय अनुसंधानों से ज्ञात होता है कि जैव–मंडल पर मनुष्य के अनवरत, एकतरफा और अनियन्त्रित हस्तक्षेप से हमारी सभ्यता मरुभूमियों को मरुद्यानों में बदलने के बजाय मरुद्यानों को मरुभूमियों में तब्दील कर सकती है। यहाँ यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि विकास एवं उन्नत पर्यावरण में कैसे सामंजस्य हो सकता है? क्या पर्यावरण–संकट के समाधान के लिए विकास को तिलांजलि दे दी जाय?

---

* शोध छात्रा (समाजशास्त्र), पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना

पर्यावरणवादियों का इस विषय में विशेष दृष्टिकोण है। पर्यावरणवाद मानवकेन्द्रित अवधारणा है। इस कारण पर्यावरणवादी जीवन की गुणवत्ता (Quality of life) को आर्थिक समृद्धि (Economic Growth) से अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं। पर्यावरणवादी विचारकों के कई वर्ग हैं। इन विचारकों ने पर्यावरण–विरोधी विकास को अवांछनीय माना है। पर्यावरणवादियों का एक वर्ग संपदा–संरक्षणवादी है। इसके अनुसार पर्यावरण संशाधनों के संरक्षण से कुछ अधिक है। प्रकृति कच्चा माल प्रदान करती है। भावी आर्थिक समृद्धि के लिए प्रकृति को सुरक्षित एवं संरक्षित करने की आवश्यकता है। यह दृष्टिकोण 'गैर–संरक्षणवाद' को बदलना चाहता है। पर्यावरणवादियों का एक वर्ग 'वातावरण संरक्षणवादी' है जिसमें ब्रंटलैण्ड विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। ये विचारक भी मानवस्वास्थ्य को महत्वपूर्ण मानते हैं। इनके अनुसार यदि विकास से वातावरण के प्रदूषित होने एवं जनस्वास्थ्य के लिए खतरे की सम्भावना हो तो विकास का निषेध होना चाहिए। पर्यावरणवादियों का एक वर्ग मुख्यधारा हरित (Mainstream greens) कहलाता है जिसमें कार, मैकरोबी आदि विचारक आते हैं। ये पोषणता पर बल देते हैं। ये नवकरणीय ऊर्जा (Renewable energy) के उत्पादन पर बल देते हैं। इसमें भी पर्यावरण–संरक्षण पर बल है। इनके अनुसार ऐसी तकनीकी खोजनी चाहिए जो बेकार वस्तुओं को कच्चे माल में परिवर्तित करके मानवीय आवश्यकताओं को पूरा करे। पुनः, देवाल, सेशन्स, नेअस, आदि 'गम्भीर हरित पर्यावरणवादी (Deeper greens) मानते हैं कि औद्योगिक विकास पर्यावरण का विनाश एवं धरती का क्षरण करता है। अतः मानव–हित में औद्योगिक विकास को बन्द कर देना चाहिए, अन्यथा प्रकृति में प्रतिक्रिया होगी तथा अन्य विषम समस्याएं उत्पन्न होंगी।

प्रश्न है कि क्या पर्यावरण–संकट के समाधान के लिए विकास को तिलांजलि दी जा सकती है? इसका उत्तर स्पष्टतः निषेधात्मक है। आज की परिस्थितियों में विकास का नकारा नहीं जा सकता। पुनः, यह भी हकीकत है कि मानव–हित में पर्यावरण–सकट को बढ़ाया भी नहीं जा सकता। आज आवश्यक है कि आर्थिक विकास और पर्यावरण में सामंजस्य किया जाय। पर्यावरण एवं पारिस्थतिकी–तन्त्र पर विपरीत प्रभाव डाले बिना विकास को अग्रसर करने की आवश्यकता है। इसी परिप्रेक्ष्य में समाज–राज–दार्शनिकों ने 'संपोष्य विकास' की अवधारणा प्रस्तावित किया है।

संपोष्य विकास शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम इवा बालफोर और वेस जेकसन ने किया। 1987 ई० में पर्यावरण और विकास पर विश्व आयोग की अध्यक्षता करते हुए इस शब्द का प्रयोग करके इसे चर्चित बना दिया। संपोष्य विकास, विकास की वह अवधारणा है जो बिना पर्यावरण को क्षति पहुंचाये मानव जीवन की उत्तमता और आर्थिक विकास पर बल देती है। इसके लिए यह ऐसी तकनीकी को खोजने पर बल देती है जो मानव को आर्थिक दृष्टि से समृद्ध भी बनाये और पर्यावरण को भी सुरक्षित रखे। बंटलैण्ड ने पर्यावरण एवं विकास के लिए विश्व आयोग की रिपोर्ट 'Our common Future' में संपोष्य विकास की निम्नलिखित परिभाषा दिया–

'संपोष्य विकास वह है जिसमें वर्तमान पीढ़ी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति भावी पीढियों की आवश्यकता–पूर्ति को बिना नुकसान पहुँचाये करती हैं, (A sustainable development is that, in which the present generation meets his requirements without being detrimental to the requiremetns of succeeding generations)

संपोष्य विकास की इस परिभाषा में दो बातों पर बल है–

1. वर्तमान की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विकास होना चाहिए और,
2. विकास संयमित होना चाहिए। भावी पीढ़ी के हितों को भी ध्यान में रखकर विकास होना चाहिए। विकास की ऐसी पद्धति अपनायी जानी चाहिए जिससे भावी पीढ़ी को संकटों से न गुजरना पड़े।

संपोष्य विकास की अवधारणा विकास की वर्तमान अवधारणा से भिन्न है। दोनों के अन्तर को निम्नलिखित उदाहरण से समझा जा सकता है। प्रथम उदाहरण उस माली (Gardener) का है जो फूल के पौधे को रोपता है, सींचता है, पोषित करता है और उससे फूल प्राप्त करता है। इससे माली की जीविका भी चलती रहती है और वह पौधा (पेड़) भी सुरक्षित रहता है। द्वितीय उदाहरण उस लोहार (Blacksmith) का है जो पेड़ को काटता है। उससे कोयला तथा घरेलू सज्जो–सामान का निर्माण करता है। इस प्रकार वह अपनी जीविका तो प्राप्त करता है, किन्तु पेड़ का अस्तित्व ही समाप्त कर देता है। इनमें प्रथम दृष्टिकोण संपोष्य विकास का प्रतिनिधित्व करता है जिसमें प्राकृतिक संसाधनों को पोषित एवं सुरक्षित रखते हुए विकास पर बल है। द्वितीय दृष्टिकोण वर्तमान में प्रचलित विकास का है जो पर्यावरण के अस्तित्व को दाँव पर लगाकर विकास को आगे बढ़ाता है।

वास्तव में विकास की द्वितीय अवधारणा वर्तमान में शोचनीय विषय है। विकास की वर्तमान अवधारणा विज्ञान एवं तकनीकी की प्रगति तथा औद्योगीकरण के आलोक में भविष्य की कीमत पर वर्तमान का विकास करती है। यह विकास की एकांगी एवं विपरीतगामी अवधारणा है। आज मानव प्रकृति को नियन्त्रण में लेकर प्राकृतिक संसाधनों का अनियन्त्रित, अविवेकपूर्ण, अदूरदर्शी एवं विनाशकारी दोहन या शोषण (EÛploitation) कर रहा है। इस प्रवृत्ति के दो दुष्परिणाम उभर कर आये हैं। प्रथम, इसने मानव को उपभोक्तावादी, अर्थलोलुप, उच्छृखल, अहंकारी, स्वार्थी, सुखवादी एवं भोगवादी बनाया। द्वितीय, उसने प्राकृतिक संसाधनों को क्षति पहुँचाया या पारिस्थितिकी तन्त्र में सन्तुलन को विघटित किया और पर्यावरण–तन्त्र को नष्ट किया, परिणमातः उसका वर्तमान तो संकटग्रस्त हुआ ही, भविष्य भी असुरक्षित हुआ है। पुनः, जहाँ एक ओर वह प्राकृतिक संसाधनों को समाप्त कर रहा है, वहीं दूसरी ओर हरित प्रभाव वाली अनेक गैसें उत्पन्न करके, वैश्विक ताप में वृद्धि कर रहा है तथा वायु, जल एवं मृदा में इतने अधिक जहरीले पदार्थों को विसर्जित कर रहा है कि वनस्पति एवं जीवधारी जगत् का एवं स्वयं उसका अपना अस्तित्व ही संकट में पड़ गया है।

उपरोक्त कारणों से सम्पोष्य विकासवादी विकास के विषय में समन्वित एवं समग्र दृष्टिकोण अपनाते हुए उसे बदलना चाहते हैं और वर्तमान के विकास को भविष्य की सुरक्षा से जोड़ना चाहते हैं। सम्पोष्य विकासवादियों के अनुसर विकास की वर्तमान अवधारणा त्रुटिपूर्ण है जो मानव की एक समस्या (आर्थिक समस्या) का समाधान तो करती है, किन्तु उसी समय पर्यावरण को क्षति पहंचा कर अन्य अनेक समस्याओं को (स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं को) जन्म देती है। सम्पोष्य विकासवादी इस बात पर बल देते हैं कि निस्सन्देह वर्तमान का अधिकार है कि वह अपनी समस्याओं का समाधान और आवश्यकताओं की पूर्ति करे, किन्तु उसका यह कर्तव्य भी है कि वह ऐसा करके भविष्य के अस्तित्व को संकट में न डाले। इस प्रकार सम्पोष्य विकास का उद्देश्य विकास तथा संरक्षण है। यह भौतिक संसाधनों के ऐसे उपभोग पर बल देती है जिससे मानव की आवश्यकताएं सन्तुष्ट हों और जीवन की गुणवत्ता बनी रहे। पुनः, यह संरक्षण पर भी बल देती है। इससे तात्पर्य यह है कि भौतिक संसाधनों का इस प्रकार उपभोग होना चाहिए कि वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताएं तो पूरी हों तथा भावी पीढ़ियों की आवश्यकताओं की पूर्ति की सम्भावना भी बनी रहे। तात्पर्य यह है कि सम्पोष्य विकास की अवधारणा वर्तमान और भविष्य दोनों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखती है। इसकी मान्यता है कि भौतिक संसाधनों पर भावी पीढी का उतना ही अधिकार है जितना वर्तमान पीढ़ी का। इस प्रकार संपोष्य विकास वर्तमान और भविष्य का संगम है। यह मानव को वर्तमान एवं भविष्य के प्रति जागरूक बनाता है। इसमें विकास भविष्योन्मुखी होता है।

सम्पोष्य विकास के अनुसार आज पर्यावरण अत्यधिक प्रदूषित हो गया है। परिणामस्वरूप भावी पीढ़ी का अस्तित्व तो संकट में है ही, वर्तमान पीढी भी सुरक्षित नहीं है। इसके अनुसार विकास न तो पर्यावरण से ऊपर हो सकता है और न उसका विरोधी । पर्यावरण की कीमत पर भी विकास की प्रक्रिया को आगे नहीं बढ़ाई जा सकती।

वास्तव में सम्पोष्य विकासवादी पर्यावरण का पोषण, संरक्षण एवं सुधार आवश्यक मानते हैं। संपोष्य विकास इस बात पर बल देता है कि पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी तंत्र को क्षति पहुँचाये बिना विकास होना चाहिए और मानव जीवन को उत्तम बनाना चाहिए। वस्तुतः पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी तन्त्र को संरक्षित करते हुए जो विकास होता है वह संपोष्य विकास है। इसके लिए संपोष्य विकासवादी ऐसी तकनीकी खोजने पर बल देते। हैं जो मानव को आर्थिक दृष्टि से समृद्ध भी बनाये और पर्यावरण को भी सुरक्षित रखे।

संपोष्य विकास संयमित विकास है। इसका भारतीय संस्कृति में स्वीकृत अपरिग्रह, त्याग एवं संयम से सामंजस्य है। यह आवश्यकताओं एवं इच्छाओं को संयमित करने पर बल देती है। यह वर्तमान पीढ़ी को भारतीय मनीषी भर्तृहरि की इस शिक्षा को याद दिलाना चाहती है कि 'कामनाओं के उपभोग से कामनाएं शान्त नहीं होती' (न जातु कामाः कामानामुपभोगेन शान्तये)। संपोष्य विकास मानव से आग्रह करता है कि वह पर्यावरण से अपना तादात्म्य एवं सामंजस्य बनाये, उससे छेड़छाड़ एवं उस पर नियन्त्रण करने का प्रयास न करे। यह इस बात पर बल देता है कि हमें प्रकृति के प्रति अनुग्रहशील होना चाहिए और प्रकृति से उतना ही लेना चाहिए जितना हम उसे वापस कर सकें। यह भारतीय संस्कृति की मान्यता है जिसे आज संपोष्य विकास की अवधारणा स्वीकार करती है। जैसे, भारतीय परम्परा कहती है कि अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए वृक्ष को काटना हमारा अधिकार है, किन्तु हमारा यह कर्तव्य भी है कि यदि हम एक वृक्ष काटते हैं तो एक पौधा रोपें भी। वास्तव में भारतीय परम्परा में प्राप्त शान्तिपाठ, 'ऊँ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः' इसी तादात्म्यभाव का सूचक है। पुनः, 'पृथ्वी माता है और मैं पृथ्वी का पुत्र हूँ' (माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः), यह वैदिक दृष्टिकोण मानव को पर्यावरण के साथ तादात्म्य स्थापित करने की शिक्षा देता है। इस प्रकार पारिस्थितिकी दर्शन विकास

का जो समग्र दृष्टिकोण प्रस्तावित करता है उसमें पर्यावरण के प्रति अनुग्रहशीलता, कृतज्ञता, विनम्रता, एकाकारता का भाव है, प्रकृति के प्रति भोग्यता एवं विजेता का भाव नहीं है। पारिस्थितिकी विचारकों के अनुसार आज का मानव इस दृष्टिकोण को भूल चुका है। परिणामतः नैतिक एवं अनैतिक ढंग से वैभवपूर्ण जीवन जीने की उसकी प्रवृत्ति एवं भूख ने पर्यावरण–संकट पैदा करके अपने अस्तित्व का ही संकट पैदा किया है। अतः आज समन्वित विकास और भी अपेक्षित हो जाता है।

पारिस्थितिकी विचारकों की मान्यता है कि पर्यावरण को सर्वाधिक क्षति विकसित देशों ने पहँचायी है, क्योंकि उन्होंने ही निर्ममतापूर्वक एवं लापरवाही के साथ प्राकृतिक संशोधनों का दोहन किया हैं। जैसे, अमेरिका के लोग सम्पूर्ण विश्व की जनसंख्या का केवल 6 प्रतिशत हैं, किन्तु वे सम्पूर्ण विश्व में निर्मित माल के लगभग 50 प्रतिशत और सम्पूर्ण विश्व की लगभग 33 प्रतिशत ऊर्जा की खपत के लिए उत्तरदायी हैं। पुनः विकसित देशों का अनुसरण करते हुए अल्पविकसित एवं विकासशील देशों में भी पर्यावरण के अत्यधिक दोहन की प्रवृत्ति उभरकर आयी है। चूंकि पर्यावरण को सर्वाधिक क्षति विकसित देशों ने पहुँचाई है, अतः पर्यावरण को उन्नत बनाने का सर्वाधिक दायित्व भी उन्हीं का है। पर्यावरणवादी उपरोक्त कारणों से इस बात पर बल देते हैं कि पर्यावरण की उत्तमताको बनाये रखने के लिए विकसित देशों के लोगों को अपने उपभोग के प्रतिमानों (Consumption patterns) एवं जीवन शैली (Lifestyle) को बदलना होगा।

पारिस्थतिकी दर्शन का आधार सामाजिक न्याय (Social justice) का विचार भी है। इसके अनुसार धरती किसी की निजी सम्पत्ति नहीं है। यह हमें पूर्वजों से उत्तराधिकार में नहीं मिली है। हमें समझना होगा कि यह हमारे पास भावी पीढ़ियों की धरोहर है। हम प्राकृतिक संसाधनों को सुरक्षित रखने के दायित्व से बँधे हैं। वर्तमान पीढी को यह अधिकार नहीं है कि वह अपने उपभोग के लिए सभी प्राकृतिक संसाधनों को निचोड कर भावी पीढ़ियों के लोगों के जीवन को संकट में डाले। संपोष्य विकास की धारणा आर्थिक संसाधनों एवं ऊर्जा–स्रोतों के न्यायपूर्ण वितरण एवं उपयोग पर बल देती है। चूँकि विकसित देशों ने ही पर्यावरण को सर्वाधिक क्षति पहुँचाई है अतः न्याय की माँग है कि वे ही पर्यावरण को उन्नत बनाने में सर्वाधिक योगदान करें। संपोष्य विकास की धारणा को हकीकत में बदलने के लिए निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिए–

1. जागरूकता–मानव समाज को जीवन में उन्नत समाज की आवश्यकता और महत्व को समझना होगा। वास्तव में जागरूकता ही किसी समस्या से बचाव का प्रथम उपाय है। व्यक्ति को विकास के विषय में अपनी मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक सोच बदलनी होगी और उन्नत पर्यावरण के विषय में जनमत तैयार करना होगा।
2. चूँकि आर्थिक संसाधनों पर जनसंख्या–विस्फोट का सर्वाधिक दबाव पड़ता है। अतः जनसंख्या विस्फोट को कारगर ढंग से रोकना होगा।
3. हमें सम्पूर्ण विश्व को, सम्पूर्ण पारिस्थितिकी तन्त्र को एक इकाई मानना होगा। इसे स्थानीय रूप में स्वीकार करने पर ही अनेक समस्याएं उत्पन्न होती हैं। हमें यह समझना होगा कि पर्यावरण के किसी भाग की समस्या सम्पूर्ण विश्व की समस्या है। जैसे अनेक विकसित राज्य हरित गृह प्रभाव वाली गैसों का उत्सर्जन कर रहे हैं, किन्तु तापमान सम्पूर्ण धरती का बढ़ रहा है। पुनः, ओजोन नाशक गैसों का उत्सर्जन अधिकांश विकसित देश कर रहे हैं, किन्तु ओजोन परत के विनाश का दुष्परिणाम सम्पूर्ण विश्व को भुगतना होगा। अतः हमें पर्यावरण के प्रति समग्र दृष्टिकोण अपनाना होगा।
4. नगरीकरण एवं ग्रामीण जनसंख्या का नगरों की ओर पलायन पर्यावरण समस्या का एक प्रमुख कारक है। अतः विकास की दिशा गाँवों की ओर मोड़नी होगी, नगरीय सुविधाओं का विस्तार गाँवों में करना होगा। इससे नगरों की ओर पलायन रूकेगा और नगरीय समस्याएं भी कम होंगी।
5. औद्योगीकरण का विकास एवं पर्यावरण से गहरा रिश्ता है। औद्योगीकरण विकसित राष्ट्र का मानदण्ड है। एक आधुनिक समाज की पहचान भी औद्योगीकरण से होती है। पुनः औद्योगीकरण का भी नजदीकी सम्बन्ध पर्यावरण से है। जहाँ एक ओर औद्योगीकरण से विकास की गंगा बहती है वहीं उससे विसर्जित अपशिष्ट (Waste) गंगा को प्रदूषित भी करता है। हमारे भू, जल एवं वायु के, किंवा पर्यावरण के प्रदूषित होने का एक सर्वाधिक प्रभावी कारण औद्योगीकरण है। अतः राज्य को विधिक व्यवस्था करनीचाहिए कि ट्रीटमेन्ट प्लांट लगाये बगैर औद्योगिक इकाइयाँ न स्थापित की जाँय।
6. किसी भी परियोजना के क्रियान्वयन का निर्णय लेने के पूर्व यह विचार करने की अति आवश्यकता है कि इससे पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी को क्षति तो नहीं पहुंचेगी। अर्थात् किसी परियोजना को व्यवहार में लाने के पूर्व उसके त्वरित लाभ की अपेक्षा दूरगामी हानि के विषय में भी विचार करना आवश्यक है।

7. ऊर्जा के आर्थिकता पूर्ण उपयोग तथा ऊर्जा के नव्यकरणीय (Renewable) स्रोतों के विकास हेतु शोध एवं विकास (Research and Development) पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। यह भी आवश्यक है कि ऐसी तकनीक का निःशुल्क हस्तान्तरण अन्य देशों को किया जाय, क्योंकि यह मानवीय आधार से जुड़ा प्रश्न है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. पाठक, पी० तथा त्यागी एस० : भारतीय शिक्षा की सामाजिक–समस्याएँः प्र्यावरण प्रदूषण मानव जगत के लिए खतरा, साहित्य प्रकाश दिल्ली, 1986.
2. विश्वेश्वेरेय्या जी : समाज एवं पर्यावरण प्रदूषण एक विश्लेषण एम प्रकाश मन्दिर, आगरा, 1992.
3. व्यास, एच० : जनसंख्या विस्फोट और प्र्यावरण, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, 1991.
4. विद्यानाथ, बी० : इनवायरमेन्ट, इनरजी हेल्थ, ज्ञान बुक प्रा०लि०, नई दिल्ली, 2000.
5. Zoysa, Uchita De : Sustainable consumption : An Asian Review, Centre for Environment & Development, colombo, Sri Lanka, 2007 accessed the website www.sltment ik in june, 2010.

***

किशोरों के मानसिक स्वास्थ्य का एक अध्ययन (पटना जिला के नदौल गाँव के संदर्भ में एक समाजशास्त्रीय अध्ययन)

डॉ. प्रो. मधु कुमारी *
*निशात अंजुम***

भूमिका :

किशोरावस्था मानव जीवन की सबसे महत्वपूर्ण अवस्था है, जिसमें कुछ विशेष प्रकार के शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक तथा सामाजिक विकास होते हैं। किशोरावस्था के मुख्य तीन पक्ष होते हैं, जिन्हें - पूर्व किशोरावस्था (10-12 वर्ष तक), प्रारंभिक किशोरावस्था (13-16 वर्ष तक) तथा किशोरावस्था की अंतिम अवस्था (17-21 वर्ष तक) कहते हैं।

किशोरावस्था एक ऐसी अवस्था है, जहाँ एक ओर बाल्यावस्था समाप्ति के कगार पर होती है और युवावस्था का आरम्भ होने वाला होता है। दूसरे शब्दों में बाल्यावस्था की समाप्ति तथा युवावस्था के आरम्भ के मध्य अवस्था को किशोरावस्था कहते हैं।

सरासन एवं सरासन (Sarason & Sarason) ने 1998 में प्रकाशित अपनी पुस्तक असामान्य मनोविज्ञान के अन्तर्गत किशोरावस्था की व्याख्या करते हुए कहा कि यह ऐसी अवस्था है, जो लगभग 11 वर्ष से शुरू होती है और 17 वर्ष तक जारी रहती है लेकिन इस अवधि पर संस्कृति, काल, परिस्थिति आदि का प्रभाव पड़ सकता है, जिसके परिणामस्वरूप इसकी अवधि में थोड़ा बहुत सामाजिक परिवर्तन संभव है।

किशोरावस्था की सबसे बड़ी विशेषता माता-पिता के आधिपत्य के प्रति विद्रोह एवं स्वतंत्रता की प्राप्ति है। यह ऐसी अवस्था है जिसमें बच्चे अपने माता-पिता के नियंत्रण से स्वतंत्र होना चाहते हैं। बाल्यावस्था में बच्चे माता-पिता के अधीन होते हैं तथा उनकी इच्छाओं की संतुष्टि पर माता-पिता का पूर्ण नियंत्रण रहता है, लेकिन किशोरावस्था के आरंभ से ही बच्चे माता-पिता के नियंत्रण से आजाद होना चाहते हैं। इस प्रकार, उनके समायोजन प्रतिरूप परिवर्तित होने लगते हैं। पहले वे अपने माता-पिता के दबाव या आधिपत्य के अनुकूल समायोजन स्थापित करने का प्रयास करते हैं जहाँ उनकी अपनी इच्छायें गौण होती हैं लेकिन अब वे स्वतंत्र रूप से समायोजित होने का प्रयास करते हैं जहाँ उनकी अपनी इच्छा प्रधान होती है। इस अवस्था में संवेगात्मक आवेगों पर नियंत्रण कमजोर होने लगता है। परिणामतः नाना प्रकार की समायोजन संबंधी कठिनाइयों के कारण कई तरह के कुसमायोजन के लक्षण विकसित होने लगते हैं। इस अवस्था में किशोर लड़के तथा लड़कियों में घर से भाग जाने, चोरी, करने, झूठ बोलने, यौन अपराध करने आदि जैसे कुसमायोजित व्यवहार देखे जा सकते हैं। इन लक्षणों के बावजूद वे सामान्य जीवन बिताने में सफल देखे जाते हैं।

---

* शोध निर्देशिका, अध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग जे. डी. वीमेन्स कॉलेज, पटना
** शोधछात्रा, खलिलपुरा, फुलवारीशरीफ पटना-801506

अध्ययनों से पता चलता है कि किशोरावस्था में लगभग 25 प्रतिशत पड़के तथा लड़कियाँ मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं के शिकार होते हैं। वे मनोवैज्ञानिक प्रतिबल से इस हद तक पीड़ित होते हैं कि उनका समान्य जीवन विकृत बन जाता है। बर्लिन (Berlin, 1975) ने अपने अध्ययन में पाया कि गरीब लोगों में 30 प्रतिशत किशोर लड़के तथा लड़कियाँ मानसिक अस्वस्थता से पीड़ित होते हैं। रॉस (Ross, 1970) के अध्ययन से पता चलता है कि अमेरिका में 15-19 की आयु वाले लड़के तथा लड़कियाँ मानसिक प्रतिबल से पीड़ित होकर आत्महत्या कर लेते हैं।

किशोरावस्था को संक्रमण (Transition) की अवस्था कहा जाता है। यहाँ एक ओर बाल्यावस्था समाप्त होती रहती है और दूसरी ओर युवा अवस्था आरम्भ होने वाली होती है। इसलिए इस अवस्था में लड़के तथा लड़कियों को सबसे अधिक मनोवैज्ञानिक प्रतिबल का अनुभव होता है, जिसका प्रतिकूल प्रभाव उनके मानसिक स्वास्थ्य के साथ-साथ सामान्य जीवन पर पड़ता है। महाविद्यालय के जीवन में इस तरह की समस्यायें सहज रूप से दृष्टिगोचर होती हैं। छात्र अथवा छात्रा के रूप में उनसे उच्च शैक्षिक उपलब्धि की अपेक्षा की जाती है जो प्रतिबल का कारण बनती है। फलतः वे या तो पढ़ाई छोड़ देते हैं या मानसिक विकृति के शिकार हो जाते हैं।

महाविद्यालय जीवन में एक गंभीर प्रतिबल का स्रोत लैंगिक आवेग है, जिसको नियंत्रित करने में विफल होने पर नाना प्रकार के कुसमायोजन के लक्षण विकसित होने लगते हैं। यह प्रतिबल लड़कियों के लिए और भी घातक होते हैं। इस प्रतिबल का परिणाम अधिकांश स्थिति में आत्महत्या है। शिपर्ड (Sheperd, 1967) ने अपने अध्ययन के आलोक में इस विचार का समर्थन किया कि खिन्नता (depression) का एक मख्य स्रोत यौन आवेग की कुन्ठा है।

किशोर महिलाओं में मनोवैज्ञानिक प्रतिबल का एक मुख्य स्रोत गर्भाधान, गर्भपात अथवा शिशु का जन्म लेना है। गर्भाधान तथा शिशु जन्म विवाहित तथा अविवाहित दोनों तरह की महिलाओं के लिए प्रतिबल का काम करता है लेकिन अविवाहित महिलाओं की स्थिति में इसका परिणाम अधिक गंभीर होता है। यहाँ तक कि विवाहित महिलाओं में अनैच्छिक गर्भाधान की स्थिति में भी प्रतिबल गंभीर बन जाता है, जिसका प्रतिकूल प्रभाव उसके समायोजन पर पड़ता है।

महिलाओं में प्रतिबल का एक कारण गर्भपात है। मारमर आदि (Marmer et al., 1974) के अनूसार गर्भपात के भय से उत्पन्न प्रतिबल के कारण महिलायें मनोवैज्ञानिक विसन्तुलन की शिकार बन जाती हैं। जिस समाज में गर्भपात को सामाजिक स्वीकृति प्राप्त नहीं है वहाँ इसके परिणाम अधिक घातक होते हैं। ऐसी स्थिति में महिलायें प्रतिबल का अनुभव अधिक करती हैं। लज्जा तथा आत्मग्लानि से वे पीड़ित होती हैं दूसरी ओर जिस समाज में गर्भपात अवांछित नहीं है, वहाँ महिलाओं में इस तरह के लक्षण या तो नहीं देखे जाते हैं या बहुत कम देखे जाते हैं। एडलर (Adler, 1875) के अनुसार जहाँ गर्भाधान अवांछित नहीं हाता है वहाँ इसके मनोवैज्ञानिक परिणाम अधिक घातक नहीं होते हैं। सहज रूप से अचानक होने वाला गर्भपात सबसे अधिक तनावपूर्ण होता है। अधिकांश परिस्थितियों में ऐसी स्थिति के उत्पन्न होने पर संवेगात्मक उपद्रव विकसित हो जाते हैं। आत्मदोष, निराशा, अक्षमता तथा हीन भाव बहुधा उत्पन्न हो जाते हैं, जिनके परिणामस्वरूप पारिवारिक समायोजन, सामाजिक समायोजन, स्वास्थ्य समायोजन तथा संवेगात्मक समायोजन बिगड़ जाते हैं।

किशोरावस्था की अंतिम अवस्था में जीविकोपार्जन से उत्पन्न प्रतिबल का निश्चित प्रभाव

किशोर लड़के तथा लड़कियों के समायोजन पर पड़ता है। यह बात उस समाज में अधिक देखी जाती है जहाँ आर्थिक संकट अधिक होता है, व्यवसाय के अवसर कम होते हैं और आर्थिक सुरक्षा का अभाव होता है।

किभ (Kiv, 1994) के अनुसार किशोरावस्था में व्यवसाय के अवसर नहीं मिलने पर लड़के तथा लड़कियाँ गंभीर मनोवैज्ञानिक समस्याओं के शिकार बन जाते हैं। यह स्थिति और भी गंभीर तब हो जाती है जब उन पर पारिवारिक उत्तरदायित्व अधिक होता है। पियर्सन (Pearson, 1971) ने अपने अध्ययन के आधार पर पाया कि ऐसी स्थिति में मद्यपान, औषधीय निर्भरता तथा आत्महत्या अधिक देखे जाते हैं। इसके अतिरिक्त बेरोजगारी की समस्या से उत्पन्न अवांछित लक्षण भी देखे जाते हैं। अध्ययनों से पता चलता है कि व्यवसाय के अभाव होने की स्थिति में नाना प्रकार की मानसिक विकृतियाँ विकसित हो जाती हैं। कौब (Cobb, 1974) के अनुसार सामाजिक तथा आर्थिक सहायता के अभाव के कारण कुसमायोजन के लक्षण देखे जा सकते हैं।

किशोरावस्था में मानसिक स्वास्थ्य एवं मनोवैज्ञानिक समायोजन पर गंभीर बीमारी तथा शल्यक्रिया से उत्पन्न तनाव का भी गहरा प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। गंभीर शारीरिक रोग अथवा शल्यक्रिया की स्थिति में उपद्रव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। गंभीर अवस्था में विभ्रम व्यामोह आदि विकसित हो जाते हैं। ब्रेस लैंड (Brace Land, 1974) ने अपने अध्ययन में देखा कि खुला हृदय शल्यक्रिया (Open Heart Surgery) की स्थिति में रोगी में तीव्र चिंता, विषाद् तथा चिड़चिड़ापन के लक्षण देखे गये। इसी तरह उल्फ (Wolf, 1970) ने अपने अध्ययन में देखा कि जिन महिलाओं की शल्यक्रिया की गयी उनमें आगे चलकर विषाद्, स्नायुविकृति तथा मनोविकृति के लक्षण विकसित हो गये।

मानिसक स्वास्थ्य सम्पूर्ण स्वास्थ्य का एक बहुत ही महत्वपूर्ण अवयव है। जब किसी व्यक्ति का शरीर स्वस्थ होगा तो निश्चित ही वह व्यक्ति मानसिक रूप से स्वस्थ होगा। शारीरिक स्वास्थ्य एवं मानसिक स्वास्थ्य में अटूट एवं अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। ये दोनों की स्वास्थ्य के अवयव एक-दूसरे पर आधारित एवं निर्भर हैं, परन्तु विश्व स्वास्थ्य संगठन (Who) की परिभाषा के अनुसार,''स्वास्थ्य मात्र बीमारियों की अनुपस्थिति ही नहीं है बल्कि व्यक्ति को शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक रूप से भी स्वस्थ रहना है।'' मानसिक स्वास्थ्य एवं शारीरिक स्वास्थ्य को पृथक्-पृथक् नहीं किया जा सकता है, क्योंकि दोनों एक-दूसरे पर निर्भर हैं, परन्तु फिर भी मानसिक स्वास्थ्य को स्पष्ट रूप से समझने के लिये इसके बारे में जानना अत्यन्त आवश्यक है।

आज की भाग-दौड़ की जिन्दगी में अधिकांश लोग मानसिक रूप से अस्वस्थ हैं। चिन्ताएँ, तनाव, उलझनें निराशाएँ,उद्विग्नता तथा विभिन्न प्रकार की समस्याएँ मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करती हैं। विकासशील देशों की अपेक्षा विकसित देशों में लोग मानसिक रूप से ज्यादा अस्वस्थ हैं, क्योंकि विकसित देशों में लोगों को जीने के लिये अधिक श्रम एवं संघर्ष करना पड़ता है। यू०एस०ए० (U.S.A.) के अस्पतालों में आधे से अधिक रोगी मानसिक रूप से परेशान एवं अस्वस्थ होते हैं। वर्तमान युग में भीड़-भाड़ वाली जिन्दगी में व्यक्ति एकदम अकेला एवं स्वयं में केन्द्रित (Selfcentred) होकर रह गया है। दिन-प्रतिदिन मानवीय मूल्यों के ह्रास होने से व्यक्ति में निराशा, अकेलापन, असन्तोष, उत्तरदायित्वों की कमी, धन की बढ़ती चाहत इत्यादी ने जन्म ले लिया है, जिससे व्यक्ति अशान्त, निराश, उद्विग्न, चिन्ताग्रस्त, परेशान एवं मानसिक रूप से बीमार एवं रोगग्रस्त हो गया है।

वर्तमान समय में जीवन के मूल्यों से धन का मूल्य बढ़ गया है, जिससे लोगों में धन अर्जित करने के प्रति ज्यादा लालसा हो गई है। धन अर्जित करने के उद्देश्य से जुटे लोगों में प्रेम, सहानुभूति, दया,सहयोग, सद्भावना, सामाजिक मेलभाव इत्यादि का सख्त अभाव हो गया है। निरन्तर नये ज्ञान एवं तकनीकी के विकास के साथ-साथ मानव में भी संघर्ष करने की क्षमता बढ़ गई है तथा मानव भी मानव न रहकर एक मशीन की भाँती कार्य करने में जुटा हुआ है, जिसका दुष्परिणाम सामने है- मानसिक अस्वस्थता।

मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति में निम्नलिखित विशेषताएँ (Characteristics) विद्यमान होनी चाहियें :-

(1) मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति शान्त, सन्तुष्ट, प्रसन्न एवं हमेशा ही आनन्दित रहता है। उसके स्वयं के भीतर में किसी भी प्रकार का द्वन्द्व या संघर्ष नहीं होता। वह भीतर-बाहर एक-सा रहता है। वह स्वयं को कभी नहीं धिक्कारता है तथा हमेशा स्वयं को आदरपूर्वक देखता है। वह न तो अपनी योग्यता को ज्यादा करके अथवा न ही कम करके आँकता है। अतः वह स्वयं से पूरी तरह सन्तुष्ट रहता है।

(2) मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति को स्वयं के ऊपर अच्छा आत्म-नियंत्रण रहता है। वह कठिन-से-कठिन परेशानियों को भीसरलता से बुद्धिमत्तापूर्वक सुलझा लेता है। वह संवेगों का गुलाम नहीं होता, फलतः भय, क्रोध, प्रेम, ईर्ष्या, चिन्ता, तनाव इत्यादि उस पर सरलता से हावी नहीं होते। संक्षेप में, ऐसा व्यक्ति संवेगों का गुलाम नहीं बल्कि संवेग उसके गुलाम होते हैं।

(3) मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति दूसरों के साथ अच्छी तरह से समायोजन कर लेता है। ऐसा व्यक्ति सामजिक होता है तथा दूसरों की सहायता एवं सहयोग आगे बढ़कर करता है। आलोचनाओं पर विशेष ध्यान नहीं देता हैं, न ही छोटी-छोटी बातों पर अपना आत्म-नियन्त्रण अथवा सन्तुलन खोता है। वह दूसरों की भावनाओं की कद्र करता है तथा हमेशा ही सह्रदय एवं सहयोगी बना रहता है। ऐसा व्यक्ति एक अच्छा मित्र होता है तथा सभी के साथ शिष्टाचारपूर्वक व्यवहार करता है।

(4) मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति में निर्णय लेने की विलक्षण क्षमता होती है। वह परेशानियों से घबराता नहीं है, बल्कि परेशानियों को शान्तचित्त होकर ठण्डे दिमाग से सुलझाने का प्रयास करता है।

(5) मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति बदलते वातावरण के साथ आसानी से स्वयं को समायोजित कर लेता है। उसे पता भी होता है कि चीजें गलत हैं या गलत दिशा में जा रही हैं, परन्तु फिर भी वह अपना आत्म-नियंत्रण नहीं खोता है और ना ही उद्विग्न अथवा क्रोधित होकर कोई गलत कदम ही उठाता है। वह शान्तचित्त होकर उनके कारणों को ढूँढने का प्रयास करता है।

(6) मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति कभी अकारण दूसरों को परेशान नहीं करता बल्कि दूसरों के साथ अच्छी प्रकार से एकीकरण करके स्वयं को उनके साथ सुव्यवस्थित तरीके से समायोजित कर लेता है।

(1) शारीरिक स्वास्थ्य - शारीरिक स्वास्थ्य मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करता है। अगर कोई व्यक्ति शारीरिक रूप से अस्वस्थ है तो निश्चित ही वह मानसिक रूप से खिन्न, उद्विग्न, परेशान

एवं चिन्तित रहता है। बात-बात में चिड़चिड़ा होना, क्रोधित होना, परेशान होना इत्यादि मानसिक अस्वस्थता के लक्षण हैं।

(2) सामाजिक कारक - मानव एक सामाजिक प्राणी है। अगर किसी व्यक्ति को समाज द्वारा उत्पीड़ित किया जाता है तो इसका प्रभाव उस व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य पर पड़ता है। चिन्ताएँ, बेमेल शादियाँ, छिन्न-भिन्न परिवार, तलाक,गरीबी,निर्दयता, संवेगात्मक तनाव इत्यादि से मानसिक बिमारियों का जन्म होता है, जिससेव्यक्ति के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है और व्यक्ति बीमार हो जाता है।

(3) वंशानुक्रम – वंशानक्रम भी कई प्रकार के रोगों को वहन करने में अहम् भूमिका निभात है। सिजोफ्रेनिया से पीड़ित माता-पिता के बच्चों में यह रोग हो जाता है, क्योंकि यह रोग वंशानुगत है, जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तान्तरित होता रहता है।

सिजोफ्रेनिया एक प्रकार का मानसिक रोग है, जिसमें पीड़ित व्यक्ति अपने ही स्वप्नों की दुनिया में भ्रमण करता रहता है। उसकी सोच, मूड, तथा आसन सभी अव्यवस्थित हो जाते हैं।

(4) शराब, ड्रग्स, अल्कोहल एवं नारकोटिक्स के सेवन करने वाले व्यक्ति को मानसिक रोग हो जाता है। खासकर ड्रग एडीक्टर तथा मद्यपान करने वाले कई व्यक्तियों का घर बुरी तरह से बर्बाद होते देखा गया है।

(5) अनिद्रा, तनाव, उच्छृंखलता, भय, लड़ाई-झगड़े इत्यादि के कारण भी व्यक्ति मानसिक रूप से बीमार एवं रोगग्रस्त हो जाता है।

अध्ययन का उद्देश्य :

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य किशोरों के मानसिक स्वास्थ्य की जानकारी प्राप्त करना है।

उपकल्पना :

(1) मानसिक रूप से अस्वस्थ किशोर हमेशा चिन्तित रहते हैं।

(2) मानसिक रूप से अस्वस्थ किशोर हीन भावना से ग्रस्त रहते हैं।

अध्ययन क्षेत्र :

प्रस्तुत अध्ययन के लिए पटना जिला के नदौल गाँव का चयन किया गया। नदौल मसौढ़ी सब-डिविजन का एक-एक गाँव तथा पंचायत है। नदौल रेलवे स्टेशन भी है, जो पटना गया लाइन में स्थित है।

निदर्शन :

अध्ययन क्षेत्र नदौल गाँव से 100 किशोर तथा 100 किशोरियों का चयन किया गया।

तथ्य संकलन की प्रविधि :

प्रस्तुत शोध अध्ययन के लिए साक्षात्कार अनुसूची का उपयोग किया गया।

तथ्यों का संकलन एवं विश्लेषण :

किशोर एवं किशोरियों से प्राप्त तथ्यों का सारणीयन, वर्गीकरण एवं विश्लेषण किया।

निष्कर्ष :

अधिकांश उत्तरदाता 14 से 16 वर्ष आयु के हैं। उत्तरदाता उच्च जाति, पिछड़ी जाति एवं अनुसूचित जाति के हैं। सर्वाधिक उत्तरदाताओं का परिवार संयुक्त है। सर्वाधिक उत्तरदाता अविवाहित हैं।

सर्वाधिक उत्तरदाताओं का पारिवारिक व्यवसाय कृषि है। सर्वाधिक उत्तरदाता माध्यमिक शैक्षणिक स्तर के हैं। सर्वाधिक उत्तरदाताओं की आर्थिक स्थिति दयनीय है। सर्वाधिक उत्तरदाता अकारण ही परेशान एवं उदास रहते हैं। 70 प्रतिशत उत्तरदाता छोटी-छोटी बातों में अपना सन्तुलन खो बैठते हैं। 68 प्रतिशत उत्तरदाता हमेशा चिन्तित रहते हैं। 56 प्रतिशत उत्तरदाता अकारण भयभीत रहते हैं। 53 प्रतिशत उत्तरदाता लोगों का साथ देना पसन्द नहींकरते। 64 प्रतिशत उत्तरदाता कार्य करते समय स्वयं को केन्द्रित नहीं कर पाते हैं। 57 प्रतिशत उत्तरदाता हमेशा खिन्न रहते हैं। 59 प्रतिशत उत्तरदाताओं के परिवार में हमेशा ही लड़ाई-झगड़ा होता रहा है। 51 प्रतिशत उत्तरदाता को परिवार वाले किसी भी कारण को लेकर परेशान करते हैं। 67 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि उनका विचार हमेशा बदलता रहता है।

उपरोक्त तथ्यों से ज्ञात होता है कि अधिकांश किशोर मानसिक रूप से स्वस्थ नहीं है। अतः उन्हें अच्छे स्वास्थ्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करने की जरूरत है। इस अवस्था में किशोर अपने माता-पिता, संरक्षकों तथा अध्यापकों के साथ अपनी नई विकास अवस्था की नई भूमिकाओं के साथ समायोजन नहीं कर पाता है। अतः उनमें चिन्ता, अनिश्चितता और भ्रान्ति के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। अतः किशोर की समस्याओं का सही ढंग से सही समय पर निराकरण न किया जाये तो वह घर, विद्यालय एवं समाज के प्रति विरोध प्रकट करने लगता है। अतः किशोरावस्था को "तुफान एवं तनाव" की संज्ञा दी गई है। इस आयु में उसके शरीर और ग्रन्थियों में परिवर्तन के कारण संवेगात्मक तनाव बहुत बढ़ जाता है।

हमारे देश में गलत शिक्षा नीति, दोषपूर्ण परीक्षा प्रणाली, बस्ते का बढ़ता बोझा इत्यादि के कारण किशोरोंमें मानसिक परेशानियाँ, निराशाएँ, हीन-भावनाएँ जन्म ले लेती है तथा किशोर मानसिक रूप से कमजोर एवं अस्वस्थ हो जाता है।

संदर्भ सूची :

(1) डॉ० सारिका : किशोरावस्था पर मीडिया का प्रभाव, जानकी प्रकाशन, पटना, 2007.
(2) डॉ० शैलेन्द्र कुमार सिंह : विकासात्मक बाल मनोविज्ञान, नोवेल्टी एण्ड कम्पनी, अशोक राज पथ, पटना, 2013.
(3) डॉ० गिरीश गौरव : नगरीय समाज की स्वास्थ्य समस्याएँ, जानकी प्रकाशन, पटना, 2009.
(4) भारकण्डेय सिंह यादव : आदिवासी समुदाय में स्वास्थ्य के कुछ पक्ष, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर एवं नई दिल्ली, 1994.

***

ग्रामीण भारत में वर्ग एवं जाति

डॉ. लालेश्वर प्रसाद यादव *
सत्यनारायण प्रसाद **

वर्ण व्यवस्था प्राचीनकाल से चले आ रहे सामाजिक गठन का अंग है जिसमें विभिन्न समुदाय के लोगों का काम निर्धारित होता था। कालांतर में आर्थिक स्पर्धा एवं भेदभाव ने वर्ण व्यवस्था से जाति व्यवस्था का रूप ले लिया। इसका कोई निश्चित प्रमाण नहीं मिलता कि जाति-प्रथा किस प्रकार और किनके द्वारा और क्यों अस्तित्व में आई। विभिन्न विद्वानों के विचारों में मत भिन्नता है। उनका मानना है कि वैदिक काल में यह व्यवस्था बहुत लचीली थी और कालांतर में यह कठोर होती चली गई। परवर्ती काल में, व्यवस्था में आई कठोरता और जातीय रूढ़िवादिता, शूद्रों की स्थिति दयनीय होते जाने से यह कार्य विभाजन के बजाय जन्म पर आधारित होती गई। इसने इस व्यवस्था पर कई प्रश्न चिन्ह लगा दिए। प्रारंभ में वर्ण व्यवस्था में केवल तीन वर्ण थे—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य। शूद्रों का वर्ण बाद में जोड़ा गया। इस प्रकार बौद्धिक एवं शारीरिक श्रम के अंतर्विरोधों से पैदा हुआ सामाजिक विभाजन समय के साथ-साथ जन्म पर आधारित विभाजन में बदल गया।

जाति एक अत्यंत पुरानी सामाजिक संस्था है। जाति सामान्यतया ऐसी व्यवस्था है जिसमें जातियों का विन्यास परम्परागत श्रेणीबद्धता के अनुसार होता है। यह एक स्थानिक समूह होता है, जिसका किसी एक व्यवसाय से पारम्परिक वंशानुगत संबंध होता है।[1] इस प्रकार, जाति व्यवस्था श्रम के विभाजन और वर्गीकरण पर आधारित समाज के श्रेणीबद्ध स्तरीकरण से संबंधित है, जिसमें सामाजिक असमानता निहित है। मैक्स बेवर जाति व्यवस्था को हिंदुत्व की मूल व्यवस्था बताते हुए कहते हैं कि ये इसे संस्थागत ढांचा प्रदान कराता है।[2] जाति किसी ग्रामीण समाज की सामाजिक व्यवस्था में किसी व्यक्ति के स्थान की पहचान प्रदान कराती है, एवं जिसका एक विशेष सामाजिक अर्थ होता है। भारतीय ग्रामीण व्यवस्था में जाति आर्थिक, राजनीतिक, वैवाहिक अंतक्रिया की एक पहचान है। कुछ विद्वानों के अनुसार, जाति प्रथा अनिवार्य रूप से एक वर्ग व्यवस्था है। वर्ग एवं जाति सामाजिक स्तरीकरण के दो महत्वपूर्ण आयाम हैं।[3] हालांकि जाति भारतीय समाज की रूपरेखा के साथ जुड़ी हुई है और वर्ग को जाति तथा शक्ति के साथ रेखांकित किया गया है। भारत में जाति की संस्था के पूर्व यहाँ वर्ण व्यवस्था थी। वर्ण व्यवस्था में स्तरीकरण वर्ग व्यवस्था के समान था। जिस प्रकार वर्गों के बीच सदस्यता में परिवर्तन हो सकता है उसी प्रकार वर्ण व्यवस्था में स्तरीकरण । की व्यवस्था थी। व्यक्ति अपने गुणों के द्वारा नए पद सोपान की प्राप्ति कर सकता था।

ब्रिटिश शासन काल में ग्रामीण भारत का जाति-वर्ग परिदृश्य : राजनीतिक हलचल, धार्मिक उथल-पुथल और विनाशकारी युद्धों के बावजूद अंग्रेजों के आगमन के पहले तक गाँव की चिरंतन प्रकृति लगभग अक्षुण्ण रही।[4] विदेशी आक्रमण हुए, राजवंश बदले, आपसी लड़ाइयों के बाद विभिन्न राज्यों के भू-भाग का बंटवारा हुआ परंतु भारतीय ग्रामीण व्यवस्था का सामाजिक-आर्थिक ढाँचा इससे लगभग

* शोध निर्देशक, एसोसिऐट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, बी. एन. कॉलेज, पटना
** शोधकर्ता, समाजशास्त्र, पटना विश्वविद्यालय, पटना

अछूता रहा था। अंग्रेजों की भारत विजय एवं भारतीय समाज के मूलभूत पूंजीवादी आर्थिक रूपांतरण के फलस्वरूप यहाँ की जनता नए सामाजिक दलों एवं नए वर्गों में संगठित हुई। हालांकि विभिन्न समुदायों में नए सामाजिक वर्गों के उदय की प्रक्रिया जटिल थी। उन नए सामाजिक वर्गों में ग्रामीण क्षेत्र में विद्यमान वर्ग थे– जमींदार वर्ग, अन्यत्रवासी, भू-स्वामी, पट्टेदार, काश्तकार, मालिकों का वर्ग, खेतिहर मजदूर, व्यापारी वर्ग, और सूदखोर महाजन वर्ग।[5] ब्रिटिश शासन प्रणाली ने भारतीय समाज में विभिन्न वर्गों को जन्म दिया। कालांतर में वर्गों ने राष्ट्रीय स्वरूप अर्जित कर लिया। हालांकि इन वर्गों का उदय अचानक एक साथ नहीं हुआ बल्कि चरणबद्ध तरीके से उद्भव हुआ। अलग-अलग प्रांतों में अलग-अलग परिस्थितियों के साथ नए सामाजिक ढांचों में बदलाव आता गया। ब्रिटिश उपनिवेशवादी हित भारतीय जनता को संप्रदायों और जातियों में बाँट कर देखने में निहित थे। इस बात के प्रमाण मिल जाएँगें कि वस्तुतः साम्प्रदायिक और धार्मिक भेदभाव को ब्रिटिश सरकार ने अपनी सतर्क नीति के अंतर्गत काफी बढ़ावा दिया है हालांकि सरकारी तौर पर वे इससे इनकार करते हैं। वास्तव में, साइमन कमीशन को स्वयं अपनी रिपोर्ट से मानना पड़ा कि जिन प्रदेशों में प्रत्यक्ष रूप से अंग्रेजों का शासन है वहाँ हिंदू-मुसलमान के बीच बैर-भाव बढ़ना एक खास विशेषता है और अंग्रेजी राज में इसकी वृद्धि हुई है।[6] यही नहीं अंग्रेजी हुकूमत ने जाति व्यवस्था को अपनी कूटनीति द्वारा तहस-नहस कर वीभत्स बना दिया। अपनी लूटनीति द्वारा भारत के प्राकृतिक संसाधनों को तो लूटा ही साथ ही उसकी नीति का स्पष्ट पक्ष धार्मिक एवं जातीय उन्माद के रूप भारतीय समाज को बार-बार तोड़ना रहा है। जातीयता का जहर बढ़ता रहाऔर छुआछूत जारी रहा। भारत के अतीत के उपरोक्त संक्षिप्त वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि जन्म लेते हुए भारत को विरासत में ऐसा ग्रामीण सामाजिक ढाँचा मिला जो असमानता पर आधारित एवं निष्क्रिय था।

स्वतंत्रता के बाद ग्रामीण क्षेत्रों में जाति-वर्ग का परिदृश्य : भारत ने एक संप्रभु राष्ट्र के रूप में जन्म के साथ ही एक निष्क्रिय और नकारात्मक सामाजिक ढाँचा विरासत में पाया। एक ओर जातीय, धार्मिक, भाषायी, क्षेत्रीयता तथा सामुदायिक बहुलवादी सामाजिक ढाँचे ने यहाँ राजनीतिक एकता को बल दिया था वहीं दूसरी ओर, भारतीय सामाजिक ढाँचे को तोड़-मरोड़ दिया। सामाजिक विभिन्नता की इस वास्तविकता ने जाति और वर्ग विभाजन से मिलकर एक ऐसे ग्रामीण परिवेश की रचना की जिसमें सामाजिक-आर्थिक सत्ता एक छोटे से वर्ग में समाहित हो गई। अंततः परिणाम यह हुआ कि बहुसंख्यक गरीब हो गए। उन लोगों की किस्मत में भूख, बीमारी, गरीबी एवं दासता ही बच गई। भूमि के स्वामित्व और अधिकार के आधार पर जाति के अंदर आर्थिक अंतर के परिणामस्वरूप एकजाति के सदस्य दूसरे के विरोधी हो गए। एक प्रभावशाली जाति दूसरी जाति पर हावी होने लगी। प्रभावशाली जाति वह होती थी जिसके पास ज्यादा भूमि होती थी और सबसे कमजोर जाति वह थी जो भूमिहीन और मजदूर थी। इस तरह के ग्रामीण जीवन की विशेषताएँ भारत के लगभग सभी हिस्सों में विद्यमान थीं।[7] सामान्यतः भारतीय ग्रामीण जीवन में जाति एवं वर्ग, पदस्थिति की आरोपित व्यवस्था के रूप में विद्यमान है। जाति क्रमानुरूप, प्रत्येक जाति की तुलनात्मक ऊंच-नीच उसके परम्परागत कार्य-व्यवसाय से निर्धारित होती थी। संसाधनों का समुचित वितरण नहीं होने के कारण जाति-व्यवस्था और वर्ग व्यवस्था का रूप विकराल होता जा रहा था। निचली जातियों का शोषण और दमन हुआ। जाति व्यवस्था का सबसे घिनौना रूप ग्रामीण इलाकों में ही देखने को मिला, जिसमें स्वतंत्रता पूर्व से चली

आ रही अछूत व्यवस्था का निराकरण नहीं हो पा रहा था। मंदिरों में प्रवेश निषेध, कुओं, तालाबों में जाने से रोक इत्यादि जैसे मामले स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी ग्रामीण इलाके में दिखाई दिए। इन इलाकों में सबसे नीच एवं छोटे दर्जे का काम जैसे मरे जानवरों की खाल निकालना, चमड़े का काम, मैला ढोने का काम इत्यादि करने वालों को अछूत माना जाता था। वर्ण व्यवस्था के अनुसार हरिजन या अछूत को जाति व्यवस्था से अलग माना गया। हरिजन को अन्य चार वर्णों से दूर रहना होता था। लेकिन किसी भी आर्थिक एवं सामाजिक उत्सव में इन्हें उसका आंतरिक भाग माना गया। कृषि क्षेत्र में, नौकर के रूप में, गाँवों को साफ-सुथरा रखने के लिए, ढोल बजाने तथा सामूहिक भोजन में लोगों के द्वारा जूठे पत्तलों को साफ करने का काम इन अछूतों को दिया जाता था।[8] ग्राम समुदाय में अधिक्रमिक समूह होते थे। प्रायः प्रत्येक के अपने-अपने अधिकार कर्तव्य तथा विशेषाधिकार थे। सर्वोच्च जाति के पास वे शक्तियाँ एवं विशेषाधिकार होते थे जो निम्नतर जातियों के लिए मना थे।

कोई भी सामाजिक व्यवस्था अचल नहीं रहती है। बदलते सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिवेश के साथ समय-समय पर सामाजिक व्यवस्था परिवर्तित होती रहती है। स्वतंत्रता के बाद भारतीय राष्ट्र का सुदृढ़ीकरण और संस्थागत संसाधनों का संचालन, एकीकरण के अनुकूल सामाजिक ढाँचे का विकास, सामाजिक न्याय को प्रोत्साहित करने वाली नीतियाँ, वीभत्स असमानताओं का उन्मूलन और समानता उपलब्ध करना शामिल था।[9]संविधान ने सामाजिक असमानता को दूर करने के लिए हर प्रकार के भेदभाव चाहे वे लिंग, धर्म या जाति आधारित हों, का विरोध किया औरसमाप्त करने की घोषणा की। कई सामाजिक सुधार एवं कल्याणकारी कानून पास किए गए। अछूत प्रथा की समाप्ति की घोषणा हुई। बड़े आर्थिक परिवर्तन हुए। कृषि उत्पादन एवं संबंधों के व्यावसायीकरण, ठेकेदारी प्रथा, फैक्टरियों, मंडियों, सरकारी सेवाओं, फौज, शिक्षा इत्यादि में गांव से बाहर उभरते अवसरों के फलस्वरूप अछूतों की स्थिति में परिवर्तन आया।[10] कानून बनाकर जमींदारी को समाप्त कर दिया गया और भारतीय संविधान में छूआछूत और जाति प्रथा से जन्म लेने वाली सभी सामाजिक असमानताओं को गैर-कानूनी घोषित कर दिया गया। हालांकि जमींदारी उन्मूलन तथा बाद में भूमि सुधार कानून, हदबंदी कानून के बावजूद कृषि क्षेत्र में सामंती व्यवस्था बनी रही। जमींदार तथा बड़े किसान अपनी आर्थिक, जातीय तथासामाजिक स्थिति से अपनी दबंगता बनाए रखने में सक्षम थे। परंतु कालांतर में इन सुधारों से ग्रामीण क्षेत्रों में नए मध्यम वर्ग का उदय होने लगा। ये मध्यम वर्गीय किसान या व्यापारी या छोटे-मोटे सरकारी एवं गैर-सरकारी नौकर थे।

लोकतांत्रिक व्यवस्था ने ग्रामीण आकांक्षाओं को जागृत किया और भूमिहीन तथा छोटे किसान, संगठित होते चले गए। सामाजिक एवं आर्थिक आंदोलनों ने अनेक क्षेत्रों में दलितों, शोषितों तथा भूमिहीनों को दबंगों एवं जमींदारों, भूमिपतियों के खिलाफ राजनीतिक मतदानों में भाग लेने का अवसर प्रदान किया। विभिन्न स्तरों पर चुनावी प्रक्रियाओं में भाग लेते समय जाति की संरचना और कार्यकलाप बदले हैं। जाति का लोकतांत्रिक अवतार हुआ है। जाति संघों का निर्माण किया गया है। हालांकि जाति संघ किसी गांव तक सीमित नहीं हैं परंतु इसकी शुरूआत वहीं से होती है। जाति संघ अपनी जाति-सदस्यों के लिए शैक्षणिक सुविधाएँ, भूमि-स्वामित्व, सरकारी नौकरियों में प्रतिनिधित्व की माँग करते हुए सरकार के समक्ष प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। यदि हम आशीष नंदी के उस लेख की बात करें जिसमें उन्होंने जाति को राजनीति संघनन का एक जरिया कहा है। जाति अब एक राजनीतिक

जोड़ का जरिया है न कि दूरियां बढ़ाने का।[11]राज्य की संरक्षणात्मक नीति के कारण ग्रामीण जाति व्यवस्था जो एक श्रेणी और रियायत के रूप में थी अब जाति आधारित राजनीति को नया आयाम मिला है। हालांकि उच्च जातियाँ एवं उच्च वर्गीय समुदाय अपनी स्थिति को बनाए रखने का प्रयास करते हैं, परंतु बदलते ग्रामीण परिवेश की आर्थिक उन्नति ने सामाजिक बदलाव को बढ़ावा दिया है। अपनी आर्थिक स्थिति को सुधार कर निम्न जाति तथा पिछड़े वर्ग, उच्च जातियों की प्रथाओं का अनुसरण कर उनके समूह में शामिल होने का प्रयास करते रहे हैं। एम०एन० श्रीनिवास ने इस प्रक्रिया को संस्कृतिकरण[12] का नाम दिया है। अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के अलावा वे जातियाँ जिनका पिछड़ी जाति के रूप में आकलन किया गया, उन्हें आरक्षण का लाभ दिया गया। परिणामस्वरूप भारत के विभिन्न क्षेत्रों में जातियाँ जो पूर्व में अपने को उच्च जाति की श्रेणी में मानती थी तथा जो अपने सदस्यों की खराब आर्थिक स्थिति के बावजूद पिछड़ी पुकारे जाने पर संकोच करती थीं, अब जातियों के बीच 'पिछड़ी' पुकारे जाने के लिए होड़ लगी है। इस प्रकार ग्रामीण जाति-वर्ग का स्वरूप और भूमिका समय-समय और क्षेत्रीय स्थिति के अनुसार बदलती रही है।

जाति एवं वर्ग के बीच भी संबंध एक जैसा नहीं रहा है। पंजाब की प्रतिस्पर्धात्मक अर्थव्यवस्था में जो जाति अपनी स्थिति अग्रिम रखती है वही जाति सिख एवं हिंदू जाति के उच्च स्थान पर है। ये अपने आर्थिक एवं राजनीतिक उद्देश्य के लिए अपनी जाति के लोगों को जोड़े रखते हैं। इसके विपरीत बिहार जैसे प्रदेश में जाति का खुलेआम उपयोग समाज को बाँटने में किया जाता है। राज्य को अगड़ी जाति, पिछड़ी जाति, हरिजन, आदिवासी एवं मुस्लिम में बाँट दिया गया है।[13] परिणामस्वरूप जातिगत हिंसा को बल मिला। निचली जाति समूह और अनुसूचित जाति के लोगों की बढ़ती बेरोजगारी और गरीबी के कारण उनकी दयनीय स्थिति एक दयनीय या निम्न वर्ग स्थिति के रूप में परिणत हुई। जातिगत हिंसा 'जाति युद्ध' में परिणत हो गई। परिणामस्वरूप उच्च जाति एवं उच्च वर्ग केलोगों ने कभी-कभी हरिजनों की पूरी की पूरी बस्ती के लोगों को खत्म कर दिया। जातियों के बीच एक जटिल संबंध बना है। अपने हितों की रक्षा करने के लिए उच्च जातियाँ एवं मध्यम जातियाँ एकजुट होने का प्रयास करती रही हैं। ऐसा लगता है, आर्थिक कारकों ने जाति की परम्परागत श्रेणीबद्धता को मजबूत किया है। हालांकि जाति हिंसा में निम्न जाति के लोग उच्च जाति के लोगों पर हमला बोल उनकी सामर्थ्यता को ललकारते रहे हैं। भारत के कुछ राजनीतिक एवं नीति निर्धारकों को ये डर है कि इस तरह की दूरियाँ कही वर्गों का ध्रुवीकरण और कृषीय उथल-पुथल का कारण न बनें। ऐसी संभावनाएँ भारत के गृह मंत्रालय की रिपोर्ट में व्यक्त की गईं।[14]भूमिहीन, अछूत, पिछड़े वर्ग संघर्षों से प्रेरित होकर नए-नए संगठन खड़े कर रहे हैं। जातीय हिंसा एवं वर्गीय असमानताओं ने नक्सलवाद को जन्म दिया है। यहाँ हन्ना हरेंट के वक्तव्य पर ध्यान केंद्रित होता है जहाँ उन्होंने कहा है कि किसी भी सामाजिक प्रश्न को अगर राजनीति के द्वारा सुलझाया जाएगा तो आतंक को प्रश्रय मिलेगा।[15] भारतीय ग्रामीण संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि जाति एवं वर्गीय लामबंदी, संवाद इत्यादि ने लोगों को लोकतांत्रिक प्रक्रिया से जोड़ा है। राजनीतिक चेतना ने भूमिहीनों, अछूतों, पिछड़े वर्गों को साहस प्रदान किया है। अब वे न्यूनतम मजदूरी और दूसरे अधिकार माँगने का साहस करते हैं। एक हद तक ऊंची जातियों द्वारा नीची जातियों के शोषण और अत्याचार को कम किया है। अब जातीय व्यवस्था राजनीतिक ताकत, आर्थिक ताकत द्वारा सामाजिक बदलाव का आह्वान करता है। भारत के लगभग हर

हिस्से में उच्च जाति एवं निम्न जाति के संघर्ष के परिणामस्वरूप पिछड़े वर्ग कहे जाने वाली जातियों का वर्चस्व बढ़ा है। इन पिछड़े वर्गों या मध्यम जातियों के हाथ में बढ़ती हुई आर्थिक शक्ति को राजनीतिक संस्थाओं के नियंत्रण में उनकी भूमिका और वर्चस्व में अभिव्यक्ति मिल रही है।

हरित क्रांति ने भी ग्रामीण आर्थिक व्यवस्था को मजबूत किया है। इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि हरित क्रांति भारत के सभी विकासात्मक कार्यक्रमों में सबसे सफल ग्रामीण विकास का कार्यक्रम रहा है। इसने कृषि उत्पादन को बढ़ाकर भारत में अन्न की समस्या का निदान किया है। जिसका सामाजिक स्तरीकरण में बहुत प्रभाव पड़ा है। इसके प्रभावों ने सामाजिक गतिशीलता को एक नया रूप दिया है। इसने निश्चित रूप से भारत के ग्रामीण परिदृश्य के सामाजिक एवं राजनीतिक बदलाव में अहम भूमिका निभाई है।[16] अंततः हरित क्रांति ने जाति एवं वर्ग व्यवस्था को प्रभावित कर नई ग्रामीण व्यवस्था की परिरचना की है।

संदर्भ-सूची :

(1) एम०एन० श्रीनिवास, Social Changes in Modern India, Orient Longman, 1966, p.3
(2) Max Weber, The Religion of India, in H.H. Gerth & Don Morhindala (ed), Glencese, 1958, p. 1
(3) K.L. Shanna, (Ed), Caste & Class in India, Rawat, Jaipur, 1994, p. 2
(4) Ar Desai, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजक पृष्ठभूमि, मैकमिलन, दिल्ली, 1998, पृ०-7
(5) Ibid, p. 141
(6) रजनी पामदत्त, आज का भारत,मैकमिलन इंडिया लिमिटेड, दिल्ली, 1977, पृ०-304
(7) M.N. Srinivas, Social Change in Modern India, Orient Longman Limited, 1995, p. 10
(8) एम०एन० श्रीनिवास, भारत में सामाजिकबदलाव, ओरियन्ट लांगमैन लिमिटेड,
(9) विपि चंद्रा, मृदुला मुखर्जी, आदित्य मुखर्जी, (संपा०) आजादी के बाद का भारत, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, पृ०-1
(10) वही - पृ० 582
(11) आशीष नंदी, न्यूयार्क टाइम्स, 20 अक्टूबर 1996, पृ०-3
(12) M.N. Srinivas, Social Change in Modern India, Macmillan 1995, p. 8
(13) K.L. Sharma (Ed.) Caste & Class in India, Rawat, Jaipur, 1994, p. 8
(14) Frankel, F., India's Political Economy : The Gradual Revolution, Oxford University Press, New Delhi, 2004, p. 373-374
(15) Hannah Arendt, On Reolution, Penguine, London, p. 112
(16) सुरेन्द्र जोथका, एग्रेरीयन स्टकचर्स एंड वेयर ट्रांसफोरमेसन्स, वीणा दास (संपा०) मेंए हैंडबुक ऑफ इंडिया सोसोलोजी, नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड, 2004

***

सौन्दर्य की अनुभूतिः एक वैचारिक अवधारणा

*प्रो. अजय कुमार जैतली**
*प्रीति सिंह***

सारांशः

प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक मनुष्य के आंतरिक मन में सौन्दर्य बोध होता रहा है। समयानुसार और मनुष्य की अपनी निजि भावनाओं के आधार पर इसमे परिवर्तन होता रहा है। इस लेख के आधार पर हम यही अनुमान लगा सकते है कि सौन्दर्य बोध एक अनुभूति है जो केवल महसूस की जा सकती है। सौन्दर्य का दर्शन हमें सभी ललित कलाओं में प्रदर्शित होता है, इसके अभाव में किसी कलाकृती की कल्पना करना दुर्लभ है।

शब्द– कुंजी : सौन्दर्य , दर्शन, अनुभूति, सौन्दर्य का महत्व

प्रस्तावनाः

सौन्दर्य शब्द का अर्थ एवं उसका तात्पर्य बहुत ही विस्तृत है इसकी सीमायें अनंत तक फैली हुई है, जिसका कोई छोर प्रदर्शित नही होता। जिस प्रकार विद्वान ईश्वर, धर्म और सत्य की व्याख्या या स्पष्ट परिभाषा देने में असमर्थ रहे उसी प्रकार सौन्दर्य को भी परिभाषित नही कर पाये। सौन्दर्य की कोई पूर्ण परिभाषा स्पष्ट नही हो पायी नये–नये तर्को के आधार पर नई– नई परिभाषायें प्रस्तुत की गयी और यही क्रम निरंतर चलता आ रहा है । प्रत्येक विद्वानो ने अपने– अपने मत समाज के समक्ष प्रस्तुत किये और इन्ही मतो के आधार पर समाज को सौन्दर्य से परिचित कराया। मनुष्य का मन हमेशा से सौन्दर्य की तरफ आकर्षित होता रहा है तथा सुन्दरता को देख वह सदैव अभिभूत होता रहा है लेकिन इन सब के बावजूद भी वह सौन्दर्य शब्द को स्पष्ट परिभाषा में नहीं बांध पाया।

सौन्दर्य जिसकी भावना से सभी परिचित रहते हैं किन्तु उसकी व्याख्या अलग–अलग प्रस्तुत करते हैं। इसका मूलभूत कारण यह है कि सौन्दर्य गुण–धर्म से युक्त होती है इसका अपना एक स्वाभाविक गुण है जिसका अनुभव मानव मन हमेशा करता हैं। वस्तु तो सभी काल में, देशों में समान रहती है किन्तु अनुभव करने वाला मन सौन्दर्य को ग्रहण करने में अलग–अलग होता चला जाता हैं। अतः सौन्दर्य की अनुभूति व्यक्ति सापेक्ष होती हैं।

सौन्दर्य के प्रति अभिरूचि के आधार पर ही सौन्दर्य का आस्वादन किया जाता है। ये अभिरूचि समान्यतः तीन पक्षों पर आधारित होती है। मनोवैज्ञानिक, सामाजिक तथा व्यक्तिगत। मनोवैज्ञानिक प्रभाव सार्वजनीक होता है, इसके अधिकांशतः प्रभाव समान होते हैं जैसे– प्रकाश से उल्लसित होना तथा अन्धकार से भयभीत होना। सामाजिक अभिरूचि देश–काल से प्रभावित होती है इन्हें कहीं सौन्दर्य विशालता में तो कहीं सुकुमारता में देखा गया है। व्यक्ति से प्रभावित सौन्दर्यानुभूति व्यक्तिगत अभिरूची के पक्ष में होती हैं। समान्य अनुभुतियों में समानता होते हुए भी प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे से किसी विशिष्टता के कारण भिन्न होता है, जो वस्तु एक के लिए सुन्दर है तथा वही वस्तु दूसरे के लिए एकदम उदासीन हो सकती है।

यहीं पर कुछ विचारक सौन्दर्य भावना को काम से प्रभावित मानते हैं। काम भावना अनेक तत्वों से प्रभावित होती है तथा–वातावरण संस्कार, संम्पर्क, निकटता अथवा दूरी अवस्था आदि। सौन्दर्य सुखद अथवा रूचिकर होता है इसे ही समान्यतम परिभाषा मानकर चला जाता है। क्योंकि आहलादित होना, तन्मयता, मंत्र मुग्ध होना ये सभी सौन्दर्य के व्यापक प्रभाव है। सौन्दर्य की अभिव्यिक्ति तथा कलाओं में सौन्दर्य की उपयोगिता का क्षेत्र केवल व्यवसायिक कला तक सीमित रह गया है। सौन्दर्यानुभुति भी एक ऐसी अनुभुति है जो सभी और कुछ बदलाव हो जाने के बाद भी जीवन्त बनी

* विभागाध्यक्ष, दृश्य कला विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
** शोध छात्रा, दृश्य कला विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

रहीं है। रूचि का अन्तर होना अलग बात है लेकिन सौन्दर्य को ग्रहण और असुन्दर का तीरस्कार करना सार्वभौमिक, सार्वदर्शिक तथा सार्वकलिक है।

जीवन में उपयोगी वस्तु को सुन्दरता की तुलना में श्रेष्ठ स्थान पर रखा गया है। उपयोगी वस्तुओं में सौन्दर्य समावेशी सभी चाहते हैं। इसका उदाहरण हमें प्राचीन काल से देखने को मिलता है। ई. पू. की सिन्धु घाटी सभ्यता में भी शव झाण्डों का चित्रित किया गया। इन सब उदाहरणों को देखते हुए हमें यह ज्ञात होता है प्राचीन काल से व्यक्ति अपनी उपयोगी वस्तुओं को कुरूप नहीं देखना चाहता था।

वास्तव में दुख, विद्रोह, आक्रोश, शोषण का भाव जब हमारे मन में उठता है तो कुछ समय के लिए हमारे मन से सौन्दर्यानुभव समाप्त ही हो जाता इन भावों की तीव्रता से सौन्दर्यानुभव की बाते बेगानी सी लगने लगती किन्तु जब हम विश्रामावस्था तथा निश्चिन्तता से बैठते है तो फिर से सौन्दर्यानुभुति का एहसास हमारे मन में जग उठता है। अगर हम देखे तो आज के समय का स्वप्न विशालकाय कर–कारखाने, जलाशय, बांधों, विद्युत उत्पादन के निर्माण के लिए लगा है किन्तु इसके साथ ही साथ देश की कलात्मक धरोहर को भी सुरक्षित रखने का पूर्णतः प्रयास करता है। जीवन की समान्य आवश्यकताओं को पूरा होने के साथ मनुष्य के अन्दर आनन्द और उल्लास की चेष्टा जागृत होती है। जिसे वह चित्र, नृत्य, संगीत आदि के माध्यम से पूर्ण करता है। सभी कलाओं के बीच कोई न कोई एक ऐसा तत्व अवश्य होता है जिस सूत्र में सभी कलाएं देश तथा काल की सीमा के परे बंधी रहती है। ऐसा कुछ अवश्य है जो ताजमहल के शिल्प में कॉगड़ा शैली के लघु–चित्रों में, जयशंकर प्रसाद के काव्य में तथा नृत्य की लयपूर्ण मुद्राओं में समान रूप से विद्यमान है। प्रत्येक जाति, प्रत्येक वर्ग, प्रत्येक व्यक्ति अपने लिए किसी न किसी रूपाकृति में सौन्दर्य का आधार ढूंढ़ ही लेता है। सौन्दर्य मूलतः नेत्रों का विषय है, नेत्रों के माध्यम से सुख की अनुभूति देने वाला पदार्थ ही सुन्दर कहलाता है। सुन्दर शब्द धीरे–धीरे इतना विस्तार पा गया है कि स्वाद, गन्ध, ध्वनि तथा स्पर्श आदि चेतनाओं में भी सुन्दर शब्द का प्रयोग किया जाने लगा।

निष्कर्ष :

भारत में सौन्दर्यबोध की परम्परा दुनिया में सबसे प्राचीन हैं। अपनी वैदिक परम्परा को देखें तो स्पष्ट होगा कि दुनिया के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में सौन्दर्यबोध का विकसित रूप दिखाई देता है। इन्द्र के लिए कहा गया है– **'रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव'** अर्थात् वह प्रत्येक रूप में उसी के अनुरूप बन जाता है। कठोपनिषद में यही सूक्त वायु के लिए भी कहा गया हैं। इसी तरह भारतीय दर्शन भी सौन्दर्यबोध से अनुप्राणित हैं।

संदर्भ–सूची :

1. रमेश कुंतल मेघ– सौन्दर्य – मूल्य और मूल्यांकन–नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
2. गोविंद चंद पाण्डे– सौन्दर्य –दर्शन –विमर्श – राका प्रकाशन, इलाहाबाद।
3. समकालीन कला– अंक 49– ललित कला अकादमी, नई दिल्ली।
4. डॉ. राजेंद्र वाजपेयी– सौन्दर्य – मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल।
5. डॉ. ममता चतुर्वेदी– सौन्दर्य शास्त्र –राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर।

***

मलिन बस्ती के किशोरियों की समाज में भूमिका एवं पहचान के मुद्दे

प्रीति पटेल *

सारांश- ***समकालीन परिवेश में मलिन बस्ती की किशोरियाँ समाज में अपनी भूमिका तथा स्वयं के पहचान को लेकर चिंतित रहती हैं। स्वयं के सम्बन्ध में जाने इसका अवसर उनको नहीं मिलता। साथ ही मलिन बस्ती में उन्हें अनेक समस्याओं जैसे मूलभूत आवश्यकताओं में कमी, शिक्षा-स्वास्थ्य-स्वच्छता का अभाव, शारीरिक एवं मानसिक शोषण, दूषित वातावरण आदि से घिरी रहती हैं, जिनका सामना उनको दिन-प्रतिदिन करना पड़ता है। प्रस्तुत शोध में वाराणसी जनपद (उत्तर प्रदेश) के चौकाघाट स्थित आम्बेडकर नगर एवं कोनिया स्थित मलिन बस्ती की ऐसी किशोरियाँ (N=50) जिनकी उम्र 12 से 17 वर्ष की है, समाज में उनकी भूमिका तथा पहचान से संबन्धित मुद्दे का अध्ययन किया गया। मलिन बस्ती की किशोरियों से मुक्त उत्तर वाले प्रश्नों "आपके अनुसार समाज में आपकी क्या भूमिका होनी चाहिये, आपकी आज जो पहचान है उसके निर्माण में शिक्षा की क्या भूमिका है, समाज में अपनी पहचान बनाने के लिए आप किस तरह का व्यवहार करती हैं?" को पूछा गया। परिणाम में उनके द्वारा दी गयी प्रतिक्रिया के आधार पर यह पाया गया कि मलिन बस्ती की किशोरियों ने पहचान से संबन्धित विभिन्न मुद्दों जैसे शिक्षा एवं व्यवहार में शिक्षा को पहचान बनाने हेतु महत्वपूर्ण माना, इससे उन्हें समाज में इज्जत मिलेगी एवं पहचान बनाने हेतु व्यवहार में अच्छे से बात करना, सबकी मदद करना आदि को पहचान के निर्माण में महत्वपूर्ण बताया है। साथ ही उनका यह भी मानना है की परिस्थिति अच्छी न होने के कारण वे स्वयं के व्यक्तित्व में परिवर्तन नहीं कर पाती हैं। उनके सम्मुख अनेक आर्थिक, सामाजिक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। बस्ती का वातावरण अच्छा नहीं होता, मलिन बस्ती के लोग असभ्य भाषा का प्रयोग करते हैं, रहन-सहन अच्छा नहीं होता, गरीबी के कारण ज्यादा पढ़ नहीं पाते। इन समस्याओं के कारण उनकी जीवन-शैली बहुत प्रभावित होती है, जिसका प्रभाव किशोरियों की अस्मिता पर पड़ता है। इन समस्याओं को दूर करने हेतु वह पढ़ना एवं कुछ बनना चाहती है। जिससे बेहतर समाज के निर्माण में वे भी अपना योगदान दे सके।***

कुंजी शब्द - मलिन बस्ती की किशोरियाँ, समाज में भूमिका, पहचान के मुद्दे

प्रस्तावना-

मलिन बस्तियों की बड़ी संख्या आर्थिक रूप से कम विकसित देशों में शहरी केंद्रों के आसपास स्थित है, जो अधिक विकसित देशों की तुलना में शहरीकरण की निरंतर बढ़ती दर का सामना कर रहे हैं। तीव्र गति से हो रहे शहरीकरण महत्वपूर्ण चिंता का कारण है क्योंकि इनमें से कई देशों में अक्सर शहरों में लोगों की बढ़ती हुई आबादी के लिए पर्याप्त रूप से उपलब्ध कराने के लिए बुनियादी ढांचे (जैसे, सड़कों और किफायती आवास) और बुनियादी सेवाएँ (जैसे, पानी और स्वच्छता) प्रदान करने की क्षमता की कमी होती है। झुग्गी बस्ती पर शोध अभी भी जारी है, ऐसे कार्य मुख्यतः तीन निर्माणों में से एक पर केंद्रित हैं: सामाजिक-आर्थिक और नीतिगत मुद्दों की खोज; शारीरिक विशेषताओं की खोज; और, अंत में, प्रतिरूपण झुग्गी बस्तियाँ। अनेक अध्ययन यह तर्क देते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति मूल्यवान है, इसलिए मलिन बस्तियों को सही मायने में समझने के लिए अधिक समग्र दृष्टिकोण की आवश्यकता है।

अध्ययन में झुग्गी बस्तियों की वृद्धि के कारणों से संबन्धित तथ्यों पर प्रकाश डाला गया है-

I. स्थानीय विकल्प कारक जिसमें झुग्गी बस्तियों के उद्भव को कई सामाजिक-सांस्कृतिक, आर्थिक और शारीरिक कारकों से जोड़ा गया है।
II. ग्रामीण से शहरी प्रवासन साहित्य के अंतर्गत ग्रामीण से शहरों की ओर प्रवासन न केवल शहरों के वृद्धि के लिए चालक रहा है बल्कि मलिन बस्तियों के विकास के लिए प्राथमिक चालक के रूप में भी इसे पहचाना गया है।
III. गरीब शहरी प्रशासन जहाँ कठोर और अक्सर पुराने शहरी नियोजन नियमों का उपयोग किया जाता है।

* शोध छात्रा, मनोविज्ञान विभाग, म.गा.अ.हि.वि.वि., वर्धा, महाराष्ट्र।

IV. कम प्रतिष्ठित नीतियां स्थानीय और राष्ट्रीय सरकारों द्वारा विकसित अनुपयुक्त नीतियां ग़रीब शहरी प्रशासन से निकटता से संबंधित हैं और झुग्गी बस्तियों के विकास को रोकने के लिए क्षेत्रीय नेतृत्व वाली संस्थाएं हैं **(Ron Mahabir, Andrew Crooks, Arie Croitoru & Peggy Agouris, 2016)**।

बढ़ती आबादी की मांगों को पर्याप्त रूप से पूरा करने में असमर्थ कम विकास वाले देशों में झुग्गी बस्तियाँ उभर रहीं हैं और लगातार आगे बढ़ रहीं हैं। वर्तमान में लगभग 1 अरब लोग झुग्गी बस्तियों में रहते हैं, अधिकांश मलिन बस्ती के किशोर कम विकासशील देशों में स्थित हैं जो कि शहरी आबादी का लगभग 30% हिस्सा है **(United Nation, 2015)**। अगर मौजूदा स्थिति बनी रही तो झुग्गी निवासियों की संख्या 2030 तक बढ़कर 2 अरब और 2050 तक 3 अरब हो जाएगी **(UN-Habitat, 2010)**।

वर्तमान समय में मलिन बस्ती की इन समस्याओं के अतिरिक्त वहाँ निवास करने वाली किशोरियां भी बस्तियों में अनेक प्रकार की चुनौतियों का सामना दिन-प्रतिदिन कर रही है। वे जीवन के ऐसे अवस्था से गुजर रहीं होती हैं जिसका सही ज्ञान उन्हें स्वयं भी नहीं होता और वो अनेक समस्याओं में उलझी रहती हैं। किशोरावस्था को जीवन की सभी अवस्थाओं में सबसे महत्वपूर्ण माना गया है। इसे बचपन और वयस्क के बीच विकास के संक्रमणकालीन चरण के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जो उस समय अवधि का प्रतिनिधित्व करते है जिसके दौरान एक व्यक्ति जैविक रूप से वयस्क तो होता है परन्तु भावनात्मक रूप से पूर्ण परिपक्वता पर नहीं होता। इसे द्वंद की अवस्था कहा जाता है। यह एक ऐसी अवस्था होती है जिसमें तेजी से हुए परिवर्तन अपनी जगह ले लेते हैं। इस अवस्था में व्यक्ति के अन्दर एक खास प्रकार का उत्साह देखा जाता है। किशोर दिन-प्रतिदिन नवीन एवं अवास्तविक कल्पनाओं तथा आकांक्षाओं से घिरे होते हैं। जिनके पूर्ण न होने पर ये कुंठित हो जाते हैं। इस अवस्था में महत्वपूर्ण शारीरिक, मानसिक, संज्ञानात्मक, व्यवहारात्मक, सामाजिक तथा संवेगात्मक विकास होता हैं जो व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

'भारत में किशोरावस्था में एक बड़ी आबादी शामिल है- यहाँ 225 मिलियन किशोर है जिसमें कुल आबादी का लगभग पांचवा हिस्सा शामिल हैं, 21.8 प्रतिशत। कुल जनसंख्या का 12.1 प्रतिशत 10-14 आयु वर्ग के है और 9.7 प्रतिशत 15-19 आयु वर्ग में है। किशोरियों में कुल जनसंख्या का 46.9 प्रतिशत और किशोरों में 53.1 प्रतिशत शामिल है' **(Census, 2001)**।

विधि प्रतिदर्श

प्रस्तुत अध्ययन वाराणसी जनपद (उत्तर प्रदेश) के चौकाघाट स्थित आम्बेडकर नगर एवं कोनिया स्थित मलिन बस्ती से 50 किशोरियों को प्रतिभागी के रूप में सम्मिलित किया गया। प्रतिभागियों का चयन प्रतिदर्श के रूप में साधारण यादृच्छिक प्रतिदर्शन विधि द्वारा किया गया। जो **तालिका संख्या 1** में प्रदर्शित है।

तालिका संख्या: 1 प्रतिदर्श

आयु (वर्ष में)	मलिन बस्ती
12-14	32
15-17	18
योग	50

उपकरण

मलिन बस्ती की किशोरियों में समाज में उनकी भूमिका तथा पहचान के मुद्दे के अध्ययन से सम्बंधित प्रश्नावली में शोधकर्त्ता द्वारा निर्मित 3 व्याख्यापरक प्रश्नों को लिया गया। जिसमें निम्नलिखित बिन्दुएँ समाहित हैं-

- समाज में भूमिका
- शिक्षा एवं पहचान
- आदर्श व्यवहार एवं पहचान

प्रक्रिया

सर्वप्रथम अम्बेडकरनगर एवं कोनिया स्थित मलिन बस्ती में जाकर क्षेत्रीय लोगों से बातचीत करते हुए उनसे संपर्क स्थापित कर, सहयोग के लिए निवेदन किया गया। इसके बाद किशोरियों एवं उनके अभिभावकों से अनुमति मिलने पर किशोरियों को प्रश्नावली देने के पश्चात उनकों यह विश्वास दिलाया गया कि उनके द्वारा दिए गये उत्तर को पूर्णतया गोपनीय रखा जायेगा। इसका उपयोग केवल शैक्षणिक कार्य हेतु ही किया जायेगा। तत्पश्चात धन्यवाद दिया गया।

परिणाम एवं व्याख्या

प्रस्तुत अध्ययन में मलिन बस्ती की किशोरियों की समाज में उनकी भूमिका तथा पहचान के मुद्दे का अध्ययन किया गया। जिसमें 3 आत्मनिष्ठ प्रकार के प्रश्न पुछे गये। भूमिका एवं उनकी पहचान से संबन्धित प्रदत्तों का विश्लेषण व्याख्यापरक सांख्यिकीय के आधार पर किया गया। दी गई प्रतिक्रिया को मलिन बस्ती में रहने वाली किशोरियों की संख्या के प्रतिशत के आधार पर समूह में रखकर निम्नलिखित तालिकाओं का निर्माण किया गया। जिसे **तालिका संख्या 2, 3 व 4** में प्रदर्शित किया गया है।

समाज में भूमिका

तालिका संख्या: 2 समाज में भावी भूमिका और पहचान

आपके अनुसार समाज में आपकी क्या भूमिका होनी चाहिये ?		
भूमिका	**मलिन बस्ती (N=50)**	
	12-14 वर्ष (n=32)	15-17 वर्ष (n=18)
अच्छी और महत्वपूर्ण भूमिका हो	53%	50%
समाज में योगदान	12%	06%
कुछ बनना	22%	11%
पढ़ना	09%	22%
अच्छा व्यवहार	06%	11%

मलिन बस्ती में रहने वाली 12-14 वर्ष एवं 15-17 वर्ष की किशोरियों के द्वारा समाज में भावी भूमिका एवं पहचान से संबन्धित दी गई प्रतिक्रिया को **तालिका संख्या 2** में रखा गया। जिसमें **12-14 वर्ष** की **32** किशोरियों में से 53% किशोरियों ने कहा समाज में हमारी अच्छी और महत्वपूर्ण भूमिका होनी चाहिए। 22% किशोरियों ने कहा हम कुछ बनना चाहेंगी जिससे हम समाज के लिए कुछ कर पायें। 12% किशोरियों ने कहा हम समाज के विभिन्न कार्यों में योगदान देना चाहते हैं। वहीं 09% किशोरियों ने कहा हम पढ़ना चाहते हैं ताकि आगे पढ़ा सकें। जबकि 06% किशोरियों ने कहा अच्छा व्यवहार करना चाहती हैं। मलिन बस्ती की **15-17 वर्ष** की **18** किशोरियों में से 50% ने कहा समाज में हमारी अच्छी और महत्वपूर्ण भूमिका होनी चाहिए। वहीं 22% किशोरियों ने कहा हम पढ़ना चाहते हैं। जबकि 06% किशोरीयों ने कहा हम समाज के विभिन्न कार्यो में अपना योगदान देना चाहते हैं। 11% किशोरियों ने कहा हम कुछ बनना चाहेंगे तथा 11% किशोरियों ने बताया अच्छा व्यवहार करना चाहते हैं।

मलिन बस्ती की प्रतिभागी अपने आने वाले कल को सकारात्मक और उर्ध्वाधर गतिशीलता की दृष्टि से परिभाषित करती हैं जहां कुछ बनना और समाज में योगदान करना प्रमुख उद्देश्य है। यह अवलोकन महत्वपूर्ण है कि उनके द्वारा भेदभाव न करना, ईमानदार बनना, आत्मनिर्भर बनना जैसे अवयवों को महत्त्व दिया गया है।

शिक्षा और पहचान

तालिका संख्या: 3 शिक्षा, विशेष रूप से विद्यालय, एक ऐसी संस्था है जो किशोरियों की पहचान को एक सकारात्मक दिशा प्रदान करती है।

आपकी आज जो पहचान है उसके निर्माण में शिक्षा की क्या भूमिका है?		
भूमिका	**मलिन बस्ती (N=50)**	
	12-14 वर्ष (n=32)	15-17 वर्ष (n=18)
महत्वपूर्ण	50%	50%
पहचान बनती है	34%	39%
दूसरों का आदर एवं संस्कार करना आता है	12%	17%
कुछ बन सकते हैं	16%	17%
इज्जत, अच्छा व्यवहार करना आता है	09%	06%

मलिन बस्ती में रहने वाली 12-14 वर्ष एवं 15-17 वर्ष की किशोरियों के द्वारा शिक्षा एवं पहचान से संबन्धित दी गई प्रतिक्रिया को **तालिका संख्या 3** में रखा गया। जिसमें **12-14 वर्ष** की **32** किशोरियों में से 50% किशोरियों ने कहा कि आज हमारी जो पहचान है उसके निर्माण में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है। साथ ही 34% किशोरियों का मानना है कि शिक्षा से हमारी एक अलग पहचान बनती है। वहीं 16% किशोरियों का मानना है कि पढ़कर हम कुछ बन सकते हैं, अपने सपनों को पूरा कर सकते हैं। 12% किशोरियों ने बताया कि पढ़ने से हमें बड़ों का आदर करना, संस्कार करना सिखाया जाता है। वहीँ 09% किशोरियों ने बताया इससे हम दूसरों की इज्जत और अच्छा व्यवहार करना सीखते हैं। मलिन बस्ती की **15-17 वर्ष** की **18** किशोरियों में से 50% किशोरियों ने अपने पहचान के निर्माण में शिक्षा को महत्वपूर्ण बताया वहीं 39% किशोरियों ने बताया इससे हमारी पहचान बनती है। 17% किशोरियों ने कहा शिक्षा से हम संस्कारिक होते हैं। 17% किशोरियों ने बताया पढ़कर हम कुछ बन सकते हैं। 6% किशोरीयों का कहना है कि पढ़कर दूसरों की इज्जत करना व अच्छा व्यवहार करना हम सीखते हैं।

किशोरियों के जवाब से यह पता चलता है कि वे शिक्षा को संस्कार, व्यवहार और सम्मान प्राप्ति का साधन मानती है। मलिन बस्तियों की किशोरियों के सन्दर्भ में यह पक्ष विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

आदर्श व्यवहार और पहचान

तालिका संख्या: 4 किशोरियाँ स्वयं को जिस पहचान के खांचे में देख रही हैं उसके लिए कौन से और किस प्रकार के व्यवहार महत्वपूर्ण होंगे यह उनसे पूछा गया।

समाज में अपनी पहचान बनाने के लिए आप किस तरह का व्यवहार करती हैं?		
व्यवहार	**मलिन बस्ती (N=50)**	
	12-14 वर्ष (n=32)	15-17 वर्ष (n=18)
अच्छे से बात व व्यवहार करना	87%	78%
सबकी मदद करना	19%	22%
पढ़कर कुछ बनना	22%	17%
बडों की सेवा एवं उनका सम्मान	19%	06%

मलिन बस्ती में रहने वाली 12-14 वर्ष एवं 15-17 वर्ष की किशोरियों के द्वारा आदर्श व्यवहार एवं पहचान से संबन्धित दी गई प्रतिक्रिया को **तालिका संख्या 4** में रखा गया। जिसमें **12-14 वर्ष** की **32** किशोरियों में से 87% किशोरियों ने कहा समाज में अपनी पहचान बनाने हेतु सभी से अच्छे से बात व व्यवहार करती हैं ताकि सब कोई माने। वहीं 22% किशोरियों

ने कहा हम पढ़कर अपनी पहचान बनाएँगी। जबकि 19% किशोरियों ने कहा सबकी मदद करके अपनी अलग पहचान बनाएँगे तथा 19% बड़ों की सेवा एवं उनका सम्मान करके हम अपनी पहचान बनाएँगी। मलिन बस्ती की **15-17 वर्ष** की **18** किशोरियों में से 78% किशोरियों ने कहा समाज में अपनी पहचान बनाने हेतु सबसे अच्छे से बात व व्यवहार करेंगी। 22% किशोरियों ने कहा सबकी मदद करके। 17% किशोरियों ने कहा हम पढ़कर अपनी पहचान बनाएँगी। जबकि 6% किशोरीयों ने कहा बड़ों की सेवा एवं उनका सम्मान करके हम अपनी पहचान बनाएँगी।

इस प्रश्न के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि **मूल्य आधारित व्यवहार जैसे- समादर, सेवा, सम्मान; वे व्यवहार हैं जो उन्हें उनके अपेक्षित पहचान के विकास में मदद करेंगे। यह भी उल्लेखनीय है कि मलिन बस्ती की 15-17 वर्ष की किशोरियाँ समाज की समस्याओं को दूर करने और गलत के प्रति आवाज उठाने को अधिक अधिभार देती हैं।**

निष्कर्ष- समाज में भावी भूमिका और पहचान के प्रश्न में मलिन बस्ती की किशोरियों का कहना है कि समाज में हमारी अच्छी और महत्वपूर्ण भूमिका होनी चाहिए। शिक्षा और पहचान के प्रश्न पर मलिन बस्ती की किशोरियों ने समान रूप से अपनी पहचान के निर्माण में शिक्षा को महत्वपूर्ण माना, वहीं आदर्श व्यवहार और पहचान के प्रश्न पर मलिन बस्ती की किशोरियों के विचारों से पता चलता है कि वे समाज में अपनी पहचान बनाने के लिए सबसे अच्छे से बात व व्यवहार करेंगे। वर्तमान समय में शिक्षा ही एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा मलिन बस्ती की किशोरियां अपनी स्थिति में सुधार कर सकती हैं एवं अपने लक्ष्यों को पूरा करते हुए अपने जीवन स्तर को अच्छा बना सकती हैं। इसके साथ ही वे आने वाली पीढ़ी के जीवन स्तर को बेहतर बनाने के लिए उचित मार्गदर्शन कर सकती हैं, जिससे वे भी समाज में अपनी एक पहचान बना सके तथा समाज के सुधार में अपना योगदान दे सके। किशोरियां शिक्षित होकर समाज में सबकी मदद करना, बड़ों का आदर व सम्मान करना, कुशल व्यवहार द्वारा आदर्श व्यवहार की नींव रख सकती हैं।

सन्दर्भ :

Mahabir, R., Crooks, A., Croitora, A. & Agouris, P. 2016. '*The study of slums as social and physical constructs: challenges and emerging research opportunities.*' *Regional Studies, Regional Science. 3,* 399-419.

UN-Habitat. 2010. *State of the cities 2010-11 - cities for all: Bridging the urban divide.*

United Nations. 2015. *The millennium development goals report 2015.* New York, NY: United Nations.

Hurlock, E. B. 2007. *Developmental Psychology: A Life Spain Approach, Fifth Edition.* Delhi: Tata Mc Gra Hill

बैरन, आर. ए. 2015. *मनोविज्ञान, प्रथम संस्करण.* इंडिया,डार्लिंग किंडरस्ले.

पटेल, पी., त्रिपाठी, अ. कु & झा. अ. कु. 2015. *मलिन बस्ती के किशोरियों की अस्मिता का अध्ययन (अप्रकाशित लघु शोध प्रबंध).*

पटेल, पी. & त्रिपाठी, अ. कु. 2017. '*मलिन एवं गैर मलिन बस्ती की किशोरियों का आत्म-प्रत्यक्षीकरण.*' रिसर्च डायमेंशन. 3(6).

पटेल, पी. 2020. '*मलिन एवं गैर मलिन बस्ती के किशोरियों की जीवन की गुणवत्ता का एक तुलनात्मक अध्ययन.*' एनल्स ऑफ़ मल्टीडिस्सप्लिनरी रिसर्च.10(4), 102-108.

भारत की जनगणना. 2011. परिपत्र संख्या-5 (दिनांक 18 फरवरी 2010) जनगणना कार्य निदेशालय , उत्तरप्रदेश.

http://shodhganga.inflibnet.ac.in/bitstream/10603/17935/20/09_chapter%201.pdf

***

बदलते भारतीय परिदृश्य में ग्राम-जीवन (हिन्दी साहित्य के विशेष संदर्भ में)

*डॉ. शशिकला जायसवाल**

''यह संकल्प बार–बार दोहराया जाता रहा है कि भारत की आत्मा गाँवों में बसती है और गाँवों के 'कायाकल्प' से ही देश के विकास की परिकल्पना को साकार किया जा सकता है। भारत के विकास के विविध सोपानों में जंगली सभ्यता और ग्रामीण सभ्यता का काल सबसे अधिक लम्बा रहा है। हजारों वर्षों में विकसित ग्राम सभ्यता के नजदीक रहकर समृद्ध भारतीय साहित्य की रचना हुई, यह साहित्य मनुष्य के जीवनानुभवों से निःसृत हुआ। औद्योगिक सभ्यता तो बहुत नजदीक की सभ्यता है, फिर भी जैसी इसकी विभिषिका है, अल्पावधि में ही इसने वर्षों से सृजित, संरक्षित, उर्वर सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक विरासत को धूलधूसरित कर दिया। हिन्दी गद्य के प्रणेता, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र लिखते हैं– ''भारत का स्वत्व और आत्मा गाँव है, यह एक यथार्थपरक सत्य होने के साथ–साथ ग्रामीण जीवन को साहित्य का केन्द्र होने का गौरव की अनुभूति देता है।'' ग्रामीण जीवन को समझने के लिए साहित्यकारों ने अपनी लेखनी के माध्यम से समकालीन, समसामयिक सन्दर्भ के परिप्रेक्ष्य में, सांस्कृतिक, सामाजिक युगबोध को साहित्य में उकेरा है। भारतीय परिदृश्य में निरन्तर परिवर्तनशील ग्रामीण परिवेश हमारी चेतना से दूर होता जा रहा है, और हम क्या खो रहे हैं, इसका भान तक हमें नहीं है। प्रस्तुत शोध पत्र में ग्रामीण परिदृश्य की पड़ताल करते हुए, साहित्य में उसके चित्रण को अभिव्यक्ति दी गई है। ''

प्रगतिशील राष्ट्र के रूप में भारत आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक संक्रमण के भारी बदलाव से गुजर रहा है। यह बदलाव देशहित के लिए शुभकारी है या नहीं, यह तो अलग विषय है, किन्तु इन बदलावों से भारतीय जनमानस किस प्रकार उद्वेलित और प्रभावित है, यह हमारी चिन्ता अवश्य है। भारत वैश्विक पटल पर स्वयं को कितना स्थापित या विस्थापित कर रहा है, यह इस बात पर निर्भर करता है कि यहाँ की आम जनता किस हद तक, सुकून और चैन की सांस ले रही है। नई सहस्राब्दी के प्रवेश द्वार पर खड़ी मानवता इन तमाम बदलावों से किस प्रकार रूबरू हो रही है, यह हमारे चिन्तन का विषय है। निश्चित है कि यह शताब्दी सामान्य नहीं है, इसमें बहुत कुछ ऐसा है, जो पहले घटित नहीं हुआ। वर्तमान भारतीय परिवेश भौतिकवादी आदर्शों से उत्पन्न अन्तर्विरोधों और उपभोक्ता केन्द्रित बाजारवादी व्यवस्था के चंगुल में जकड़ा कराह रहा है। विकासात्मक मॉडल ने न केवल मनुष्यों वरन समूचे प्राणिमात्र के लिए अस्तित्व का संकट खड़ा कर दिया है। सम्पूर्ण पृथ्वी प्रदूषण की मार से आहत, अपने अस्तित्व के संकट से जूझ रही है। नैतिक, सांस्कृतिक एवं मानवीय मूल्यों में गिरावट तथा पारिवारिक एवं सामुदायिक जीवन में ह्रास ने स्थिति को बद से बदतर कर दिया है। विकास के जिस मॉडल की डुगडुगी पीटकर सरकारें अपनी पीठ थपथपाते नहीं थकतीं, वास्तव में वह विकास का मॉडल कितना खोखला है, इस बात का पता तब चलता है जब हम अपने देश के लोगों को रोटी के लिए तरसते देखते हैं। श्रम के मूल्य को पैरो तले रौंदते और असमानता की भीषण खाईं का विस्तार होते देखते हैं। भ्रष्टाचार, आर्थिक अपराध, घूसखोरी, कालाधन में वृद्धि, पूंजीपति घरानों की बढ़ती सम्पत्ति, रुपये का गिरता मूल्य, निजीकरण आदि–आदि समस्याओं के बढ़ते ग्राफ ने आम आदमी के जीवन को संकटग्रस्त बना दिया है।

हालांकि सब कुछ निराशाजनक ही नहीं है, भारत के पास विस्तृत भू–भाग है और विश्व के मानचित्र में उसकी भू–राजनैतिक –रणनीतिक दृष्टि से अवस्थिति विशाल कृषि योग्य भूमि है। यहाँ छः ऋतुएं, समृद्ध जैव संपदा, पर्याप्त खनिज सम्पदा, विश्व की दूसरी सबसे बड़ी जनसंख्या, विशेषकर सर्वाधिक युवा जनसंख्या, विशाल श्रमशक्ति, वैज्ञानिक–तकनीकी विशेषज्ञों की बड़ी जमात है, जिसने सूचना प्रौद्योगिकी, बैंकिंग–वित्तीय क्षेत्र, शिक्षा एवं स्वास्थ्य सेवाओं तथा विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र

* असि. प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, राजकीय महिला पी.जी. कालेज, गाजीपुर, (उ.प्र.)

में देश के भीतर और बाहर असाधारण उपलब्धियाँ हासिल की हैं। समृद्ध सामाजिक–सांस्कृतिक परम्पराएं, व संस्थाएं भारतीय परिदृश्य के उज्ज्वल पक्ष हैं। लेकिन उस सत्य से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि देश की आधी से अधिक जनसंख्या गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करने को मजबूर है। 5 करोड़ से अधिक कुपोषणग्रस्त लोग, बढ़ती बेरोजगारी, भुखमरी, विषमता, खाद्यान्न सुरक्षा के समक्ष गहराता संकट, बीमारियों और महामारियों से ग्रस्त एवं लाचार देश का एक बड़ा तबका स्वच्छ पेयजल एवं 'सैनिटेशन' की सुविधा से विमुख है। वर्तमान भारतीय परिदृश्य अनेक विरोधाभासों और विसंगतियों का पिटारा है। पिछली दो शताब्दियों के दौरान विज्ञान की उपलब्धियों के द्वारा अनेक सफलताएँ हासिल की गई हैं। जीवन की सुख–सुविधा के अनेक उपकरण विकसित हुए हैं। यातायात एवं संचार क्रान्ति के समूचे विश्व की दूरी को नाप कर वैश्विक ग्राम की परिकल्पना को साकार कर दिया है। कुल मिलाकर मंगल, चांद, ग्रह, उपग्रह, रोबोट की बात को वास्तविकता के धरातल पर आरोपित करने वाला मानव, वैश्विक ग्राम को स्वीकार करने वाला मानव, क्या सचमुच, अब वही मनुष्य रह गया है, जिसके लिए कभी तुलसी दास लिखते हैं ''परहित सरिस धर्म नहीं भाई'' या राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त लिखते हैं, ''यह पशु प्रवृत्ति है कि आप–आप ही चरे'। वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे'' – यह अत्यन्त विचारणीय एवं विमर्श का विषय है।

मानव के विकास और उसकी तथाकथित प्रगति के क्रम में आज का दौर महत्वपूर्ण है, क्योंकि आज पूरा विश्व एक गाँव का रूप ले चुका है। इस वैश्विक गांव का हर व्यक्ति दूसरे के बारे में आसानी से जानकारी हासिल कर सकता है। यह तो एक पक्ष है कि जहाँ इस जानकारी ने हमें एक दूसरे के नजदीक किया है, वहीं दूसरी ओर इस जानकारी को पाने के क्रम में जो व्यस्तता बढ़ी है, उसने हमें आत्मीयता से विलग कर दिया है। सब कुछ जानते हुए भी वह आत्मीयता, रागात्मकता ही तो है जो हमें जोड़ती है, अब खो सी गई है। वैश्विक ग्राम की बात करते–करते हम उस गांव को भी विस्मृत कर बैठे हैं जिसने हमें जीने की कला सिखाई। आधुनिकता की चकाचौंध, नगरीय सभ्यताओं के तेजी से होते फैलाव में गांव कहीं है ही नहीं, या है भी तो अपनी दुश्वारियों में भी मौन। यह वही देश है जिसके बारे में बचपन से देखते–सुनते आये हैं कि... भारत एक कृषि–प्रधान देश है, और यह भी कि भारत की आत्मा गांवों में बसती है। गांधी जी भी कहते थे कि हमारा देश तो गांवों में रहता है, देश को आगे बढ़ाना है तो पहले गांव को आगे बढ़ाना होगा। ग्रामीण विकास के तमाम मॉडल बनाए गये, विकास का खाका खींचा गया, कुल मिलाकर वे सारे जतन किए गये जिससे गांव, नगर में तब्दील किये जा सकें। आजादी के लगभग आधी शताब्दी बीतते–बीतते 21वीं सदी के विकसित मॉडल में आ बैठें हैं हम। वह गांव जो अपने नैसर्गिक सौन्दर्य, रिश्ते–नातों की संवेदनशील स्नेह सूत्रता तथा पारम्परिक भाव–बोध के साथ एक दूसरे के सुख–दुख को साझा करता हुआ जीवन को अनजाने ही एक विराट अर्थ प्रदान करता रहा है। खुले नीले आकाश के नीचे आत्मस्थ सन्यासी की तरह अपने में मस्त गांव दुनियावी हलचलों से बेखबर निर्विकार जीवन का साकार स्वरूप प्रस्तुत करता रहा है। ग्रामीण संस्कृति श्रम संस्कृति की साधिका रही है। जो कुछ भी श्रम से प्राप्य है, उसी से सन्तुष्ट हो रहना, इसकी अन्यान्य विशेषता के रूप में देखा जा सकता है। श्रम से ही सभ्यताएं विकसित हुई हैं। श्रम ही वह सोपान है जिस पर पांव रखकर आज मानव विज्ञान की चरम उपलब्धियों तक पहुँचा है। श्रम ने ही मनुष्य को मनुष्य बनाया है। अर्थात् गांव की श्रम–संस्कृति मनुष्य की प्रकृति और पहचान की संस्कृति है। सदियों से ही गांव आत्मनिर्भर और समृद्ध रहे हैं। उपजाऊ भूमि और अनुकूल जलवायु के कारण कृषि को उत्तम व्यवसाय माना गया है। खेती का कार्य धर्म और धरती को माता कहा जाता रहा है। कृषि का व्यवसाय अन्य वैकल्पिक व्यवसायों जैसे पशुपालन हस्तशिल्प, मत्स्यपालन, वानिकी का जन्मदाता भी था, जिसके कारण गांव के लोग जीवनयापन के संकट से ग्रस्त नहीं हो पाते थे।

वर्तमान ग्रामीण परिदृश्य से गांव गायब है, उसकी गंवई प्रकृति, जीवन–राग, सम्पूर्ण ग्राम्य–संस्कृति संकटग्रस्त है। उसकी अस्मिता संकटापन्न है। ग्रामीण जीवन की पुरानी पहचान 21वीं सदी के शुरुआती दौर से ही बदलती गई है। हर तरफ नैतिकता पर लोकतांत्रिक व्यवस्था के दूषित परिवेश से गांवों का वातावरण अनैतिकता के शिकंजे में कसता जा रहा है। कृषि, जो ग्राम जीवन का

मूलाधार है सुनियोजित कृषि व्यवस्था के अभाव एवं मंहगे तथा आधे–अधूरे साधनों के कारण कमजोर होती जा रही है। किसानों को उनके हाड़तोड़ परिश्रम के बावजूद भी उपज का उचित मूल्य न मिलना, कालाबाजारी आदि ने किसानों की कमर तोड़ी है। भारतीय गांव अपने आप में गणराज्य हुआ करते हैं। औपनिवेशिक शासन, औद्योगीकरण और शहरीकरण ने इसकी अर्थव्यवस्था को क्षति ही नहीं पहुँचाया बल्कि इसके सामाजिक ताने–बाने को भी विकृत किया है। रही–सही कसर भूमण्डलीकरण ने पूरा कर दिया और उपभोक्तावादी संस्कृति को गांवों में पहुँचाकर प्रत्येक वस्तु को बाजार बना दिया।

हिन्दी साहित्यकारों ने हर स्तर पर इसे समझा भी है और परोसा भी है। जैसे ही हम कथा साहित्य की बात करते हैं, हमारे मन मस्तिष्क के सामने एक नाम बिजली की तरह कौंध जाता है, और वह नाम है ''मुंशी प्रेमचन्द'' का, जिनका नाम लिये बगैर आधुनिक परिवेश में भारतीय किसान एवं ग्रामीण जीवन का समझना कल्पनातीत है। हालांकि प्रेमचन्द से 10 वर्ष पूर्व लगभग 1926 में शिवपूजन सहाय –'देहाती दुनिया' लिख चुके थे, जिसको आंचलिक उपन्यास की संज्ञा से अभिहित किया गया। इसके बाद फणीश्वर नाथ रेणु दूसरे बड़े ऐसे उपन्यासकार हैं जिन्होंनें गांव को केन्द्र में रखकर साहित्य–साधना की। आजादी के सात साल बाद 1954 में आया ''मैला आँचल'' ने पूर्णिया बिहार जिले की व्यथा–कथा को संपूर्णता में उकेरा है।''इतना तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि अंचल को और उसकी कथा–व्यथा को संपूर्णता में उकेरने वाला यह हिन्दी का पहला उपन्यास है और 'गोदान' की परम्परा में हिन्दी का अगला...। इसकी कहानी व्यक्ति की नहीं पूरे गांव की कहानी है। वह अंचल की जिन्दगी को सामने रखता है।''[1] किसानी जीवन को केन्द्र में रखकर प्रेमचन्द ने तीन उपन्यास लिखे–'प्रेमाश्रय', 'कर्मभूमि' और 'गोदान'। 'प्रेमाश्रय' प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद लिखा गया। इसे किसानी जीवन का महाकाव्य कहा जाता है। प्रेमाश्रय का 'बलराज' हिन्दुस्तान के नौजवान किसान का प्रतिनिधि है जो किसानों के नये तेवर का परिचय देता है। कर्मभूमि, उपन्यास में असहयोग आन्दोलन के दिनों में किसान के जमीन का हरण, लगान न दे पाने का विवशता और सबका बोझ पीठ पर लादकर हाँफते हुए किसानों की दुर्दशा का मार्मिक चित्रण हुआ है। किसानों की भूमि औने–पौने दामों में खरीदकर उसे उद्योगपतियों के हवाले करते जाने की नीति पर व्यापक प्रकाश डालते हुए ललित शुक्ल लिखते हैं– '' जनता की जमीन सरकार टके के भाव खरीदती है। वही जमीन छोटे–छोटे प्लाटों में बदलकर बहुत ऊँचे दामों में बेचती है।''[2] इसी क्रम में कृषक जीवन का औपन्यासिक दस्तावेज 'गोदान' को भी देखा जाना चाहिए। जहाँ कृषक जीवन का यथार्थ अपने अनेक बाहरी और भीतरी पर्तों के साथ उद्घाटित हुआ है। गोदान के नायक 'होरी' के रूप में प्रेमचन्द ने भारतीय किसान के त्रासद जीवन का यथार्थ चित्र खींचा है। रामविलास शर्मा लिखते हैं– ''होरी का चरित्र भारत के अजेय किसान का चरित्र है 'गोदान' उसके भगीरथ परिश्रम की गाथा है।''[3] ग्रामीण जीवन को तमाम कथाकारों ने उकेरने का लगातार प्रयास किया है। ''प्रेमचन्द्र के बाद भी अनेक कहानियाँ और उपन्यास ग्रामीण जीवन को केन्द्र में रखकर लिखे गये जिनमें रागदरबारी, भूदान, लोकऋण, सोना–माटी, धरती धन न अपना, अग्निपर्व, इदन्नमम, चाक। और भी यशपाल का झूठा–सच, सबहिं नचावत राम गोंसाइ(भगवती चरण वर्मा,) आंधा गांव, नीम का पेड़(राही मासूम रज़ा), करवट(अमृतलाल नागर), महाभोज, (मन्नू भण्डारी), तमस (भीष्म साहनी) का साहित्य में विशेष स्थान है।''[4]

आजादी के बाद हिन्दी कहानी को लगभग 72 वर्ष हो चुके हैं। हिन्दी कहानी में 1970 से पूर्व का समय अकहानी के रूप में झेले गए किसी बुरे सपने के समान है जिसमें समस्त मानवीय मूल्यों पर प्रश्नचिह्न लग गये थे। हालांकि औद्योगीकरण और भूमण्डलीकरण के प्रसार के द्वारा विकास का जो खाका बनाया गया, वह बहुत हद तक सही था लेकिन हमारे लोगों को उसका सही फायदा न मिल सका। इसकी प्रमुख कारण राजनीतिक इच्छा शक्ति की कमी माना जा सकता है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ अपने उद्योग स्थापित करने के लिए भूमि की आकांक्षा रखती हैं और हमारी सरकारें भूमि अधिग्रहण कानून का माखौल उड़ाते, किसानों की जोत योग्य भूमि, उन्हें मुहैया कराती है। अधिग्रहण के बदले किसानों को उचित मुआवजा नहीं मिलता और कई मामलों में तो स्थिति और भी बदतर है और फिर

मुआवजा, किसान की जमीन का मूल्य नहीं, क्योंकि किसान के लिए उसकी जमीन विक्रय की चीज नहीं। संवेदनात्मक और भावनात्मक पहलू को दरकिनार कर भी दें तो विस्थापन का संकट अपने आप में एक बड़ी चुनौती है फिर खेती योग्य भूमि का निरन्तर घटते जाना देश के लिए खाद्यान्न संकट का एक बड़ा कारण है। किसान भूमि का मूल्य लेकर गुजर–बसर करता, धीरे–धीरे मजदूर की श्रेणी में आ खड़ा होता है। किसान का मजदूर हो जाना इस पीड़ा को वही समझ सकता है, जिसने इसे जिया हो।

वर्तमान समय और समाज जिसे हम उत्तर आधुनिकता कहते हैं, इस उत्तरआधुनिकता का लबादा धारण किए आज का आम–आदमी नगरीय चाल–चलन, आचार–व्यवहार को अपनाने के लिए आकुल है। उपभोक्तावादी और बाजारवादी प्रकृति जो गांवों में अपनी पैठ बना चुकी है, वह निरन्तर ग्रामीण संस्कृति पर चोट कर रही है। ठेठ देहाती जीवन–मूल्यों को धराशाई करती अपसंस्कृति का दर्शन खेत–खलिहानों व पगडंडियों तक में हो रहा है। इसे हम विघटन कहें या विकास अथवा सामाजिक बदलाव लेकिन यह कितना हितकारी है, यह चिन्तन का विषय है। साहित्य सदैव से ग्रामीण संस्कृति और चेतना का वाहक रहा है। साहित्य के माध्यम से यह विघटन या बदलाव लगातार अभिव्यक्त होता रहा है। ग्रामीण संस्कृति, उसका यथार्थ, उसकी संवेदनाएं, पीड़ा, संत्रास, छूटते जाने की छटपटाहट को महसूस कर, उसे साहित्य की विविध विधाओं के माध्यम से वाणी देने का कार्य साहित्यकार करते रहे हैं। यहाँ पर हम विशेष रूप से कविता, कहानी और उपन्यासों में चित्रित ग्राम्य–जीवन के विशेष परिप्रेक्ष्य में उसकी पड़ताल करने का प्रयास करेंगे। जैसा कि सर्वविदित है सन् 1900 के बाद साहित्य की ये विधाएं अपने विकसित और परिपक्व रूप में सामने आती हैं। यदि हम कथा साहित्य की बात करें तो हिन्दी कहानियों और उपन्यासों की एक लम्बी फेहरिस्त हमारे सामने हैं जहाँ ग्राम्य जीवन अपनी सम्पूर्ण व्यथा–कथा के साथ विराजमान है।

प्रकारान्तर से हिन्दी कहानी में गांव पुनर्जीवित होता है। रामधारी सिंह दिवाकर और मिथिलेश्वर जैसे कथाकारों का पदार्पण होता है। बीसवीं सदी का आठवां और नवां दशक अपनी एक विशेष उपलब्धि जनपक्षीय चेतना के साथ सामने आता है, जो गांव और ग्रामीण संदर्भों से जुड़ा है। प्रेमचन्द और रेणु की परम्परा का निदर्शन विजयकान्त, संजीव, शिवमूर्ति, नवेन्दु, श्रीकान्त, मोहन सिंह यादव, उदय प्रकाश आदि कहानीकारों में होता है। राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, मोहन राकेश, उषा प्रियवंदा, कृष्णा सोवती, हरिशंकर परसाई, शैलेश मटियानी आदि कहानीकारों ने अपनी पैनी दृष्टि से ग्रामीण जीवन की पड़ताल की। गंवई जीवन के महान चितेरे विवेकी राय का अन्तर्मन गांवों की दशा–दुर्दशा पर अपनी लेखनी चलाते हुए उसकी पीड़ा का गहराई से अनुभूत करती है। अपने एक संस्मरण ''गांव पर बनाम गांव'' में उन्होंने भारतीय गांवों की बदलती तस्वीर और एक ग्रामवासी से उसके गांव के छिन जाने की व्यथा को उकेरते हुए लिखा है– ''हाय मेरा गांव छिन गया। किसने छीन लिया? बुढ़ापे के सुविधाजीवी रोगों ने? रोजी–रोटी के दबावों ने? अपनों के भीतरघातों ने? संस्कारहीन नयी पीढ़ी के बदलते चेहरों ने? गांव के धक्कामार परिवर्तनों ने?''[5]

आधुनिक हिन्दी कविता अपने विकास के क्रम में अनेक पड़ावों से गुजरी है, उसकी चर्चा हमारा वर्ण्य–विषय नहीं है। छायावादी कवियों में सुमित्रानन्दन की कविता 'ग्राम्या' में ग्राम्य जीवन के सहज बिम्ब उभरते दिखलाई देते हैं। निराला की रचना 'नये पत्ते' को ग्राम–जीवन के संदर्भ में देखा जा सकता है। ग्रामीण जीवन का सर्वसुलभ चित्र किसान है और इसके विविध पक्षों को कवि त्रिलोचन की कविताओं में स्थान मिला है। जैसा कि पहले भी कहा गया है ग्रामीण संस्कृति श्रम संस्कृति का दूसरा नाम है किन्तु अनवरत श्रम के बावजूद भी किसान जीवन की आधारभूत सुविधाओं से वंचित है, –

''उस ओर क्षितिज के कुछ पांच कोस की दूरी पर
भू की छाती पर फोड़ों से है उठे हुए कुछ कच्चे घर
मैं कहता हूँ खण्डहर उसको, पर वे कहते हैं, उसे ग्राम
...पशु बनकर नर पिस रहे जहाँ नारियाँ बन रही हैं गुलाम
पैदा होना फिर मर जाना बस यह लोगों का एक काम।''[6]

भूमिहीनता की स्थिति में किसान का मजदूर हो जाना और जीवन की सामान्य जरूरतों के लिए भी मोहताज होने का दर्द कवि ओमधीरज की कविता में दिखता है–

''सरकारी सेवक हो कोई या धन्धा व्यापारी
तीस नहीं सत्तर में भी वह खा लेगा तरकारी
शुद्ध किसान मजूर बना है
अब तो भीगी बिल्ली''[7]

खेती हिंसक हो गई है, धरती बेचैन है। आधुनिकीकरण और यन्त्रीकरण के साथ कीटनाशक आदि हथियारों से उसके भीतर मारकाट मची है। कृषि भूमि के अधिकाधिक दोहन से उसका स्वास्थ्य बिगड़ रहा है। किसान स्वयं को अभिशप्त महसूस कर रहा है। बढ़ती आबादी, घटती जोत, छिनती जमीन, बढ़ती लिप्सा, मुक्त अर्थव्यवस्था, बाजारवाद को समेटते अपनी एक अन्य कविता– ''नहीं मुँडेरे गाँव में'' में कवि ओमधीरज कहते हैं–

''दवा डालकर खेत दूहते बढ़े पेट के मारे
कीटपतंगों का क्या होगा, किंचित नहीं विचारे
किसी और ग्रह पा जाने की खुजलाहट है पांव में
...खेत बेचकर फ्लैट खरीदो, कहते कुशल खिलाड़ी
सपनों के सौदागर हैं वे हम हैं निपट अनाड़ी।
पेड़ चीन से मँगवा देंगे चाहे लो जिस भाव में
नहीं मुँडेरे गाँव में।''[8]

खेती अब धर्म नहीं अर्थ है। पैसा बोओ, पैसा कोटो, यही विकास है और यही आज का सत्य भी–

''सब खरीद–विक्री हुआ, रीत–प्रीत त्यौहार।
गांवों में भी आ गया चूल्हें तक बाजार।''[9]
(डॉ0 रोधेश्याम शुक्ल की कविता ''अब अपने ही गांव में कितने गांव'')।

वस्तुतः साहित्य में ग्राम–जीवन सदैव से ही अपनी पूर्णता में विद्यमान रहा है। साहित्यकारों की आत्मा ग्रामीण परिवेश और उसकी माटी में रच–बसकर एक नई ऊर्जा और नई दृष्टि से उसके सुख–दुःख को देखा भी है और समय–समय पर उसके यथार्थ को लेखनी के माध्यम से जीवंत भी किया है। वर्तमान समय में भी अनेक साहित्यकार गांव के बदलते परिदृश्य और उसकी संस्कृति को वाणी दे रहे हैं। विविध विधाओं के द्वारा ग्राम–जीवन साहित्य में साकार हो रहा है। वर्तमान युवा पीढ़ी और शहरी परिवेश में रचे–बसे, पालित–पोषित बच्चे जिन्होंने गंवई माटी का रंग नहीं जाना, उसकी सुगन्ध को अनुभव नहीं किया, साहित्य उन्हें इनसे दो–चार कराने का कार्य कर रहा है। वर्तमान में हम संक्रमण के दौर से गुजर रहे हैं, ऐसी स्थिति में पुनः गांवों की ओर लौटना ही विकल्प दिखता है। आज गांव की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक स्थिति पर संवेदनशील मन से विचार करने की आवश्यकता है। गांवों की विपन्नता के चलते जो पलायन की स्थिति उत्पन्न हुई है, उस पर लगाम लगाने की जरूरत है। साहित्यकारों का दायित्व ऐसे समय और भी बढ़ जाता है क्योंकि ऐसा वक्त आ ही गया है जब ''अभिव्यक्ति के खतरे उठाने ही होंगे, तोड़ने ही होंगे मठ और गढ़ सब''(मुक्तिबोध)। मानवीय सम्बन्धों, नैतिक मूल्यों और जीवन के श्रेष्ठ सरोकारों को यदि मरने से बचाना है तो हर हाल में गांव को बचाना होगा। विकास होना चाहिए किन्तु विनाश नहीं, गांव को ग्लोबल होना है किन्तु अपनी सांस्कृतिक विरासत को गिरवी रखकर नहीं, उसे सहेजते और समेटते हुए। लोककलाओं, लोकबोलियों, लोकगीतों, लोकपरम्पराओं, रीति–रिवाजों, खान–पान, वेश–भूषा को नये सिरे से परिष्कृत, परिमार्जित करते हुए उसमें आमूलचूल परिवर्तन करते हुए, न कि उसे जड़ से काटते हुए। विकास का पहिया चलना चाहिए लेकिन किसानों की गर्दन पर नहीं। यह हम सभी का दायित्व है और यह दायित्वबोध हम सबको जितना शीघ्र होगा, विनाश की सम्भावना उतनी ही कम होगी। क्योंकि–

आज नहीं तो कल इसे, आना होगा गाँव।
हार चुकेगा, जब शहर सकल विकासी दांव।।

संदर्भ सूची :

1. गोपाल राय, हिन्दी उपन्यास का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 151
2. रामदरश मिश्र, ज्ञानचन्द गुप्त–सं0 'कथाकार प्रेमचन्द', राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृ0 144
3. रामविलास शर्मा : प्रेमचन्द और उनका युग, ''राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, पृ0 96
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास, Sahityaganga.com
5. डॉ0 रामकठिन सिंह, सं0 शब्दिता(पत्रिका), अंक जनवरी–जून 2016, पृ0 09
6. शब्द–ब्रह्म, ई–शोध–पत्रिका : 17 जुलाई 2016 अंक, पृ0 52
7. रामकठिन सिंह संपादक शब्दिता(पत्रिका), अंक जनवरी–जून 2016, पृ0 69
8. वही, पृ0 69
9. वही, पृ0 69

***

पण्डित जवाहर लाल नहरु व श्री जय प्रकाश नारायण पर मार्क्सवाद का प्रभाव

*डॉ. कौशलेन्द्र दीक्षित**

प्रस्तुत शोध–पत्र में मैं मार्क्सबाद का पं0 जवाहर लाल नेहरु व श्री जय प्रकाश नारायण पर प्रभाव पड़ा उसका वर्णन करने का प्रयास कर रहा हूँ। वास्तव में पं0 जवाहर लाल व श्री जय प्रकाश नारायण पर मार्क्सबाद का गहरा प्रभाव पड़ा। उपर्युक्त दोनो विचारको के तुलनात्मक अध्ययन से पता चलता है कि दोनो विचारक किस प्रकार मार्क्सबाद से प्रभावित हुये। दोनो विचारको ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया कि मार्क्सवाद का उनके ऊपर क्या प्रभाव पड़ा। दोनो विचारको, के चिन्तन पर मार्क्सबाद पूरी तरह छा गया। अब मैं अपने इस शोध–पत्र में पं0 जवाहर लाल नेहरु व श्री जय प्रकाश नारायण का अलग–अलग उल्लेख करने जा रहा हूँ, किस प्रकार दोनो विचारको ने मार्क्सबाद को स्वीकार किया।

जवाहर नेहरु का चिंतन मोतीलाल नेहरु, महात्मा गाँधी ऐनी वेसेन्ट, ब्रुकस, रसेल, काष्ट, कार्ल मार्क्स, स्पेन्सर, आइन्सटीन, आस्कर वाइल्ट जार्ज, स्टूअर्ट मिल जार्ज बर्नाड आदि से प्रभावित था। उनके चिन्तन का व्यवहारिक पक्ष निखारने में निर्णायक भूमिका गाँधी जी की ही रही है। पं0 नेहरु के शब्दों में–''मैं पूर्व और पश्चिम का अजीव सा मिश्रण बन गया हूँ। शायद मेरा विचार और मेरी जीवन दृष्टि पूर्वी की अपेक्षा पश्चिमी अधिक है।''

अतः स्पष्ट है कि नेहरु के चिन्तन पर सर्वाधिक स्पष्ट और गहन प्रभाव मार्क्सवाद और गाँधीवाद का ही था।

जवाहर लाल नेहरु द्वितीय महायुद्ध तक मार्क्सवाद से विशेष प्रभावित थे। उन्होंने स्वीकार किया था कि– ''कार्ल मार्क्स और लेनिन को पढ़ने से मेरे ऊपर गहरा प्रभाव पड़ा। जिन्दगी की समस्याओं के गूढ़ और तात्विक ढंग से मैं हैरान था और उन्हें सुलझाने के स्पष्ट वैज्ञानिक विश्लेषणात्मक और सीधे साधे तरीके और उपाय मुझे बेहद पसंद आते थे। बीते इतिहास और मौजूदा घटनाओं को ज्यादा अच्छी तरह समझने सोचने में मदद मिलती थी।

''इसी आधार पर शशी भूषण ने अपनी पुस्तक नेहरु और मार्क्स वाद में लिखा है ''मार्क्स वाद में यकीन करने वाली पार्टी का सदस्य न होने के बाबजूद नेहरु ने मार्क्सवादी विचारधारा के प्रचार के लिए इतना अधिक काम किया जितना अधिक कथा–कथित मार्क्सवादी पार्टियाँ न कर सकीं।'' उन्होंने आगे लिखा है कि नेहरु ने मार्क्स वादी दर्शन के एकात्मक तथा चिन्तन और पदार्थ को अद्धैतता, पदार्थ की निरन्तर गतिशीलता, तत्वों के परस्पर संघर्ष की घटनाओं के कारण तथा व्यापक प्रभाव की क्रिया प्रतिक्रिया और उसके संयोग के माध्यम से क्रमिक विकास तथा छलॉग भरे परिवर्तनों द्वारा समाज में आने वाली क्रांतियों का मूल्यांकन करके द्वन्दात्मकता के सिद्धान्तों में अपनी आस्था प्रकट करके''। आचार्य नरेन्द्र देव ने उन्हें मार्क्स से प्रभावित समाजवादी माना है।

नेहरु मार्क्स के इतिहास के भौतिकवादी व्याख्या से बहुत प्रभावित थे। समाज में व्याप्त शोषण एवं वर्ग संघर्ष के बारे में नेहरु के विचार मार्क्सवाद से मिलते हैं। शोषण और वर्ग संघर्षो की चर्चा करते हुए उन्होंने लिखा है। हम जैसे बहुतेरे चारों तरफ अन्याय देख कर क्रोध और आवेश में भर आते हैं। पर मार्क्स के मतानुसार न तो यह बात गुस्सा करने की है और न तो नेक सलाह देने की। शोषण में शोषण करने वाले व्यक्ति का कसूर नहीं है। एक वर्ग दूसरे वर्ग की प्रभुता इतिहास की प्रगति का लाजमी नतीजा है। वक्त आने पर दूसरी अवस्था उसकी जगह ले लेती है। अगर कोई आदमी प्रभुताधारी वर्ग का है और उस हैसियत से दूसरों का शोषण करता है तो इसमें वह कोई भयंकर पाप नहीं करता। वह एक ढाँचे का अंग है और उसे गालियाँ देना फिजूल की बात है। व्यक्तियों और ढाँचे का यह भेद हम बहुत करके भूल जाते हैं। भारत ब्रिटिश साम्राज्य साही के अधीन

---

* असिस्टेन्ट प्रोफेसर, राजनीति शास्त्र विभाग, नेशनल पी.जी. कालेज, भोगाँव, मैनपुरी, उ.प्र.

है और हम अपनी सारी शक्ति लगाकर साम्राज्य शाही से लड़ रहे हैं। मगर जो अंग्रेज आज भारत में इस ढाँचे को थामें हुए हैं इनका कोई कसूर नहीं है। वे वेचारे तो एक बड़ी भारी मशीन के सिर्फ छोटे–छोटे पुर्जे हैं। कुछ लोग जमींदारी प्रथा को पुराने जमाने की चीज और किसान वर्ग के लिए बहुत ज्यादा नुकसान पहुँचाने वाली समझ सकते हैं। क्योंकि इसमें उनका भयंकर शोषण हो रहा है। मगर इसका यह मतलब नहीं है कि कोई जमींदार निजी तौर पर कसूरबार है। पूँजी पतियों पर अक्सर शोषक होने का आरोप लगाया जाता है। मगर उनकी बात भी ऐसी ही है। कसूर सदा ढाँचे का होता है, व्यक्तियों का नहीं।''

स्पष्टतः जवाहर लाल समाज को व्यवस्थाओं वर्गसंगत और वर्गीय राजनीति के सन्दर्भ में कट्टर मार्क्सवादी प्रतीत होते हैं। मार्क्स के वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त का समर्थन करके उन्होंने यह साबित करने का प्रयत्न किया कि मार्क्सवाद एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण है। यह एक ऐसा दर्शन है जो मनुष्य के जीवन की ज्यादातर हलचलों के बारे में कुछ न कुछ बातें बताता ही है। वे लिखते हैं कि ''कार्क्स में वर्ग संगत का विचार नहीं किया। उसने यह साबित किया है कि असल में वर्गसंगत पहले से ही मौजूद है। किसी न किसी रूप में पहले से ही चला आ रहा है। अपनी लिखी हुई पुस्तक पूँजी में उसका उद्देश्य था।'' आज कल के समाज की गति की नियति को नंगा करके दिखा देना।'' और ऊपर की चादर हटा देने से समाज की ध्येय वर्ग संगत जैसी दिखाई न देने वाली जबरदस्ती लड़ाई सामने आ गई। यह लड़ाइयाँ हमेशा की संघर्षो जैसी दिखाई नहीं देतीं। क्योंकि प्रभुताधारी वर्ग हमेशा अपने वर्ग के रूप में छिपाने की कोशिश करता है। लेकिन जब चालू व्यवस्था ही खतरे में पड़ जाती है। तब यह वर्ग सारे दिखावे छोड़ देता है। तब इसका असली रूप जाहिर हो जाता है। फिर वर्गो के बीच खुला युद्ध होने लगता है। जब यह होता है तब लोकतन्त्र के रुप में और मामूली कानून व कायदे सब ताक में रख दिये जाते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि यह वर्ग संघर्ष गलतफहमी से या बेचैनी फैलाने वालों की शराफत से होता है। मगर इसके खिलाफ यह तो समाज के भीतर ही झिपे होते हैं। और जब लोग स्वार्थो की टक्कर को अच्छी तरह समझने लगते हैं। तब तो वर्ग संघर्ष वास्तव में और भी बढ़ जाता है। जनता की गरीबी में जवाहर लाल नेहरू के हृदय को दृवीभूत कर दिया था। और जनता की इसी दरिद्रता तथा अघोगति के प्रति अपनी संवेदनशीलता के कारण वे मार्क्स के प्रति बहुत अधिक आकर्षित हो गये।

पं0 नेहरू पर मार्क्स वाद का यह प्रभाव था उसी के आधार पर उन्होंने यह कहा था कि दुनियाँ की ओर से हिन्दुस्तान की समस्या का एक ही हल है और वो है समाजवाद। जब में इस शब्द का इस्तेमाल करता हूँ तो मैं कोई अस्पष्ट जनसेवी तरीके पर नहीं बल्कि वैज्ञानिक और आर्थिक नजरिये से करता हूँ। समाजवाद एक आर्थिक सिद्धान्त की निसवत कुछ ज्यादा मामले रखते हैं। यह जिन्दगी का दर्शनशास्त्र और इसका यह रुप मुझे पसन्द भी है। मैं समाजवाद के सिवा कोई दूसरा रास्ता नहीं देखता। जो गरीबी, बेकारी, बेज्जती और गुलामी से हिन्दुस्तान के लोगों को निजाद दिला सके।

''इस तरह समाज वाद मेरे लिए न सिर्फ एक आर्थिक सिद्धान्त है, कि जिसकी मैं हिमायत करता हूँ। बल्कि यह एक अहम सिद्धान्त है जिसे मैं अपने दिलों दिमाग से मानता हूँ।''

पं0 नेहरू ने स्वयं कहा था कि मैं इतिहास के सम्बन्ध में मार्क्सवादी दृष्टिकोण से अधिक प्रभावित हूँ। जीवन विषयक साम्यवादी दर्शन से उन्हें राहत मिली ही साम्यवादी दर्शन का विवेचन करता है तथा भविष्य के लिए आशा की किरण देता है। मार्क्सवादी विश्लेषण की पद्धति, धर्मविरोधी एवं गुणविरोधी विश्वास विरोधी भावना ने नेहरू को सबसे अधिक प्रवाहित किया है। इतिहास में आर्थिक विवेचन से भी अधिक प्रभावित है। 1929–32 के विश्व की आर्थिक संघर्ष ने मार्क्सवादी विश्लेषण की सभ्यता को प्रकट कर दिया था।

यद्यपि मार्क्सवादी दर्शन को इन विभिन्न तत्वों से पं0 जवाहर लाल नेहरू बहुत अधिक प्रभावित थे। तथापि दर्शनों ने उन्हें पूर्ण रुप से सन्तुष्ट नहीं कर सका। नेहरू अपने पूर्ण मार्क्सवादी कहलाने को तैयार नहीं हैं। नेहरू जी ने स्वयं अपनी पुस्तक डिस्कवरी ऑफ इण्डिया में लिखा है कि

''मार्क्स तथा लेनिन के अध्ययन ने मेरे मानस को बहुत ही शक्तिशाली रुप में प्रभावित किया है तथा इतिहास एवं वर्तमान सम्बन्धों को समझने में सहायक सिद्ध हुआ है। बहुत कुछ मार्क्सवाद में ऐसा है जिसे मानने में मुझे कोई आपत्ति अनुभव नहीं हुई।

ऐसी विचारधारा है, मस्तिष्क तथा पदार्थ का अद्वेतवादी सम्बन्ध एकेश्वरवाद पदार्थ का विश्लेषण निरन्तर परिवर्तन के माध्यम एवं द्वन्द से समाज का विकास, किया एवं प्रतिक्रिया का सम्बन्ध, कार्य कारण का सम्बन्ध तथा वाद कर सका और न ही मेरे मस्तिष्क से जितने प्रश्न हैं उनका उत्तर दे सका।''

वी0पी0 वर्मा ने भी इस सम्बन्ध में लिखा है– नेहरू के मन में मार्क्सवाद और साम्यवाद के प्रति ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरूद्ध प्रतिक्रिया के रुप में या विरोध से जो सान्तवना मिलती थी उसके कारण संवेगात्मक अनुराग उत्पन्न हो गया था। वह मन की वृद्धि तथा समय के परिवर्तन के साथ बहुत कुछ झीण हो गया।''

जवाहर लाल नेहरू ने शायद सबसे बड़े व्याख्या कार लेनिन की इस चेतावनी को स्वीकारा जिसमें उसने हमें यह चेतावनी दी है कि हम मार्क्सवाद को कोई ऐसा कट्टर पन्त न मान बैठें जिसमें उलटफेर की गुन्जाइश न हो।

मार्क्सवाद के प्रति जवाहर लाल का आकर्षण युद्धधोत्तर युग में कम होता गया। 1952 में उन्होंने यह घोषणा करके साम्यवादियों को लगभग आश्चर्यचकित कर दिया। कि दर्शन विज्ञान तथा आर्थिक चिन्तन के क्षेत्र में पिछले सौ वर्षो की प्रगति ने मार्क्सवाद को पुराना सिद्ध कर दिया है। मार्क्सवादियों के वे अंध समर्थक नहीं थे। उन्होंने मार्क्स के वाक्यों को ईश्वरीय वाक्य नहीं बनाया। साम्यवादी रूप में हिंसा का जो नग्न प्रदर्शन हुआ उससे नेहरू के मन और मस्तिष्क को बड़ा आघात पहुँचा। रूस में मानव जीवन को जिस तरह कठोर शिकंजे में जकड़ दिया गया उसे नेहरू का लोकतांत्रिक हृदय बर्दाश्त नहीं कर सकता। उनके मन और मस्तिष्क में गहरी प्रतिक्रिया हुई और वे मार्क्सवाद के पूर्ववर्ती प्रभाव से मुक्त होते चले गये। साम्यवादी दर्शन की इतिहास की व्याख्या के प्रति उनका आकर्षण बना रहा। रूस की महान उपलब्धियों का उन्होंने सम्मान किया लेकिन साम्यवादियों की मताघता, हिंसात्मकता और क्रान्ति प्रियता उन्हें कभी नहीं भाई। वे आजीवन यह कभी विश्वास न कर सके कि श्रुय साधनों की प्राप्ति के लिए बुरे साधनों का आश्रय लिया जाय अथवा बुराई का दमन बुराई से किया जाये। पूँजीवाद के प्रति उनके मार्क्सवादी दृष्टिकोण में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन आया और उन्हें यह देखकर बड़ा संतोष हुआ कि पूँजीवाद अधिकाधिक सभ्य बनता जा रहा है, उसकी शोषण प्रवृत्ति संयम हो गई है तथा 'मद् भाव्यम्' पर आधारित पूँजीवाद मर रहा है। और उसमें वास्तविक लोकतंत्र के लक्षण प्रकट हो रहे हैं।

पूँजीवाद देशों की अर्थ व्यवस्था में समाजवादी गुट का दिया जाना और औद्योगिक क्षेत्र में सरकार का कुछ नियंत्रण देखकर पूँजीवाद के प्रति नेहरू का विरोध कुछ कम हो गया और स्वतंत्र भारत के प्रधानमंत्री के रूप में उन्होंने मिश्रित अर्थव्यवस्था को भारत के लिए सर्वाधिक समयानुकूल माना वे लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना के लिए सतत् जागरुक रहे।

मार्क्सवादी के प्रति जवाहर लाल नेहरू का आकर्षण युद्धोत्तर युग में क्रमशः कम होता गया। उनके अनुसार आज के आणुविक युग में मार्क्स के अनेक आर्थिक विचार महत्वहीन हो गये हैं। मार्क्स के इस तर्क से भी असहमति प्रकट की कि साम्यवाद द्वजन्दतावादी प्रक्रिया का तात्विक परिणाम है और ऐतिहासिक शक्तियें की उपज है इसलिए अपरिहार्य है।

साम्यवाद जन साधारण के कष्टों और धनिकों द्वारा सामान्य जनता के शोषण की उपज है। इसके प्रतिरोध का उपाय उन कष्टों का निवारण करना है। जिन्होंने इसे जन्म दिया है। शस्त्रास्तों की शक्ति से इसे कुचला नहीं जा सका अपनी धर्मनिरपेक्षता के बाबजूद मानव जीवन के नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों में उनका विश्वास बढ़ता गया। सच तो यह है कि यद्यपि नेहरू ने सामाजिक और समस्याओं के मार्क्सवादी विश्लेषण को अत्यन्त उपयोगी तथा विवेक सम्मत पाया तथा उनका विचार था

कि उसको हमारे देश की वर्तमान स्थितियों में अन्धे होकर लागू नहीं किया जा सकता, उसमें काफी हेर–फेर और संशोधन की आवश्यकता है।

यह स्वाभाविक था। कि नेहरू जो भारत में उत्पन्न हुये और पले, उन पर भारतीय प्रभाव अवश्य ही पड़ा। अतः इन्हीं सब प्रमाणों के कारण उन्होंने मार्क्सवादी दर्शन को भारतीय परिस्थितियों एवं वातावरण के अनुकूल बनाकर उसका भारतीय करण अथवा संशोधित मार्क्सवाद का भारतीय संस्करण प्रस्तुत किया।

श्री जयप्रकाश नारायण पर मार्क्सवाद का प्रभाव–

दर्शन और दार्शनिक अपने युग की जीवित गाथा होते हैं। युग का स्पंदन उनकी भावना से मुखरित होता है। देश काल की सम सामयिक परिस्थितियों से प्रभावित होते ही जय प्रकाश जी अपने युग के शिशु थे। भारत की पराधीनता ने उन्हें स्वतन्त्रता का पक्षधर बना दिया था। साम्यक समाज पर्यावरण युगीन परिस्थितियाँ एवं अध्यापकों के विचारों का उनके व्यक्तित्व एवं कृतव्य पर स्पष्ट प्रभाव था। जय प्रकाश के चिन्तन पर मार्क्सवाद और गॉधीवाद का स्पष्ट प्रभाव था। अमेरिकी प्रवास काल में मार्क्सवादी, विचार जयप्रकाश को बहुत भाये। वह भारत की दयनीय स्थिति को अच्छी तरह से जानते थे। मार्क्सवाद के रंग में रंगे हुये जयप्रकाश का झुकाव गॉधी जी की ओर हुआ। यद्यपि प्रारम्भ में वे गॉधी जी के आलोचक ही रहे परन्तु महात्मा गॉधी के व्यक्तित्व के कारण वे गॉधीवाद के पक्ष में झुकते गये और अन्त में उसे स्वीकार कर लिया।

संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रवास काल में जयप्रकाश मार्क्सवादी चिन्तन की ओर अग्रसर हुए उन्होंने स्वयं स्वीकार किया था कि मैं मार्क्सवाद को मानता हूॅ। मैं अपने को मार्क्सवादी कहता हूॅ। मै स्टालिन या कितने ही अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा अच्छा मार्क्सवादी हूॅ। मार्क्सवाद मेरे विचार आधार हैं।

विस्कान्सन राज्य के प्रसिद्ध राजनीतिक राबर्ट मेरियोनिला फौलादी प्रगतिशील विचारों के थे। वे रिपब्लिकन दल के प्रगतिशील वर्ग के नेता भी थे। विस्कान्सन के गर्वनर के रुप में उन्होंने लोक सेवा तथा उत्तराधिकार की व्यवस्था जैसे अत्यन्त क्रांन्तिकारी कार्य किये थे। विस्कान्सन में उनके अध्ययन काल में अमेरिकी सीनेटर लान्फोलादी द्वारा अमेरिकी सार्वजनिक जीवन से सम्बन्धित एक बड़े घोटाले की छानबीन प्रारम्भ हुई थी। अमेरिकी जीवन में इस घोटाते के विवरण दस वर्ष तक समाचार पत्रों की मुख्य सुर्खियों में प्रकाशित होते रहे। संभवतः तत्कालीन अमेरिकी स्वतंत्र समाज में व्याप्त प्रशासनिक भ्रष्टाचार के उन्मूलन का विस्कान्सन राज्य द्वारा नेतृत्व किया गया था। जयप्रकाश पर इसका अधिक प्रभाव पड़ा। उन्होंने भ्रष्टाचार के विरूद्ध सदैव आवाज उठाई। वस्तुतः भ्रष्टाचार के प्रति घृणा या सन्देह तथा उनकी सार्वजनिक जॉच रूपी उपचार का अंकुर विस्कान्सन में ही प्रस्फुटित हुआ था। विस्कान्सन प्रवास के समय जयप्रकाश का परिचय अमेरिकी साम्यवादी दल के एक सदस्य मेधावी पोलिथ यहूदी युवक अब्राहम लैण्डी से हुआ। लैण्डी के सहयोग से वे अन्य मार्क्सवादियों के सम्पर्क में आये थे।

उन्होंने मार्क्स और एजिब्स की समस्त रचनाये पढ़ी थी। लेनिन त्रात्सकी, प्लेखनींव व रीजा लुक्सम्वर्ग जैसे मार्क्सवादियों और प्रारम्भिक साम्यवादी विचारकों तथा उग्रवादी समाज शक्तियों की रचनायें पढ़ते। लैण्डी के सहयोग के कारण उनका परिचय एक प्रमुख श्रम संघी नेता मैन्यूल गोमेज से भी हुआ था। जयप्रकाश नारायण ने मैन्यूल गोमेज को एक स्थानीय हड़ताल कराने में पूरी सहायता दी थी। स्वयं मार्क्सवादी प्रभाव का चिन्तन उन्हीं के शब्दों में होता है। वे स्वीकार करते हैं। सन् 1922 से 1929 तक मैं अमेरिका में रहा। वहां मैंने मार्क्सवाद का गहरा अध्ययन किया। फिर भी स्वतंत्रता के मेरे लक्ष्य में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। किन्तु उसकी पूर्ति के लिए क्रान्ति का मार्क्सवादी सिद्धान्त गॉधी जी के सविनय अवज्ञा या असहयोग पद्धति की अपेक्षा अधिक निश्चित और शीघ्रगामी मालूम हुआ। महान नेता लेनिन की सफलता का वर्णन पढ़कर हमें कभी अघात नहीं हो। हमें लगता था कि क्रान्ति के लिए मार्क्सवादी मार्ग ही श्रेष्ठ मार्ग है और वह रूस के उदाहरण से सिद्ध हो चुका है।

जयप्रकाश अब्राहम लैण्डी के साथ नित्य नियम पूर्वक कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्यों द्वारा आयोजित विचारगोष्ठियों में भाग लेते थे। वहॉ उन्हें बौद्धिक चेतना के साथ अपनत्व की भावना तथा

चिन्तन शक्ति को नवप्रेरणा मिलती है। मार्क्सवाद के प्रभाव के फलस्वरूप ही जयप्रकाश नारायण को नजरों में स्वतन्त्रता के लिये समानता और बंधुत्व आवश्यक थे। स्वतन्त्रता का अर्थ सबकी यानी जो लोग निम्न स्तर पर है कि स्वतन्त्रता भी है। इस स्वतन्त्रता में शोषण, भुखमरी और दरिद्रता से मुक्ति भी शामिल होनी चाहिए। उस समय में यह नहीं जानता था कि सामाजिक क्रान्ति के सम्बन्ध में गॉधी जी के अपने भी कोई विचार हैं। साथ ही उसके लिये अपने तरीके भी हैं।

प्रमुख भारतीय साम्यवादी मानवेन्द्र राय नाथ के विचारों से परिचित होने का सौभाग्य भी उन्हें अब्राहम लोदी के माध्यम से हुआ। वह नियमित रुप से एम0एन0 राय न्यूमसिस और कम्युनिष्ट पार्टी का समाचार पत्र डेली बर्कर पढ़ते थे। भारत की समस्याओं का समाधान मार्क्स के द्वन्दात्मक भौतिकवाद की वैज्ञानिक पद्धति द्वारा हो सकता है। मानवेन्द्र नाथ राय के रस विचार का उन्होंने पूर्ण समर्थन किया था।

अमेरिकी प्रवास काल में मार्क्सवाद के बौद्धिक आकर्षण के रंग में रंगे हुये जयप्रकाश पर मार्क्सवादी चिन्तन का गहन और अमिट प्रभाव पड़ा। इस सम्बन्ध में वे स्वयं लिखते हैं ''मैंने मार्क्सवाद को या अधिक यथार्थ भाषा में कहूँ सोवियत साम्यवाद के तत्कालीन रूप को स्वीकारा और हृदयागम किया। एस0एन0 राय के उत्तेजित लेखों में जो यूरोप से निकलकर विशेष रुप से एशियाई विद्यार्थियों के साम्यवादी को ढंगों में पहुँचाते थे। उन्होंने मार्क्सवाद में मेरी दीक्षा पूर्ण कर दी।''

जयप्रकाश पर मार्क्स वादी चिंतन का प्रभाव शनैःशनैः कम होता गया। उनको यह महसूस हुआ कि समाजवाद का रास्ता किसी भी स्थिति में अधिनायक वाद नहीं हो सकता। सोवियत रूस में घटित घटनाओं से जयप्रकाश मार्क्सवाद के विरोधी हो गये। सन् 1942 में साम्यवादियों द्वारा ''भारत छोड़ो आन्दोलन'' से असहयोग और जनयुद्ध के नाम पर अंग्रेजों से मैत्री स्थापना किये जाने के कारण उन्हें बड़ा पक्का लगा था। परन्तु मार्क्सवाद का पूर्ण परित्याग करने को तैयार नहीं थे उन्होंने मार्क्सवाद के परित्याग के स्थान पर पुनःव्याख्या करना कहीं अधिक उचित समझा था। फिर भी सन् 1952 में जयप्रकाश मार्क्सवाद के प्रभाव से बहुत दूर हो गये। इस प्रकार जयप्रकाश पर जहॉ एक तरफ मार्क्सवाद का प्रभाव परिलक्षित होता है वहॉ दूसरी तरफ भारतीय परिवेश गॉधी तत्कालीन पर्यावरण से भी वह प्रभावित थे। मार्क्स अन्याय का निराकरण चाहता था। वह भौतिकवाद तथा इतिहास की आर्थिक व्याख्या से अत्यधिक प्रभावित वर्ग संघर्ष को शोषण का आधार मानते थे।

अतः मैं कह सकता हूँ कि शोध–पत्र का वर्णन करने के पश्चात् स्पष्ट होता है कि पं0 जवाहर लाल व श्री जयप्रकाश नारायण पर मार्क्सवादी विचारधारा का गहरा प्रभाव पड़ा। मार्क्सवाद का वर्णन करते हुये दोनो विचारको का मत स्पष्ट करता है कि दोनो विचारक मार्क्सवाद को अपनाकर समाज में मार्क्सवादी विचार धारा को लाने का प्रयास जीवन भर करते रहे।

सन्दर्भ ग्रन्थः :

1. जवाहर लाल नेहरुः वाङग्मय खण्ड 1 से 10 तक– प्रकाशतः सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली।
2. जवाहर लाल नेहरुः दि डिसकवरी ऑफ इण्डिया कलकत्ता दि सिग्नेट प्रेस 1946
3. एम0 चेलापति रावः आधुनिक भारत के निर्माता जवाहर लाल नेहरु, प्रकाशन विभाग–भारत सरकार।
4. शशिभूषणः नेहरु और मार्क्सबाद
5. वी0 पी0 वर्माः भारतीय राजनैतिक विचार
6. डॉ0 रामकुमार अवस्थी, डा0 अमरेश्वर अवस्थीः आधुनिक भारतीय सामाजिक और राजनैतिक चिन्तन
7. जवाहर लाल नेहरुः मेरी कहानी
8. डॉ0 रघुवंशः जयप्रकाश नारायण के विचार, रघुवंश–लोक भारतीय प्रकाशन 1975
9. अजीत भट्टाचार्यः जयप्रकाश नारायण ए पोलिटिकल बायोग्राफी विक्स 1978 न्यू देहली।
10. जयप्रकाश नारायणः मेरी विचार यात्रा भाग–ए सर्वसेवा संघ प्रकाश वाराणसी।
11. कुमार जमदग्निः जयप्रकाश नारायण राजनैतिक एवं सामाजिक विचार

***

प्रकृति सुन्दरी शकुन्तला का प्रकृति प्रेम

डॉ. राहुल *

कविता–कामिनी के कमनीय कलेवर, सरस्वती के वरदपुत्र काव्य जगत् के विलास महाकवि कालिदास की विश्ववन्ध शकुन्तला अपनी अनुपम छटा से विश्व रंगमच पर समादृत है । अभिज्ञानशाकुन्तलम् जो विश्व रंगमंच से मंचित एवं समादृत है, को पढ़कर जर्मन–कवि ''गेटे'' भाव–विभोर हो नाच उठा था, और उसने जर्मन भाषा में अपना जो अभिप्राय अभिव्यक्त किया उसका संस्कृतानुवाद दर्शनीय है–

''वासन्तं कुसुमं फलञ्च युगपत् ग्रीष्मस्य सर्वं च यत् ।
यच्चान्यन्मनसो रसायनमतः सन्तर्पणं मोहनम् ।
एकीभूतमभूतपूर्वमथवा स्वर्लोकभूलोकयो–
रैश्वर्यं यदि वाच्छसि प्रियसखे । शाकुन्तलं सेव्यताम्'' ।

वसंतऋतु का पुष्प और फल, ग्रीष्म ऋतु का समस्तोपादान, विश्वमोहिनी स्वरूप की अद्भुत छटा, स्वर्लोक और भूलोक का एक साथ मिलन तथा ऐश्वर्य सुख की प्राप्ति में समस्त वस्तुएं एक साथ अभिज्ञानशकुन्तलम् में मिल जाएगी ।

महाकवि कालिदास को ''तकार त्रय'' से अनन्य प्रेम है । कवि का सम्पूर्ण साहित्य त्याग, तपस्या और तपोवन की आराधना में परिसमाप्ति को प्राप्त करता है। कवि के सम्पूर्ण नाटक, गद्य एवं काव्य का मुख्य पात्र त्याग की प्रतिमूर्ति है तो तपस्या के द्वारा ही अपना कर्म क्षेत्र प्रशस्त करता है साथ ही तपोवन ही उसका श्रेय है, त्याग के बिना तपस्या सम्भव नहीं है और तपस्या तभी सार्थकता को भजती है जब तपोवन का पावन संयोग हो । रघुवंशी राजाओं से प्रारम्भ कर कुमारसम्भवम् की नायिका पार्वती, मेघदूतम् का यक्ष हो, अथवा शाकुन्तलम् की शकुन्तला सभी ने तपोवन का आश्रय लेकर ही अपने जीवन को कृतार्थ किया है, अथवा विश्व क्षितिजपर अपने को आरोहित किया है ।

शकुन्तला प्रकृति पुत्री है । वह निसर्ग सुन्दरी है । वह गिरीश पुष्प के समान कोमल है वह अनाघ्रात पुष्प भी है । अलून विसलय भी है । यदि अनाविद्ध रत्न है तो अनास्वादित मधु भी । अखण्ड पुण्यों का फल है । अंग्रेज कवि ''वड्सर्ववर्थ'' के कविता का भाव शकुन्तला पर सटीक बैठता है – वह किसी ल्यूसी का वर्णन करते हुए लिखता है – ''तीन वर्ष धूप और वर्षा में पली तब निसर्ग ने कहा – इससे अधिक सुन्दर पुष्प पृथ्वी पर उगाया ही नहीं गाया, इस कन्या को मैं स्वयं ले लूँगा । यह मेरी रहेगी और इसे मैं अपनी प्रेयसी बनाऊगा ।''

''मैं ही इस प्रेयसी का भाव और नियम बनूंगा और मेरे ही साथ यह कन्या चट्टानों और मैदानों में मर्त्यलोक और स्वर्ग में वनपथों और कुन्जों में मन को उकसाने वाली या संयम करने वाली दिव्य शक्ति का अनुभव करेगी ।'' [1]

इस कविता के भाव को पढ़कर यह तर्क उठता है कि प्रकृतिवाद का आदि समर्थक वड्र्सवर्थ ही था । इसका दार्शनिक आधार हमारे वेदान्त से बहुत कुछ मिलता जुलता है । जहाँ यह माना जाता है कि एक ही आत्मा मनुष्य, पशु, वनस्पति और समस्त सृष्टि में व्याप्त है । यह महाकवि का अपना मत है । वास्तव में हिन्दुओं के पूर्व जन्म और आत्मोत्क्रमण की भावना के आधार पर यह तथ्य ऐसे अवसर का समान अनुभव माना जा सकता है और इससे यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि प्राकृतिक पदार्थ भी ठीक मानवों की तरह ही अनुभव करते हैं और अपने विचारों का आदान–प्रदान कर सकते हैं । इसका सटीक उदाहरण शाकुन्तलम् की नायिका शकुन्तला में पाया जाता है । कारण कि वह आगुल्फ प्रकृति की कन्या है । कवि ने केवल उसका वर्णन ही नहीं अपितु रक्त–मांसावतंसित

* असिस्टेन्ट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, पी.जी. कॉलेज, गाजीपुर।

शरीर भी हमारे सम्मुख ला खड़ा कर दिया । शकुन्तला यदि बोलती है तो अनुभव भी करती है, कार्य भी करती है और आचरण भी करती है ।

स्वर्गीय अप्सरा मेनका और मर्त्यलोक के तपस्वी विश्वामित्र के संसर्ग से उत्पन्न शकुन्तला जन्म के समय से ही माता द्वारा त्याग दिये जाने पर पक्षियों से लालित, ऋषि–कण्व द्वारा उसका लालन–पालन होता है । कवाश्रम में ऋषि द्वारा उसे दो सखियों को भी दिया जाता है जिसका नाम अनुसूया और प्रियम्वदा है जो नाम्ना अपने रूप के अनुसार स्वयं भावों की भी सूचिका है, यही नहीं काव्य में उसे माधवी, अतिमुक्तक और बहन के रूप में नवमालिका को भी दिया है । कारण कि शकुन्तला स्वयं प्रकृति पुत्री है । वह नवमालिका को प्रेम से वनज्योत्स्ना कह कर पुकारती है ं बकुल, केसर, सहकार आदि वृक्ष उसके परम मित्र हैं तथा हरिण, मयूर, मृग–हंस, कोयल, चक्रवाक तथा पशु–पक्षी उसके सहचर । यही नहीं वनदेवता और देवियाँ भी उसके साथी हैं ।

शकुन्तला को वनस्पतियों से इतना प्रेम है कि उनसे सहोदर भाई का व्यवहार करती है ।

''आस्ति में सोदर स्नेहः एतेषाम्'' (अतिथि ममापि सोदर सिबोहे स्देसु)''

चतुर्थांक में शकुन्तला का पतिगृह गमन वेला में वनस्पति प्रेम इतना प्रवृद्ध हो जाता है कि स्वयं ऋषि कण्व लता पादपों से शकुन्तला के गमनार्थ अनुज्ञा की याचना करते हैं ।

''पातुं नं प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्
आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्याः भवत्युत्सवः
सेयंयाति शकुन्तला पतिगृहं सवैरनुज्ञायताम् ।।'' [2]

इस प्रकार शकुन्तला का प्रकृति मैत्री स्वाभाविक ही है । क्यों नहीं हो। उन्हीं लतापादपों ने अपनी परिस्थितियों के अनुसार उसे प्रेरित जो किया । सेवा और मैत्री इस भांति है कि वह प्रतिदिन लता–पादपो ंको पानी देती है । उनका पोषण और सम्वर्द्धन भी करती है । उन लताओ में यौवन का लक्षण देख कर तो उन्हें उपयुक्त वृक्षों का सहारा देती है । यदि ये लताएं स्वयं शकुन्तला के समान ही आत्मनिर्णय पर अपना सम्बन्ध कर लेती है तो उनके सौभाग्य पर उत्सव भी मनाती है । मृग–शावकों का रहन–सहन, देख–रेख करना, उनके मुख में कुशाग्र चूभने पर इंगुदी तैल का लेप करना, एक मृग शावक की मां के मर जाने पर उसे माता के समान प्यार दिया । शकुन्तला जिसे प्रेम से ''दीर्घापांग'' कह कर दुलारती थी । शकुन्तला के पतिगृह गमन वेला के ये वाक्य ध्यातव्य है – ''वच्छ ! किं सहवास– परिच्चायिणिं मं अणुसरसि ? अचिरप्पसूदाए जणणीए विणा वड्ढिदो एव्व । दाणिं पि मए विरहिदं तुमं तादो चिंताइस्सदि'' [3] स्वयं ऋषि के शब्दों में यह वेदना झलकती हैं जो ध्यातव्य है –

''यस्य त्वया व्रणविरोपणमिंगुदीनां तैलं न्यषिच्यत मुखे कुशसूचिविद्धे ।
श्यामाकमुष्टिपरिवर्धितको जहाति सोऽयं नं पुत्रकृतकः पदवीं मृगस्ते ।।[4]

इस प्रकार के सहानुभूति और सेवा से अविरत और स्थिर आदान–प्रदान से यह आशा की जा सकती है कि शकुन्तला अथवा उसके सभी संगी–साथी परस्पर एक–दूसरे की आवश्यकता की पूर्ति करते होंगे या उसे समझकर व्यक्त या अव्यक्त इच्छाओं को पूर्ण करने के लिए तदनुरूप उद्यम करते होंगे । प्रियंवदा की बातें इसी परिप्रेक्ष्य की परिचायिका है – ''अनुसूये । जानासि किं निमित्तं शकुन्तला वनज्योत्स्नाम् अनिमेषेण पश्यति । यथा वनज्योत्स्नानुरूपेण वरेण सहकारेण परिणीता तथा अनुरूपवरं लभेमि इति ।। [5]

चतुर्थांक में शकुन्तला की विदाई के समय कविका उपर्युक्त कथन चराचर जगत् को उद्वेलित कर देता है –

''उद्गीर्णदर्भकवलामृग्यः परिव्यक्तनर्तनामयूराः ।
अपसृतपाण्डुपत्रा अश्रूणीव मुञ्चन्ति लताः ।। [6]

पिता कण्व एक ऋषि है । वे अपनी पुत्री के लिए किसी के सामने याचना नहीं करते, वरन उसे अपने भाग्य का निर्णय करने के लिए समान अवसर और समान स्वतन्त्रता की आशा करते हैं –

''सामान्यप्रतिपूर्वकमियं दारेषु दृश्या त्वया ।
भाग्यायत्तमतः परंनखलु तद्वाच्यं वधूबन्धुभिः ।।[7]

प्रथमांक में राजा केसर वृक्षों की आड़ में खड़ा है । शकुन्तला को जिसे आगन्तुकों की सेवा का भार सौंपा गया है, इंगित (इशारा) मात्र से अपनी ओर बुलाता है । यदि ऐसी बात नहीं होती तो शकुन्तला यों ही चलती हुई बयार से केसर के पत्तों के हिलने मात्र से वह क्यों समझ बैठी कि पेड़ उसे बुला रहा है।

''पल्लवांगुलिभिः त्वरयतीव मां केसरवृक्षकः'' घास की पती भी बिना अभिप्राय के नहीं हिलती । विश्वकवि कालिदास का विश्वास का आधार भी यही है कि शकुन्तला प्रकृति पुत्री है । यह निर्विवाद है। लता–पादप सेचन क्रम में जो सम्वाद शकुन्तला द्वारा व्यक्त है ।

''हला शकुन्तले ! त्वत्तोऽपि तातकण्वस्याश्रमवृक्षकाः प्रिचतरा इति
तर्कयामि। येन नवमालिकाकुसुमपेलवा त्वमप्येतेषामालवालपूरणे नियुक्ता।''[8]

यहाँ शकुन्तला की अन्तः मनोवृतियाँ सूचित करती हैं । प्रियम्वदा का भी अनुमान ठीक ही है, तो क्या इसकी निसर्ग सखियों तथा वनज्योत्स्ना क्यों नहीं शकुन्तला के मनोभावों को पहचानती है । शकुन्तला ने अतीव सुंदर ढ़ग से इसे बतलाने की चेष्टा की है । वनज्योत्स्ना विवाहितां है । 'सहकोरण सह परिणीता । जब वह राजा को, देखती है तो शकुन्तला के योगय वर को वह पहचान लेती है और वह अपनी छोटी बहन शकुन्तला को उसके भावी पति से मिलाने का कार्य उसी प्रकार किया जैसे कोई बड़ी बहन करती है । अतः यह सत्य है कि भौंरे के उकसाने का कार्य उसी लता ने किया । इसके पहले भी शकुन्तला ने अनेकों लताओं को सींचा था केवल वनज्योत्स्ना से ही भ्रमर क्यों उड़ा ।

लता में दुव्यन्त और शकुन्तला बैठे हैं वहाँ मृग शावक चला जाता है, कमल के दोने में राजा जल पीने को देता है, वह नहीं पीता । शकुन्तला अपने हाथ में लेकर पीला देती है, राजा का व्यंग्य है कि अपने संगे–सम्बंधियों को सभी पहचानते हैं, तुम दोनों वनवासी जो हो ।

शकुन्तला इसी घटना की हस्तिनापुर में चर्चा करती हैं । जिसका अभिप्राय है कि उन्हें अंगुठीं देने की बातें स्मरण हो तथा व्यंजना यह भी है कि अपरिचित व्यक्ति से सहसा मेल नहीं करना चाहिए, मैंने किया । जिसकी परिणति यही है ।

यद्यपि निसर्ग कन्या शकुन्तला को राजा जनित वियोग का आभास आश्रमस्थ सभी प्राणियों को हो गया था, ऐसा मेरा मानना है । अनुसूया का यह वृतान्त ध्यातव्य है –

''सखि । न सं आश्रमपदेऽस्ति चिन्तवान् विरहायमाना नोत्सुकाः प्रेक्षस्व''–

किन्तु यहाँ यह भी प्रश्न उठता है कि जब अनुसूया और प्रिपंवदा शकुन्तला के लिए प्रेम–पत्र लिखने अथवा लिखवाने का उपक्रम कर सकती है तो जिन लताओं से यह इतना स्नेह करती है, वे क्यों नहीं सोचती । स्पष्ट है कि जिस सहकार वृक्ष की ओट में राजा खड़ा है तथा शकुन्तला वनज्योत्स्ना को सींच रहीं हैं, स्वयं वह कहती हैं कि सखि अनुसूये ! वह सहकार वृक्ष अपने पल्ल्वांगुलियों द्वारा मुझे अपने पास बुलाने को उत्प्रेरित कर रहा है ।

कमलिनी की ओट में बैठा हुआ चकवा अपनी प्यारी के बुलाने पर भी उसका उत्तर नहीं दे रहा है, वह अपनी चोंच में कमल डंठल पकड़े हुए तुम्हारी तरफ देख रहा है –

शकुन्तला कहती हैं – कमलिनी की ओट में छिपे हुए अपने पति को न देख कर चकबी घबराकर चिल्लाती है इसीलिए जिस काम से जा रही हूँ वह पूरा होता नहीं लगता ।

प्रियम्वदा की उक्तिसान्त्वना पूर्ण है –

सखि ! मा एवं मन्तेहि ।

''एसवि पिण विना गमेइ रअपिं विसाद दीहअरं ।
मरूअंपि रिहदुखं आसावन्धें सहावेहि ।।

सखि ! ऐसा मत सोचो । जानती हो यह चकवी विरह की लम्बी रातें अपने प्यारे बिना अकेले ही काट लेती है । क्योंकि मिलने की आशा बड़े से बड़े विरह के दुःख में भी ढ़ाढ़स बधांती रहती है ।

कवि ने मेघदूत में भी इसी प्रकार का वचन यक्ष से कहलवाया है–

''आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो हयंगनानाम्''[9]

यह सम्पूर्ण घटनाक्रम शकुन्तला को समझाने के लिए आया है कि तुम्हारे साथ भी यही होगा परन्तु रात्रि व्यतीत होने पर जैसे चकवा–चकवी मिल जाते हैं वैसे ही तुम्हारा भी मिलन होगा ।

अस्तु! निसर्ग कन्या शकुन्तला महाकवि कालिदास की अनन्य कृति है जो बड़े ही लाड़–प्यार से प्रकृति से लालित, पालित एवं संजायी गयी है ।

संदर्भ :

1. वडर्सबर्थ – अंग्रेजी लेखक
2. अभिज्ञानशाकुन्तलम् – चतुर्थांक – श्लोक सं० 9
3. अभिज्ञानशाकुन्तलम् – चतुर्थांक
4. अभिज्ञानशाकुन्तलम् – 4 / 14
5. अभिज्ञानशाकुन्तलम् – प्रथम अंक
6. अभिज्ञानशाकुन्तलम् – 4 / 12
7. अभिज्ञानशाकुन्तलम् – 4 / 17
8. अभिज्ञानशाकुन्तलम् – प्रथम अंक
9. मेघदूतम् – कालिदास – पूर्वमेघ–श्लोक सं०–9

***

भारत का परमाणु कार्यक्रम : रचनात्मक कार्य एवं शक्ति संतुलन के रुप में

*अब्दुल कलाम अंसारी**
*मोहम्मद शाहिद***

भूमिका :

भारत को स्वतंत्रता की प्राप्ति एक ऐसे वैश्विक परिस्थिति मे हुई थी, जहां विश्व भर मे परमाणु शक्ति को प्राप्त करने एवं शस्त्रों की होड़ मची हुई थी। द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति एवं उसके पश्चात् चर्चिल की अमेरिका मे वर्ष 1946 के फुल्टन भाषण से शीतु युद्ध की शुरुआत तथा विश्व के पांच सुरक्षा दायित्वों को निभाने वाले देशों मे परमाणु हथियारों को लेकर मची दौड़ मे वैश्विक परिस्थिति एवं संयुक्त राष्ट्र संघ तथा उसके लक्ष्य को अनिश्चित बना दिया। अर्थात् विश्व में अराजकता का माहौल बन चुका था। जहां एक तरफ औपनिवेशिक शोषण के उपरांत नये राष्ट्रों का अविर्भाव हो रहा था जिनकें सामने अपने राष्ट्र की आकांक्षाओं को पूर्ति करने की चुनौती थी वही दूसरी तरफ शीत युद्ध मे दो–ध्रुवीय राष्ट्रों को अपने खेमें मे लाने की कोशिश ने इस अराजकतापूर्ण परिस्थिति को और बल दिया। जहां सं0 रा0 अमेरिका नये राष्ट्रों को उदारवादी एवं पूंजीवादी व्यवस्था के तहत लाना चाहता था तो वही दूसरी तरफ सोवियत संघ अपने समाजवादी खेमे मे। भारत ने उस समय पंडित जवाहर लाल नेहरू के नेतृत्व में तीसरा मंच भी तैयार किया जिसे हम गुटनिरपेक्षता के नाम से जानते है, जो अपनी स्वतंत्र विदेश नीति, अपने राष्ट्र की आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए एवं किसी भी निर्णय लेने हेतु वाह्य दबाव से मुक्त होना चाहता था अर्थात् एक संपूर्ण प्रभूत्व संपन्न राज्य बनना चाहते थे।

इसी परिपेक्ष्य मे भारत अपने नाभिकीय शक्ति को विकसित करना चाहता था ताकि देश की ऊर्जा आवश्यकताओं को पूरा किया जा सकें जो भारत की बढ़ती ऊर्जा मांग हेतु आवश्यक थी। चीन द्वारा भारत पर अचानक आक्रमण 1962 एवं उसके तुरंत बाद उसके द्वारा परमाणु परीक्षण करना 1964 भारत की सुरक्षा चिंता को और बढ़ा दिया। अब भारत के लिए आवश्यक हो चुका था की अपनी सुरक्षा को ध्यान मे रखते हुए अपना नाभिकीय परीक्षण करें। इस शोध आलेख मे उन परिस्थितियों का अध्ययन करेगें जिसमें भारत परमाणु शक्ति संपन्न राष्ट्र बना एवं परमाणु शक्ति होने के साथ–साथ वह एक उत्तरदायी परमाणु राष्ट्र भी है।

शोध पद्धति :

इस शोध पत्र मे ऐतिहासिक एवं कार्योत्तर पद्धति का प्रयोग करते हुए भारतीय परमाणु ऊर्जा के उद्विकास, नाभिकीय शक्ति बनने की प्रक्रिया एवं भारतीय परमाणु नीति के लक्षित आदर्शवादी दृष्टिकोण का अध्ययन करना है।

शीत युद्ध के प्रारंभिक दौर मे भारत की प्राथमिकता थी की विश्व गुटों मे न बटे।किसी भी प्रकार की साम्राज्यवादी शक्ति का उभार न हो ताकि कोई राष्ट्र किसी राष्ट्र के अधीन न हो एवं दुनिया को शस्त्रो की होड़ से बचाया जायें ताकि शांतिमय वैश्विक परिस्थिति का निर्माण किया जा सके एवं सामाजिक –आर्थिक कार्यों को बढ़ावा दिया जा सके। संयुक्त राष्ट्र संघ के वैश्विक सुरक्षा दायित्वों को निभाने वाले प्रमुख पांच महत्वपूर्ण देशों के मध्य नाभिकीय शस्त्रों के प्रति प्रतिस्पर्द्धा वैश्विक सुरक्षा के लिए खतरा था। जहां 1945 में संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा ओपेन हाइमर प्रोजेक्ट के नाम से परमाणु परीक्षण किया गया। वर्ष 1949 मे सोवियत संघ, 1952 मे ग्रेट ब्रिटेन, 1960 में फ्रांस एवं भारत के प्राकृतिक पड़ोसी देश चीन के द्वारा वर्ष 1964 में परमाणु परीक्षण किया जाना महत्वपूर्ण है। जो यह दर्शाता है कि वैश्विक परिस्थिति तीव्र रुप से अराजक हो रही थी।

---

* शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय
** प्रोफेसर , राजनीति विज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इन परिस्थितियों के बीच गुट निरपेक्ष राष्ट्रों का लक्ष्य शांतिमय विश्व की स्थापना करना था। वो एक ऐसे परिवेश मे जीना चाहते थे जहां किसी प्रकार का डर या दबाव न हो एवं परमाणु हथियार भी न हो। क्योंकि दुनियां ने हिरोशिमा एवं नागासाकी के विभत्स परिणाम देखे थे। अब यह मांग उठने लगी थी कि वैश्विक विशस्त्रीकरण हेतु प्रयास किये जाये जिसमें भारत भी चाहता था कि पूर्ण रुप से शस्त्रों के प्रति प्रतिस्पर्द्धा एवं आणविक परीक्षण पर रोक लगायी जाये।

इस दिशा में पहला प्रयास 1959 में संयुक्त राष्ट्र महासभा में स्वीकृत हुए प्रस्तावों से सुस्पष्ट है जिसमें आणविक शस्त्रों के और अधिक विस्तार को रोकने के लिए समझौते के प्रयास हेतु कहा गया। जिसके परिणाम स्वरुप आंशिक परमाणु परीक्षण प्रतिबंध (PTBT-1963) की संधि हुई। उक्त संधि पर 5 अगस्त 1963 को तीन परमाणु शक्ति संपन्न देशों के विदेश मंत्रियों **ने संयुक्त राष्ट्र महासचिव यू–थाण्ट की** उपस्थिति मे हस्ताक्षर किये, जिसके बाद 10 अक्टूबर 1963 को संयुक्त राष्ट्र के 98 सदस्यों एवं 7 गैर सदस्यों ने उक्त संधि की संपुष्टि की। भारत ने भी इस संधि पर हस्ताक्षर किया वही चीन तथा फ्रांस के द्वारा इस संधि को अस्वीकार किया गया। वर्ष 1967 मे प्रकाशित एक प्रतिवेदन मे यह विश्वास प्रकट किया गया कि जहां तक अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा का प्रश्न है परमाणु शस्त्र बनाने वाले राष्ट्रों की संख्या मे वृद्धि होने पर वर्तमान आणविक शास्त्रागारों के विस्तार होने से समस्त विश्व मे अधिक तनाव एवं असुरक्षा के वातावरण में वृद्धि होगी। सुरक्षा की समस्या का निदान आणविक शस्त्र रखने वाले देशों की संख्या बढ़ाने से नही हो सकता और न ही आणविक शस्त्र रखने वाले वर्तमान राष्ट्रों की शक्ति से इसे पाया जा सकता है।

सोवियत संघ एवं संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा अगस्त 1967 में अलग–अलग परंतु एक जैसे संधियों के प्रारुप प्रस्तुत किये गये जिनमें परमाणु शस्त्रों के और अधिक संग्रहित न होने पर बल दिया गया था। 12 जून 1968 को संयुक्त राष्ट्र महासभा ने भारी बहुमत से उक्त प्रस्ताव को स्वीकृति प्रदान कर दी जिसें परमाणु अप्रसार संधि के नाम से जाना गया। भारत ने इस संधि को विभेदकारी बताते हुए इस पर हस्ताक्षर नही किया क्योंकि इस संधि के द्वारा विश्व को दो भागों मे विभाजित किया गया था। एक जिन्होनें 1967 से पूर्व परमाणु परीक्षण किया हो उनके परमाणु शस्त्रों को मान्यता दी गयी वही दूसरी तरफ 1968 के बाद सभी सदस्यों को पूर्ण रुप से गैर परमाणवीय राज्य (NNWS) घोषित किया गया जो न तो किसी प्रकार के परीक्षण कर सकते है न ही किसी प्रकार का परमाणु हथियार रख सकते है। भारत ने इस भेदभावपूर्ण नीति का घोर विरोध किया क्योंकि इससे कुछ शक्तिशाली देशों को ही परमाणु क्षमता के योग्य माना गया। अन्य देशों पर निर्योग्यताएं थोप दी गयीं। भारत का मानना था कि यह भेदभाव समाप्त होने चाहिए तथा विश्व को पूर्ण निशत्रतीकरण की ओर बढ़ना चाहिए।

नाभिकीय ऊर्जा एवं परमाणु बम :

प्राकृतिक रुप से प्राप्त यूरेनियम के समस्थानिक $_{92}U^{235}$ को सवंर्धित यूरेनियम कहते है। जिसका उपयोग नाभिकीय शक्ति के रुप मे किया जाता है। प्राकृतिक रुप से पाये जाने वाले यूरेनियम को विखण्डित नही किया जा सकता। इस यूरेनियम को प्रयोग मे लाने के लिए इसका नाभिकीय खण्डन करके समस्थानिक के रुप मे परिवर्तित किया जाता है। जिसकी यूरेनियम मे उपस्थिति 0.7 प्रतिशत ही होती है। इस समस्थानिक यूरेनियम का 60 प्रतिशत तक सवंर्धित करके इसे सुरक्षित बिजली के प्रयोग मे लाया जाता है। यदि इस सवंर्धित यूरेनियम को सेन्ट्रीफ्यूज के माध्यम से 90 प्रतिशत तक सवंर्धित कर दिया जाये तो यह परमाणु बम बन जाता है।

भारत का परमाणु कार्यक्रम :

स्वतंत्रता के पूर्व ही भारत मे डॉ0 होमी जहांगीर भाभा के नेतृत्व में वर्ष 1944 में न्यूक्लियर रिसर्च प्रोग्राम के तहत परमाणु कार्यक्रम की शुरुआत की गयी। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू के नेतृत्व में 15 मार्च 1955 को भारत के पहले न्यूक्लियर रिसर्च रिएक्टर बनाने का फैसला लिया गया जिसके अध्यक्ष डॉ0 भाभा थे। ये रिएक्टर एक स्वीमिंग पूल की तरह थी जिसकी क्षमता 150 मेगावाट थर्मल थी। इस रिएक्टर को भाभा एटॉमिक रिसर्च सेंटर मे बनाने का काम शुरू हुआ

ईंधन की आपूर्ति रिएक्टर के समक्ष एक बाधा थी जिसके लिए भारत–ब्रिटेन समझौता हुआ जिसके तहत यूरेनियम की आपूर्ति ब्रिटेन ने की। जिसके परिणाम स्वरुप वर्ष 1956 में एशिया का पहला न्यूक्लियर रिएक्टर भारत मे स्थापित हुआ। रिएक्टर भ्रमण के समय निकलती हुई नीली किरणें नेहरू जी को इतनी पसंद आयी की इन्होने इस रिएक्टर का नाम अप्सरा रख दिया। इसके पश्चात् भारत को संयुक्त राज्य अमेरिका और कनाडा के सहयोग से दूसरा नाभिकीय **रिएक्टर साइरस** 1960 मे स्थापित किया गया।

भारत–चीन के मध्य 1954 मे पंचशील समझौता के बाद भी चीन द्वारा भारतीय क्षेत्र पर आक्रमण करना, भारत–पाक युद्ध 1965, विभेदकारी परमाणु अप्रसार नीति के परिणाम स्वरुप भारत के संभ्रांत वर्ग दो समूहों मे बट गये थे। प्रथम– द हॉक (The Howks) के समर्थक यह चाहते थे कि भारत को परमाणु परीक्षण करना चाहिए जबकि दूसरा वर्ग– द डब्स (The Doves) का मानना था कि भारत को आदर्शवादी लोकतांत्रिक देश होने के नाते परमाणु परीक्षण नही करना चाहिए। वर्ष 1971 मे भारत–पाकिस्तान युद्ध का पुनः होना एवं सं0 रा0 अमेरिका का पाकिस्तान के पक्ष मे बंगाल की खाड़ी मे परमाणु शक्ति सहित सातवाँ बेड़ा भारत के विरूद्ध ले आना तथा पाकिस्तान चीन एवं सं0रा0 अमेरिका के बनते त्रिकोण ने भारतीय सुरक्षा के समक्ष गंभीर चुनौती उत्पन्न की। जिसके परिणाम स्वरुप अब संभ्रांत वर्गो मे द हॉक के समर्थक भारी पड़ने लगे जिसने भारतीय नीति निर्माताओं पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव डाला। इन वाह्य असुरक्षाओं को ध्यान मे रखते हुए एवं अपने विकासात्मक कार्य तथा राष्ट्रीय सीमांओं की सुरक्षा एवं संप्रभूता हेतु भारत के लिए आवश्यक हो गया कि वो भी अपना परमाणु परीक्षण करे तथा शक्ति संतुलन की राजनीति मे अपनी शक्ति को स्थापित करे।

श्रीमती इंदिरा गांधी के नेतृत्व मे भारत ने अमेरिकी और कैनेडीयन रिएक्टर का प्रयोग करके 18 मई 1974 को पोखरण मे बुद्ध पूर्णिमा के दिन तीन नाभिकीय परीक्षण को सफलतापूर्वक संपन्न किया। जिसे भारत ने स्माइलिंग बुद्धा का नाम दिया। जिसे परिभाषित करते हुए भारत ने इसे शांतिपूर्ण नाभिकीय परीक्षण कहा। यह किसी को नुकसान पहुंचाने के लिए नही बल्कि सकारात्मक कार्य हेतु परीक्षण है। इस परीक्षण के परिणामस्वरुप सं0रा0 अमेरिका, कनाडा तथा ब्रिटेन ने भारत को नाभिकीय सामग्री देना बन्द कर दिया । पश्चिमी राष्ट्रों के नेतृत्व मे वर्ष 1974 मे लंदन आपूर्ति समूह बना जिसे हम आज परमाणु आपूर्ति समूह (NSG) कहते है। यह समूह उन्ही राष्ट्रों को परमाणु तकनीक एवं सामग्री उपलब्ध कराता है जो इसके सदस्य है। इस समूह का लक्ष्य परमाणु शस्त्र तकनीकी एवं सामग्री के व्यापार को रोकना था।

शीत युद्ध की समाप्ति, सोवियत संघ के विघटन से भारत को राजनैतिक एवं सामरिक सहयोग को बड़ी क्षति हुई। जहां सोवियत संघ शीत युद्ध के दौरान संयुक्त राष्ट्र संघ मे ज्यादातर मुद्दो पर भारत का साथ दिया करता था अब वह राष्ट्र कमजोर पड़ चुका था। पोखरण–1 के पश्चात् भारत एक तरफ अंतर्राष्ट्रीय दबाव एवं प्रतिबंधों को झेल रहा था वहीं एन एस जी के भाग न होने से नाभिकीय तकनीकी एवं सामग्री तक पहुंच कठीन हो गयी। वही दूसरी तरफ सं0रा0 अमेरिका अकेला ऐसा था जिसकी शक्ति वैश्विक पटल पर उभर चुकी थी। अर्थात् अब विश्व द्विध्रुवीय न होकर एक ध्रुवीय हो चुका था। एक तरफ जहां सं0रा0 अमेरिका, यूरोपीय संघ, जापान एवं चीन के मध्य आपसी सहयोग मे वृद्धि हो रही थी वही दूसरी तरफ भारत के पड़ोसी देश पाकिस्तान की भी परमाणु हथियार तक पहुंच हो चुकी थी। इन प्रतिकूल परिस्थितियों मे भारत ने अपना द्वितीय परीक्षण प्रधानमंत्री अटल विहारी वाजपेयी के नेतृत्व मे वर्ष 1998 मे 11 एवं 13 मई किये, जिसमें कुल पांच परीक्षण संपन्न किये गये। जिसे पोखरण–2 अथवा ऑपरेशन शक्ति कहा जाता है। इन दो परीक्षणों के पश्चात् भारत एक परमाणु संपन्न देश बन जाता है। जिसे एक परमाणु सिद्धांत घोषित करने की आवश्यकता होती है। जिसकी रुपरेखा 17 अगस्त 1999 मे राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार एजेंसी द्वारा तैयार किया जाता है जिसे 4 जनवरी 2003 को सार्वजनिक किया गया। जिसमें 8 ऐसे सिद्धांत है जो भारत की परमाणु नीति को स्पष्ट करते है–

1. क्रेडिबल मिनिमम डिटरेन्टः– भारत अपना परमाणु कार्यक्रम उस स्तर तक ही रखेगा जिससे वह अपनी सुरक्षा को सुनिश्चित कर सके।
2. नो फर्स्ट यूज नीति :– भारत पहले कभी परमाणु आक्रमण नही करेगा बल्कि परमाणु शक्ति का प्रयोग अपनी प्रतिरक्षा मे करेगा।
3. प्रतिरक्षा मे अवांछनीय विनाश :– प्रतिरक्षा के दौरान भारत परमाणु शक्ति का इतना प्रयोग करेगा की दूसरे को अवांछनीय क्षति पहुंचे।
4. परमाणु शक्ति का प्रयोग राजनैतिक नेतृत्व मे होगा न की सैन्य नेतृत्व मे।
5. भारत परमाणु शक्ति का प्रयोग गैर–परमाणु शक्ति राष्ट्र पर नही करेगा।
6. यदि भारत पर किसी राष्ट्र द्वारा जैविक एवं रासायनिक हथियारों का प्रयोग किय जाता है तो प्रतिउत्तर मे भारत नाभिकीय शक्ति का प्रयोग करेगा।
7. भारत परमाणु संबंधी तकनीकी एवं सामग्री का निर्यात नही करेगा।
8. भारत का प्रयास अब भी परमाणु रहित विश्व के निर्माण मे होगा।

भारत मे नाभिकीय ऊर्जा :

भारत में परमाणु विभाग की स्थापना सन् 1954 में की गई थी, जिसका लक्ष्य भारत को नाभिकीय और विकिरण प्रौद्योगिकी तथा उसके अनुप्रयोगों के विकास एवं विस्तार के माध्यम से भारत को सुरक्षित ऊर्जा के क्षेत्र में आत्मनिर्भर बनाना है। नाभिकीय ऊर्जा के क्षेत्र में भारत का पहला पॉवर संयत्र तारापुर, महाराष्ट्र में स्थापित किया गया, जिसकी क्षमता 150 मेगावाट विद्युत उत्पादन की थी। तब लगातार भारत परमाणु ऊर्जा के क्षेत्र मे उल्लेखनीय वृद्धि की। वर्ष 2014–15 में भारत 5780 मेगावाट विद्युत उत्पदन करता था, जो भारत के कुल ऊर्जा खपत का 3.2 प्रतिशत ही था। एक अनुमान के अनुसार यह क्षमता अगले 10 वर्षों में 22 परमाणु संयत्रों के माध्यम से 17250 मेगावाट हो जायेगी। ध्यातव्य है कि भारत अभी भी वैश्विक नाभिकीय ऊर्जा के उत्पादन में तेरहवें स्थान पर ही है, जिसकी कुल ऊर्जा उत्पादन जून 2021 में 40.4 टेरावाट घण्टा है।

उपरोक्त कार्य क्षमता के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भारत ने परमाणु ऊर्जा के क्षेत्र मे लगातार उल्लेखनीय प्रसास किए है एवं भारत के नाभिकीय बिजली संयंत्रों के कार्य निष्पादन एवं नाभिकीय संरक्षा के उपाय संतोषजनक रहा है।

वैश्विक जलवायु परिवर्तन एवं ग्रीन हाउस गैस के मद्देनजर वैश्विक नेतृत्व का ध्यान ऊर्जा के गैर–परंपरागत स्रोतों पर टिका हुआ है। COP-21 के मंच से विश्व के तमाम राष्ट्राध्यक्षों ने अपने–अपने देशों के द्वारा कार्बन उत्सर्जन को कम कने का संकल्प लिया है। ध्यातव्य है कि भारत ने भी हाल ही में COP-26 में वर्ष 2070 तक 'नेट 0' कार्बन उत्सर्जन का लक्ष्य रखा है। ऐसे में परमाणु ऊर्जा स्वच्छ एवं बेहतर विकल्प हो सकता है। यदि तकनीकी के हस्तांतरण, इससे उत्पन्न नकारात्मक प्रभाव को खत्म करके आम–जनमानस में उत्पन्न भय को समाप्त करके धारणीय ऊर्जा के प्रति जागरूकता को बढ़ाया जाए तो यह लक्ष्य प्राप्त करना कठिन नही होगा। जैसा कि कुडनकुसम परियोजना के स्थापना के समय घटित हुई थी, जिसमें आम जनता के द्वारा एक बड़ा आंदोलन किया गया था, आम जनता के मन में उत्पन्न भय को समाप्त करने हेतु अंतर्राष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेंसी को उन्नत तकनीकी विकासशील राष्ट्रों को न्यूनतम लागत पर उपलब्ध करानी चाहिए।

विश्व की लगातार बढ़ती ऊर्जा की मांग और धारणीय न्यून ऊर्जा का उत्पादन सुनिश्चित करने हेतु नाभिकीय ऊर्जा को ही भावी एवं विश्वषनीय विकल्प बनाने की आवश्यकता है। इस परिपेक्ष्य मे भारत का अनुमान है कि आने वाले दशकों मे नाभिकीय ऊर्जा के संरक्षापूर्ण, सुरक्षित और अधिक धारणीय उपयोग को बढ़ावा देने हेतु निरंतर प्रयासरत होगा।

निष्कर्ष :

भारत स्वतंत्रता के पश्चात् से ही एक शांतिप्रिय एवं अनाक्रमणकारी देश रहा है। जिसका लक्ष्य शांतिमय विश्व की स्थापना के साथ–साथ विकासात्मक कार्यों हेतु सहयोग को बढ़ावा देना रहा है। इस परिपेक्ष्य मे भारत के परमाणु शक्ति को डिटरेन्स (निवारण) शक्ति के रुप मे देखा जाना

चाहिए। भारत की नो फर्स्ट यूज की नीति सर्वकालिक है यह महज नीति ही नही बल्कि वास्तविकता भी है जिसका भारत ने विपरीत परिस्थितियों मे पालन भी किया है। कारगिल युद्ध के समय यह कयास लगाया जा रहा था कि यह युद्ध परमाणु युद्ध मे तब्दील हो जायेगा लेकिन भारत ने संयम दिखाते हुए पारंपरिक तरीके से ही युद्ध पर विजय प्राप्त की। वर्तमान में परमाणु हथियारों को लेकर भारत की छवि एक जिम्मेदार राष्ट्र की बनी है तथा एन पी टी पर हस्ताक्षर क बिना ही भारत–सं0रा0 अमेरिका संधि 123 संपन्न हुई।एवं भारत एमटीसीआर, वासेनार ऑरेंजमेन्ट, आस्ट्रेलिया समूह का हिस्सा बन चुका है। इसके अतिरिक्त भारत एनएसजी की सदस्यता हेतु भी प्रयासरत है, जिसकी सदस्यता मे चीन एक बड़ी बाधा है। जबकि अन्य देशों के मत भारत के पक्ष मे है। वर्ष 2018 मे भारत की वैलेस्टिक मिसाइल वाली परमाणु पनडुब्बी आइएनएस अरिहंत ने अपना पहला अभियान पूरा किया इस अभियान के पूरा होने के साथ ही भारत उन चुनिंदा देशों की कतार मे शामिल हो गया जिनके पास परमाणु ट्राइडेन्ट मौजूद हैं। इस उपलब्धि के उपलक्ष्य मे प्रधानमंत्री ने अपनी परमाणु प्रतिबद्धता को दोहराते हुए कहा था कि नो फर्स्ट यूज नीति भारत के परमाणु नीति का अखण्ड भाग है।

सन्दर्भ सूची :

1. Rajesh Basrur. (2010, Summer). India and Nuclear Disarmament Security Challenges. Volume-6. PP 69-81.
2. Vivek Pradhan. (Sep 25, 2017). The Howks and Doves: China's First Nuclear Test and India Nuclear Thought. https://www.wilsoncenter.org/blog-post/hawks-and-doves-chinas-first-nuclear-test-and-indian-nuclear-thought
3. R. Trumbull. (May 20, 1974). Canada Suspend Atom Aid Do India, Newyork Times. https://www.nytimes.com/1974/05/23/archives/canada-suspends-atom-aid-to-india.html
4. Cris Odgen. (2011.) India and Nuclear Weapons, Scott Devid (Ed), Hand Book of India's International Relation: By Routledge.
5. Sikri Rajeev. (2019). Challenge And Strategy: Rethinking India's Foreign Policy: By Sage.
6. Khanna V.N. (2012).India Foreign Policy. Vikas Publishing House Pvt Ltd.
7. Fadia B.L. (Ed) 2021. International Politics. Sahitya Bhawan.
8. Amit Bhandari. (March 18, 2016).Cheaper Renewable Energy Soars Post Nuclear Power in India. IndiaSpend https://www.indiaspend.com/cheaper-renewable-energy-soars-past-nuclear-power-in-india-38837/
9. IAEA. Report. (June 2021). Power Reactor Information System Database.

***

संस्कृत वाङ्मय में प्रतिपादित निमित्तज्ञान कला

*डॉ. शुभ्रा सिंह**

श्रुताप्सरोगीतिरपि क्षणेऽस्मिन्हरः प्रसंख्यानपरोबभूव[1].....महाकवि कालिदास ने 'कुमारसम्भवम्' के इस श्लोक में 'संख्यान' शब्द का प्रयोग किया है। यह संख्यान शब्द'आत्मानुसन्धान' अर्थ में अभिप्रेत है। महाकवि कहते हैं कि उस समय मात्र शिव हीअप्सराओं के गीतों को सुनकर भी आत्मानुसन्धान में लगे रहें। यहाँ संख्यान शब्द सेमहाकवि ने आत्मचिन्तन और मनन के पश्चात् 'स्व' के कलन या प्रकटन की ओर हीइंगित किया है। यह आत्मचिन्तन ही कला के प्रस्फुटन का बीज है। अपने मनःस्थितभाव को जानकर उसे अभिव्यक्त करना, और इस प्रकार अभिव्यक्त करना की वह द्रष्टाके मन को द्रवीभूत कर दें, यही 'कला' है।

संस्कृत वाङ्मय में कला को विशेष स्थान प्रदान किया गया है। 'कला' शब्द कासर्वप्रथम प्रयोग 'ऋग्वेद' में प्राप्त होता है– **'यथा कलां यथा शफम् यथा ऋणंसंनयामसि।'**[2] इसके अतिरिक्त उपनिषदों में भी प्राचीदिक् कला, दक्षिणादिक् कला,उदीचीदिक् कला इस प्रकार से अनेकशः 'कला' शब्द का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है।वैदिक वाङ्मय में 'शिल्प' शब्द उपयोगी और ललित दोनों प्रकार के कलाओं के अर्थ मेंव्यवहृत होता रहा, तत्पश्चात् आचार्य भरत ने सर्वप्रथम ललित कला के अर्थ में कलाशब्द का प्रयोग किया–'न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।'[3]कला कास्वरूप अत्यन्त व्यापक एवं वैविध्यपूर्ण है। इसकी संख्या गणना में भी पर्याप्त विभिन्नताहै।यजुर्वेद के तीसरे अध्याय में 64 कलाओं का परिगणन है। आचार्य वात्स्यायन के ग्रन्थऔर शुक्रनीति में भी कला के 64 प्रकारों का विश्लेषण है। ललितविस्तर में 86 भेद औरप्रबन्धकोष में 72 प्रकारों का निरूपण किया गया है। क्षेमेन्द्र के कलाविलास में सर्वाधिककलाओं की गणना की गयी है। इस प्रकार कलाओं की संख्या गणना के सम्बन्ध मेंसर्वाधिक प्रचलित संख्या 64 है।

यही कारण है कि जब हम संस्कृत वाङ्मय के परिप्रेक्ष्य में कला शब्द का प्रयोगकरते हैं तब हमारी दृष्टि सर्वप्रथम महर्षि वात्स्यायन द्वारा प्रतिपादित गीत, वाद्य, नृत्य,आलेख्य इत्यादि चौंसठ कलाओं की ओर जाती है। आचार्य वात्स्यायन प्रणीत चौंसठकलाओं में 'निमित्तज्ञान' एक प्रमुख कला है। जिसे महर्षि ने अपने ग्रन्थ में इस प्रकारवर्णित किया है–

निमित्तं धर्मक्षमावर्गेऽन्तर्गतं। शुभाशुभादेशपरिज्ञानफलम्। तत्रच प्रष्टुरभिज्ञानार्थम्, एवंरूपया स्त्रिया तव संप्रयोग इति कामोपहसितप्राया आदेशाइति। निमित्तज्ञानमिति सामान्येनोक्तम्।[4]

शकुन–अपशकुन सामान्य जीवन में प्रचलित महत्त्वपूर्ण शब्द है। किसी कार्य सेपूर्व होने वाला शुभसंकेत ही शकुन कहलाता है और किसी अशुभ संकेत का मिलना हीअपशकुन है। इसे ही आचार्य वात्स्यायन ने निमित्तज्ञान कला के अन्तर्गत माना है।

संस्कृत वाङ्मय में आदिकाल से अद्यपर्यन्त सभी महाकवियों ने निमित्तज्ञान कीकला को अपनी लेखनी का आश्रय प्रदान किया है। काव्य, महाकाव्य, नाटक, आख्यानादिमें प्रायशः शकुन–अपशकुन की चर्चा आयी है। आदिकवि वाल्मीकि ने 'रामायण' ग्रन्थ मेंसविस्तार **निमित्त ज्ञान** का वर्णन किया है। रामायण काल में शकुन अपशकुन पर पर्याप्तविचार किया जाता था। कोई भी नवीन कार्य शुभ घड़ी और शुभ मुहूर्त मेंमंगलवाचनपूर्वक ही प्रारम्भ होता था। गृहप्रवेश करना हो अथवा राज्याभिषेक, विवाह होअथवा यज्ञानुष्ठान, सामान्य यात्रा हो अथवा शत्रु से युद्ध के लिए विजय–प्रस्थान सभीकार्य मंगल–मुहूर्त में करना ही कल्याणकारी माना जाता था।[5]

'रामायण' में शताधिक स्थलों पर शकुन–अपशकुन वर्णित है। यह निमित्त या तोप्रत्यक्षतः दिखाई दिए हैं अथवा स्वप्न के माध्यम से स्पष्ट हुए हैं। अरण्यकाण्ड में जबलंकाधिपति सीता का हरण करके ले चला, तब आर्तस्वर में विलाप करती हुई सीता नेकहा–

---

* असिस्टेन्ट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, हिन्दू स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ज़मानियॉ, गाजीपुर

निमित्तं लक्षणं स्वप्नं शकुनिस्वरदर्शनम्।
अवश्यं सुखदुःखेषु नराणां परिदृश्यते।।[6]

इसी प्रकार रामायण काल में कहीं प्रस्थान करने से पूर्व मंगलनिमित्त का दर्शनकरना आवश्यक समझा जाता था–**'प्रयाणमांगल्यनिमित्तदर्शनात्।'**[7]

भरतजी ने 'मैत्र' नामक मुहूर्त में प्रयागवन की ओर प्रस्थान किया था, क्योंकि यहयात्रा का शुभ मुहूर्त था–**'मैत्रे मुहूर्ते प्रययौ प्रयागवनमुत्तमम्।।**[8]

शकुन के साथ–साथ रामायण में अपशकुन भी वर्णित है। असमय प्राकृतिक परिवर्तन जैसे– वृक्षों का सहसा टूट जाना, पुष्प–फल का झड़ जाना, वायु का प्रतिकूलप्रवाहित होना, मन्त्रपूर्वक हवि सामग्री डालने पर भी अग्निक्षय होना इत्यादि अशुभ शकुनमाने जाते थे। स्वप्न में वानर दिखना भी अमङ्गलसूचक माना जाता था। अशोकवाटिका मेंसीता ने हनुमान् को प्रत्यक्ष देखकर भी स्वप्न का भ्रम किया और अत्यन्त चिन्तित होगईं–

स्वप्ने मयाऽयं विकृतोऽद्य दृष्टः शाखामृगः शास्त्रगणैर्निषिद्धः।
स्वप्ने दृष्ट्वा हि वानरम् न शक्योऽभ्युदयः प्राप्तुं ...।।[9]

रामायण की भांति 'महाभारत' महाकाव्य में भी निमित्त लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं,जहाँ कही भी युद्ध के प्रसंग हैं, वहाँ पराजित होनी वाली सेना के लिए अपशकुन केसंकेत वर्णित हैं। द्रोणपर्व के 88वें अध्याय में संजय धृतराष्ट्र से कहते हैं कि महाराज!युद्ध से पूर्व आपके पुत्रों के लिए अमंगलकारी और अर्जुन के लिए मंगलकारी शकुनप्रकट होने लगे–

लोकक्षये महाराज यादृशास्तादृशा हि ते ।
अशिवा धार्तराष्ट्राणां शिवाः पार्थस्य संयुगे ।।[11]

आर्षकाव्यों की भाँति हमारे संस्कृत साहित्य के महाकवियों ने भी शकुन–अपशकुनपर पर्याप्त विचार किया है। सर्वशास्त्रज्ञाता महाकवि कालिदास ने तो अपने प्रायः सभीग्रन्थों में नक्षत्र, तारा, तिथि, मुहूर्त, काल–विधान, भवितव्यता शकुन–अपशकुन इत्यादि काप्रसंगवश समायोजन किया है। रघुवंशम् चौदहवें सर्ग में लक्ष्मण सीता को वन में छोड़नेजाते समय पूर्णगर्भा होने के कारण भावी संकट के विषय में कुछ नहीं बताते हैं, परन्तु सीता केदाहिने नेत्र ने फड़ककर जीवन में आने वाले दुःख की सूचना दे ही दी। इस अशकुन केकारण सीता भयाक्रान्त होकर अपने प्रियजनों की मंगलकामना करने लगीं–

जुगूह तस्याः पथि लक्ष्मणो यत्सव्येतरेण स्फुरता तदक्ष्णा।
आख्यातमस्यै गुरु भावि दुःखमत्यन्तलुप्तप्रियदर्शनेन।।
सा दुर्निमित्तोपगताद्विषादत्सद्यः परिम्लानमुखारविन्दा।।[12]

शास्त्रों में भी स्त्रियों का दाहिना अंग फड़कना अशुभनिमित्त और पुरुषों का दायांअंगस्फुरण शुभशकुन माना जाता है। अभिज्ञानशाकुन्तलम् में राजा दुष्यंत के कण्व–आश्रममें प्रवेश करते ही उनकी दाहिनी भुजा फड़क उठती है, इसका परिणाम ज्योतिषशास्त्र मेंस्त्री–लाभ कहा गया है। राजा विचार करते हैं कि–**शान्तमिदमाश्रमपदं स्फुरति च बाहुःकुतः फलमिहास्य।**[13]

इसी प्रकार 'विक्रमोर्वशीयम्' में राजा, विदूषक से कहता है कि मेरी दाहिनी भुजाफड़ककर उर्वशी से मिलन की आशा बँधा रही है–**'अयं मां स्पन्दितर्बाहुराश्वासयतिदक्षिणः।।'**[14]

'मेघदूतम्' में यक्ष अपनी प्रिया से मिलन हेतु आशान्वित होकर मेघ से कहता हैकि हे मेघ! तुम अपने कार्य में अवश्य सफलता प्राप्त करोगे, क्योंकि तुम्हारे प्रस्थान परसभी शुभ निमित्त प्रकट हो रहे हैं, यह चातक पक्षी भी बायीं ओर होकर मीठी बोली बोलरहा है–

मन्दं मन्दं नुदति पवनश्चानूकूलो यथा त्वां वामश्चायं नदति मधुरंचातकस्ते सगन्धः।[15]

शास्त्रों में वायु का मन्दगति से पीछे की ओर से बहना शुभ माना जाता है औरइसी प्रकार पक्षियों का मधुर कलरव करते हुए बाईं ओर से जाना शुभ निमित्त माना गयाहै। अभिज्ञानशाकुन्तलम् के चतुर्थ अंक में भी शकुन्तला की विदाई के अवसर पर ऋषिकण्व आशीर्वाद देते हुए–**'शान्तानुकूलपवनश्च शिवश्च पन्थाः'**[16] कहते हैं, यहाँ 'अनुकूल' पद में ऋषि शुभ शकुन की ओर ही इंगित कर रहे हैं।

महाकविकालिदास ने अशुभ निमित्त की चर्चा कुमारसम्भवम् के चौदहवें सर्ग में अति विस्तारसे की है। तारकासुर के वध के समय प्रकृति के समस्त उपादान उसके भावी अमंगलको अभिवयक्त करने लगते हैं।[17]

महाकवि कालिदास का अनुसरण करते हुए अन्य विद्वानों ने भी अपने ग्रन्थों मेंनिमित्तज्ञान को वर्णित किया है। महाकवि भारवि 'किरातार्जुनीयम्' के छठे सर्ग में अर्जुनकी तपश्चर्या का वर्णन करते हुए कहते हैं कि अर्जुन की तपस्या के फलीभूत होने काशुभ संकेत खिले हुए पुष्प ने दे दीया–

महते फलाय तदवेक्ष्य शिवं विकसन्निमित्तकुसुमं स पुरः।[18]

लोक में आज भी किसी के प्रवास के समय अश्रुपात, या पीछे से टोकना अमंगलशकुन माना जाता है। महाकवि माघ ने अपने ग्रन्थ के पन्द्रहवें सर्ग में अशुभ निमित्त काविस्तृत वर्णन किया है। शिशुपाल की सेना के राजाओं के समक्ष युद्ध में प्रस्थान से पूर्वअनेक अपशकुन सूचक चेष्टाएँ होती हैं, उनकी स्त्रियों के गिरते हुए अश्रु भावी अमंगलका संकेत करते है–

व्रजतः क्व तात व्रजसीति परिचयगतार्थमस्फुटम्।
धैर्यमभिनदुदितं शिशुना जननीनिर्भर्त्सनविवृद्धमन्युना।19

महाकवि श्रीहर्ष ने भी अपने 'नैषधीयचरित' महाकाव्य में इस शकुन का पर्याप्तवर्णन किया है। यथा दशम सर्ग से एक उदाहरण प्रस्तुत है–

तत्कालवेद्यैः शकुनस्वराद्यैराप्तामवाप्तां नृपतिः प्रतीत्य।
तां लोकपालैकधुरीण एष तस्यै सपर्यामुचितां दिदेश।।[20]

अर्थात् मंगलवेला उपस्थित होने पर दक्षिण भुजा, दक्षिण नेत्र आदि का स्पन्दन होता है,नैषध के राजा नल के साथ भी स्वयंवर सभा में कुछ ऐसे ही शुभ निमित्त उपस्थित हुए।

संस्कृत वाङ्मय के काव्यों, महाकाव्यों नाटकों आदि में शुभाशुभ विचार कोलोक–सामान्य के आचार–व्यवहार का आवश्यक अंग माना गया है। यही कारण है किभारतीय परम्परा में 'निमित्तज्ञान' एक विशेष 'कला' के रूप में वर्णित है। अतः हमारेऋषि–मनीषियों द्वारा प्रदत्त इस शास्त्रीय कला को हमें एक धरोहर के रूप में स्वस्थमानसिकता के साथ सुरक्षित रखना चाहिए।

सन्दर्भ सूची :

1. कुमारसम्भवम् – 3/40
2. ऋग्वेद – 8/47/16
3. आचार्यभरत–नाट्यशास्त्र
4. कामसूत्रम् – विद्यासमुद्देशप्रकरणम्
5. अयोध्याकाण्ड – 56/25, 3/41
6. अरण्यकाण्ड–52/4
7. अयोध्याकाण्ड – 46/34
8. अयोध्याकाण्ड – 89/21
9. रामायण–सुन्दरकाण्ड – 32/9, 34/22–33
10. महा0 शल्यपर्व – 56/8–13
    महा0 कर्णपर्व – 37/3–8
11. महा0, द्रोणपर्व – 88/5
12. रघुवंशम् –14/49–50
13. अभिज्ञानशाकुन्तलम् – 1/16
14. विक्रमोर्वशीयम् – 3/9
15. मेघदूतम् – पूर्वमेघ /10
16. अभिज्ञानशाकुन्तलम् – 4/11
17. कुमारसम्भवम् – 14/11–25
18. किरातार्जुनीयम् –6/28
19. शिशुपालवधम् – 15/87
20. नैषध – 10/91

***

गाँधी चिन्तन की अवधारणा और आतंकवाद का समाधान

*डॉ. रेशमा सुलताना**

सारांश :

गांधी दर्शन के दार्शनिक आयाम में सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य व ईश्वर सम्बंधी अवधारणा महत्वपूर्ण है, जिससे आतंकवाद का सामना किया जा सकता है। गांधी ने सत्य व अहिंसा की अवधारणा को व्यापक रूप में लिया है तथा राजनीति से इसे सम्बद्ध करके देखा गया है। अरस्तू व मैकियावली के विपरीत महात्मा गाँधी ने राजनीति व धर्म के बीच समन्वय किया है, हालांकि धर्म का स्म्बंध उनके लिए सत्य, अहिंसा, प्रेम, विश्वास, ईश्वर, सादगी व सदाचार का कार्य है। वर्तमान में आतंकवाद का प्रभाव मानवीय जीवन के सभी पक्षों को प्रभावित किया है। इसलिए दार्शनिक पक्ष को प्रभावित होना स्वाभाविक है। आज भले ही सत्य, अहिंसा, मानवीयता जैसे सात्विक व आध्यात्मिक मूल्यों पर ध्यान नहीं दिया जा रहा है, परन्तु यह अवधारणा महत्वपूर्ण है। इस सन्दर्भ में यह अनिवार्य है तथा बीमार समाज के लिए यह औषधि है। यहाँ यह कहा जा सकता है कि आतंकवादी से जन्मी नकारात्मक संस्कृति को गांधी दर्शन का दार्शनिक पक्ष प्रतिबंधित करता है, भारतीय संस्कृति को अप्रभावित बनाये रहने का सफल प्रयास करता है। इतना ही नहीं, विश्व की संस्कृति को गांधी दर्शन के दार्शनिक आयाम का आार प्रदान कर स्वस्थ बनाया जा सकता है।

शब्द कुंजी :– दर्शन, अवधारणा, आतंकवाद, सत्य, अहिंसा, सात्विक, आध्यात्मिक, आस्था।

महात्मा गांधी की आध्यात्मिक आचार–संहिता में धर्म, सत्य, ईश्वर, अहिंसा, साधन की पवित्रता आदि का विशिष्ट स्थान है।[1] मनुष्य स्वभाव से ही धार्मिक होता है। वे लोग, जो अपने को नास्तिक कहते हैं, वे ईश्वर की सत्ता को भले ही इनकार करते हैं, लेकिन वे किसी एक आस्था में बंधे होते हैं।[2] वही आस्था उनके लिए धर्म है।[3] इसलिए प्रत्येक मनुष्य स्वभाव से धार्मिक होता है। किसी का स्वभाव से धार्मिक होना और किसी अन्य का धर्मप्राण होना अपने आप में बहुत अन्तर रखते हैं। किसी का धार्मिक होने से यही अर्थ निकलता है कि कोई मनुष्य किसी आस्था में बंधे होने के कारण समय–समय पर उस आस्था को याद कर लेता है, लेकिन कोई धर्मप्राण हो तो वह हर पल, हर क्षण, सोते–जागते, उठते–बैठते, चलते–फिरते धर्म के साथ रखता है। उसमें और धर्म में कुछ भी अन्तर नहीं रह जाता। दोनों ही एक प्राण हो जाते हैं। महात्मा गांधी ऐसे ही एक धर्म–प्राण मनीषी थे। उन्होंने कहा– ''अपने हर एक शब्द के पीछे जिसे मैंने उच्चारित किया हो और प्रत्येक कार्य के पीछे जिसे मैंने किया हो उन सबके पीछे धार्मिक चेतना और सम्पूर्ण धार्मिक उद्देश्य मेरे लोक जीवन में रहा है।''[4] धर्म से भी आतंकवाद का समाधान हो सकता है लेकिन धर्म में निरपेक्षता आवश्यक है।

आतंकवाद में गांधी के इन मान्यताओं की अनुप्रयोग की अनिवार्यता है। आज समाज के अन्दर धर्म को सकारात्मक रूप में स्वीकार करने की आवश्यकता है। यह शिक्षा गांधी दर्शन का दार्शनिक आयाम हमें बताता है। आज के लोगों का धार्मिक बनाने की आवश्यकता है। यहाँ धार्मिक बनाने का तात्पर्य है – विशेष धर्मों से निरपेक्ष मानव धर्म से जोड़ना। धर्म और राजनीति के बीच अन्तर से सम्बंधा को स्पष्ट करते हुए गांधीजी ने कहा – ''मैं आज तक जितने धार्मिक पुरुषों से मिला हूँ वे अन्दर–ही–अन्दर राजनीतिक रहे हैं, किन्तु मैं जो राजनीतिज्ञ का जामा पहने घूमता हूँ, हृदय से सम्पूर्णतः धार्मिक मनुष्य हूँ।''[5] गांधीजी का राजदर्शन और राजनीतिक पद्धति धार्मिक और नैतिक सिद्धान्तों द्वारा सम्पूर्णतः प्रभावित है। महात्मा गांधी किसी भी राजनीति की कल्पना बिना धर्म क नहीं कर सकते थे। राजनीतिक मनुष्य के जीवन के साथ इतनी सम्बन्धित है कि मनुष्य उसके बिना जीवित नहीं रह सकता। गांधीजी राजनीति को एक आवश्यक बुराई मानते हैं। गांधीजी ने कहा – ''यदि मैं राजनीति में हिस्सा लेता हूँ तो इसलिए कि आज राजनीति हमें साँप के गुजलक जैसे घेर हुए हैं,

* असिस्टेंट प्रोफेसर, दर्शनशास्त्र विभाग, वैशाली महिला कॉलेज, वैशाली (बिहार)

जिसके शिकंजे से चाहे कोई कितनी ही कोशिश करे, बाहर नहीं जा सकता। मैं उससे बराबर जूझना चाहता हूँ। मैं राजनीति में धर्म का समावेश चाहता हूँ।''[6]

गांधीजी को राजनीति की ओर धर्म प्रवृत्त करता है। गांधीजी की यह मान्यता थी कि अपने जीवन के उद्दश्य आत्मानुभूति को उस समय तक चरितार्थ नहीं कर सकते जब तक कि वे सम्पूर्ण मानवता के साथ एकाकार नहीं हो जाते। यही कर्म गांधीजी को राजनीति की ओर प्रवृत्त करता है, क्योंकि मनुष्य के जीवन के सारे कार्यकलाप एक–दूसरे से गुत्थे हुए हैं। जैसे– सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक। उन्हें एक–दूसरे से सम्पूर्णतः अलग करके प्रत्येक को एकदम पृथक् स्वतंत्र अस्तित्व नहीं प्रदान किया जा सकता। इसलिए गांधीजी अपने इस मत में दृढ़ हैं कि जो यह कहते हैं कि धर्म का राजनीति से कोई सम्बंध नहीं है? वे नहीं जानते कि धर्म का अर्थ क्या है?[7]

महात्मा गांधी ऐसे–वैसे धर्म की बात नहीं करते है। वे ऐसे धर्म की बात करते हैं जो सब धर्मों का समन्वय करता है। गांधीजी के अनुसार, ''धर्म वह है जो मनुष्य की प्रकृति को बदल दें। जो अंतस को सत्य से बांध दे और जो हमेशा शुद्धिकरण करता रहे। जो आत्मा को उस समय तक अशान्त पाता है जब तक वह अपने को प्राप्त न कर ले तथा अपने सृष्टा को जान ले तथा अपने और अपने सृष्टा के अन्तर से स्म्बंध को आत्मसात न कर ले। संक्षेप में, धर्म का अर्थ है सृष्टि के नैतिक शासन के नियमन में विश्वास।''[8]

कितनी अजीब बात है कि आतंकवाद में गांधीजी ने धर्म की सर्वव्यापकता का मूल मन्त्र दिया– जिस देश में धर्म एक विशिष्ट वस्तु है, जिसका संबंध मनुष्य के जीवन के एक विशिष्ट पहले और विशिष्ट काल से है, हम लोग यही समझते आए थे कि जीवन की सारी भूमि धर्म की नहीं। प्राचीनलकाल में जो व्यक्ति धर्म को धारण करना चाहता था उस व्यक्ति को गृहस्थी छोड़कर संन्यास ले लेना पड़ता था। हम तो यही जानते थे कि गृहस्थ और राजा के कर्त्तव्य सदा धार्मिक नहीं हो सकते हैं और न उनका धार्मिक होना अनिवार्य है। हम तो यही मानते थे कि धर्म एक विशिष्ट प्रकार की साधना है जिसका सहारा परलोक के लिए अपनी मोक्ष प्राप्ति के लिए लिया जाता है। इस सम्बंध में रामधारी सिंह दिनकर ने योगीराज अरविन्द और गांधीजी की तुलना करते हुए धर्म की इस सर्वव्यापकता को स्पष्ट करने का प्रयास इस प्रकार किया है – संसार के अन्य देशों में भी किसी भी समय किसी भी संत या सुधारक ने धर्म को सफल जीवन और समाज के हर पहलू पर लागू करने का प्रयास किया था या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता। विचार कदाचित कइयों में मन में उठे होंगे, किन्तु गांधीजी का महत्व यह है कि उन्होंने धर्म को जीवनव्यापी बनाने का दुस्साहसी प्रयोग केवल अपने वैयक्तिक जीवन में ही नहीं, अपने पास आये हुए समाज पर किया। अरविन्द और गांधी में यही भेद है। अरविन्द ने मानव समाज की समस्याओं का यह निदान किया है कि समस्याएँ मनुष्य के बुद्धि से निकली है और इनका समाधन यह है कि मानव समाज मानस के स्तर से उठकर अतिमानस की अवस्था में पहुँच जाए, किन्तु इनकी अतिमानस की कल्पना क्या है? यह समझने में मनुष्य असमर्थ था। अतः अरविन्द और उनके शिष्यों ने अतिमानस की अवधारणा का दायित्व अपने ऊपर लेकर तपस्या आरम्भ कर दी। निदान तो गांधी जी का भी बहुत कुछ वही है जो अरविन्द का है, किन्तु समाधान में दो महात्माओं में भेद है। अरविन्द का समाधन यह है कि श्रेष्ठ साधक तपस्यापूर्वक अतिमानसी शक्तियों का भूतल पर आह्वान करे जिससे मनुष्य का वर्तमान स्पेसीज ;योनिद्ध बदल जाए। गांधीजी प्रत्येक मनुष्य के भीतर धर्म की भावना जगाकर उसकी पीड़ाएँ दूर करना चाहते हैं।[9]

गांधीजी ने अपने आचरण से यह सिद्ध कर दिया कि धर्म किसी खास दिन पर किसी खास घड़ी के लिए नहीं बल्कि वह मनुष्य के प्रत्येक कार्य में प्रतिक्षण विद्यमान रह सकता है। योग और प्राणायाम, पूजा और होम, यज्ञ और तपस्या तथा संसार से अलग रह कर एकातन्त साध्ना के द्वारा व्यक्तिगत मुक्ति खोजने की परम्परा प्राचीन है, किन्तु गांधीजी से पूर्व किसी को भी यह नहीं सूझा था कि राजनीतिक आन्दोलन एवं समाज सेवा के कार्य भी वैयक्तिक मुक्ति के साध्न हो सकते हैं।

महात्मा गांधी के दर्शन की आत्मा ईश्वर पर अखण्ड आस्था में निहित है। उनकी आस्था ईश्वर में इतनी अधिक है। वे मानते हैं कि वे हवा और पानी के बिना रह सकते हैं, परन्तु ईश्वर के

बिना नहीं रह सकते। उन्हें यदि टुकड़े–टुकड़े कर दिया जाये तो भी ईश्वर इतनी शक्ति देगा कि वे ईश्वर को नहीं नकार सकेंगे। गांधीजी मानते हैं कि ईश्वर में जीवन्त आस्था के बिना मनुष्य कोई भी धर्म नहीं कर सकता। यहाँ तक कि अहिंसा भी बिना ईश्वर के निरर्थक है। गांधीजी ने कहा – ''ईश्वर जीवन है, इसलिए अच्छाई जिन बातों को अभिव्यक्त करती है वे मात्र सद्‌गुण नहीं है। अच्छाई ही ईश्वर है। ईश्वर के बिना जिस अच्छाई की कल्पना की जाए वह एक प्राणहीन वस्तु है और उसका अस्तित्व केवल भौतिकवादी है। नैतिकता की भी यही स्थिति है। हमारे अन्दर जो भी नैतिकता होती है या जिस नैतिकता का हमें पोषण करना होता है वह भी ईश्वर से सम्बन्धित हुए बिना सम्भव नहीं है। हम अच्छा बनने की कोशिश इसलिए करते हैं कि हम ईश्वर को पा सकें।''[10] उपरोक्त गांधी दर्शन आतंकवाद पर अंकुश लगा सकता है।

गांधीजी इस विश्वास की व्याख्या करते हुए लिखते हैं – सत्य और अहिंसा के प्रति केवल मात्र यान्त्रिक विश्वास किसी भी कठिन क्षण में टूट सकता है। ईश्वर एक जीवन शक्ति है। हमारा जीवन उस शक्ति से संचालित है। वह शक्ति हमारे अन्दर बसती है, किन्तु उसका सम्बन्ध हमारे शरीर से नहीं होता। जो व्यक्ति उस महान् शक्ति के अस्तित्व से इनकार करता है, वह उस अपरिमित शक्ति के प्रयोग से अपने को वंचित रखता है और क्रियाहीन बन जाता है। वह बिना पतवार के नाव खेता हुआ इधर–उधर भटकता रहता है और बिना कुछ प्रगति किये नष्ट हो जाता है।[11] आतंकवाद को समाप्त करने के लिए अहिंसा आवश्यक है।

यह सही है कि अहिंसा अपने आप में एक महान् शक्ति है, किन्तु यह भी सही है कि ईश्वर के बिना हम उस ईश्वर तक नहीं पहुँच सकते। अहिंसा में जीवन्त आस्था ईश्वर में जीवन आस्था के बिना असम्भव है। उसके बिना उसमें साहस ही पैदा नहीं होगा कि वह बिना क्रोध, बिना भय और बिना प्रतिरोध के मर सके। यह साहस इस विश्वास से पैदा होता है कि हमारे हृदय में ईश्वर वास है और ईश्वर के निकट होने से भला भय कैसा।[12] वास्तव में अहिंसा के अन्तर्गत अहिंसक स्वयं अपनी शक्ति से कार्य नहीं करता है। ईश्वर उसे वह शक्ति प्रदान करता है।[13] किसी भी अहिंसक व्यक्ति के लिए प्रथम और अन्तिम ढाल ईश्वर के प्रति उसकी अडिग आस्था है।[15] हर सत्याग्रही का अस्त्र है ईश्वर उसे चाहे किसी नाम से क्यों न पुकारा जाए। बिना ईश्वर के सत्याग्रही अपने विरोधी के प्रचण्ड शस्त्रागत के सामने एकदम निशस्त्र हो जाता है, किन्तु ईश्वर को अपनी रक्षा के रूप में स्वीकार करके वह सर्वशक्तिसम्पन्न पार्थिक शक्ति के सामने भी नहीं झुकेगा।[16]

गांधीजी का विश्वास था कि ईश्वर जीवन्त है। उसमें जीवन्त आस्था के बिना मनुष्य कोई भी कर्म नहीं कर सकता, यहाँ तक तक अहिंसा भी बिना ईश्वर के निरर्थक है। ईश्वर के बिना किसी अच्छाई की कल्पना नहीं की जा सकती। हमारे भीतर जो भी नैतिकता विद्यमान है अथवा जिस नैतिकता का हमें पोषण करना है वह भी ईश्वर से सम्बन्धित हुए बिना संभव नहीं है।[17] गांधीजी ईश्वर में अपनी आस्था को दूसरों पर बलपूर्वक थोपने के पक्ष में नहीं थे। उनकी मान्यता थी कि ईश्वर दया और करुणा का सागर है जो अपनी सत्ता मनवाने को इच्छुक नहीं है। गांधीजी ने ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध तो नहीं किया, लेकिन इस सम्बंध में कुछ चिरप्रचलित 'प्रमाण' अवश्य दोहराये। एक स्थल पर उन्होंने कहा– 'ईश्वर के अस्तित्व के सीकित प्रमाण देना सम्भव है। जगत् में व्यवस्था है और प्रत्येक पदार्थ तथा प्रत्येक जीवित प्राणी एक अटल नियम से बँधा हुआ है। यह नियम अन्ध नहीं है, क्योंकि मनुष्यों के आचरण को किसी भी अन्ध नियम के अनुसार नहीं चलाया जा सकता है. . .। तो फिर जगत जीवन को चलाने वाला यह नियम ईश्वर की है।''[18] गांधीजी ने कहा कि जब चारों ओर हर चीज बदल रही है, नष्ट हो रही है, तब सम्पूर्ण परिवर्तन के पीछे कोई चेतन–शक्ति ऐसी अवश्य है जो बदलती नहीं। यह चेतन शक्ति सब को धरण किये हुए है, सबका सृजन करती है, संहार करती है और पुनः उसका सृजन करती है। जीवनदायी शक्ति अथवा सत्ता ईश्वर के सिवाय और कुछ नहीं है।

गांधीवादी चिन्तन की सामान्य प्रवृत्ति, जहाँ तक ईश्वर सम्बन्धी धरणा का प्रश्न है, बौद्धिक दृष्टिकोण को दूसरा स्थान देने की है।[19] ''जो केवल हिन्दू बुद्धि को सन्तोष दे, यदि यह सम्भव भी हो तो, वह ईश्वर नहीं है। ईश्वर होने के लिए ईश्वर का हृदय पर राज करना और उसको नया रूप देना

आवश्यक है।'' गांधीजी का विश्वास था कि ईश्वर में आस्था में आस्था जीवन को निखारती है और हृदय में ज्ञान तथा प्रकाश का सागर उंडेलती है। ईश्वर–शक्ति जीवन को पवित्र, उदार और सहिष्णु बनाती है। इस ईश्वर को बुद्धि से नहीं माप सकते, तर्क की कसौटी पर नहीं का सकते, विज्ञान के नियमों से नहीं समझ सकते वरन् श्रद्धा के बल पर उसकी सहानुभूति कर सकते हैं। श्रद्धा ही वह प्रकाश–शिल्प फेंकती है जिसके द्वारा ईश्वर का साक्षात्कार सम्भव हो। यदि हम अपने हृदय में ईश्वर की उपस्थिति के सत्य की जाँच करना चाहते हैं तो हमें पहले अपने अन्दर जीवित श्रद्धा का विकास करना चाहिए।

आज के मानवतावादी युग में जबकि 'मनुष्य' ही सारे विचारों, सिद्धान्तों एवं ज्ञान–विज्ञान का केन्द्रबिन्दु है, देश की राजधानी दिल्ली, मुम्बई, जम्मू एवं कश्मीर जैसे महानगरों के साथ अमेरिका, लन्दन आदि देशों में ट्रेनों, भीड़–भाड़ वाले स्थानों शहर के व्यस्तम जगहों आदि स्थानों में हिंसा के अनेकानेक विध्वंसकारी घटनाएं आम बात हो गई है, जो मानवता के नाम पर कलंक है। 'साम्यवाद' 'लोकतंत्र' मानवाधिकार की अवधरणाएँ इनके आगे बेइमानी है। आतंक, हिंसा आज के समाज में रोजमर्रा की घटनाएँ हो गयी है। आतंकवादी सम्पूर्ण विश्व में इस तरह फैली हैं कि उन्हें जन–सामान्य के बीच से छांटकर निकालना लगभग असम्भव होता जा रहा है। जन–साधारण के बीच रहकर वे आतंकवादी गतिविधियों से निरन्तर समाज को क्षति पहुँचा रहे हैं, लेकिन इस समस्या का समाधान निकालना मुश्किल हो रहा है।

अहिंसा ही नहीं, गांधी दर्शन के अन्य दार्शनिक मान्यताओं का महत्व आतंकवाद सहित अन्य विश्व समाज के समक्ष उपस्थित समस्याओं के समाधान के सन्दर्भ में है। आज मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में गांधीवादी मूल्यों की स्थापना पर बल दिया जाने लगा है। प्रशासन व राजनीति में पारदर्शिता व निष्पक्षता की वकालत की जाती है, जो गांधी दर्शन के दार्शनिक आयाम एवं चिंतन को प्रासंगिक बनाता है।

सन्दर्भ :

1. यंग इंडिया, भाग–3, पृ॰ 350
2. नटराज, जी.ए. स्पीचेज एण्ड राइटिंग्ज ऑफ महात्मा गांधी, मद्रास, 1922, पृ॰ 40
3. वही, पृ॰ 807
4. महात्मा गांधी, माय एक्सपेरिमेंट्स विद ट्रूथ, पृ॰591
5. हरिजन, 10.2.1940, पृ॰ 445
6. दिनकर, रामधारी सिंह, संस्कृति के चार अध्याय, पृ॰ 631
7. हरिजन, 24.8.1947, पृ॰ 285
8. हरिजन, 20.7.1947, पृ॰ 240
9. हरिजन, 20.7.1938, पृ॰ 152
10. हरिजन, 18.8.1940, पृ॰ 251
11. भट्टाचार्य, प्रभात कुमार, गांधी दर्शन, पृ॰ 63
12. नरवणे, वी.एस., पृ॰ 201
13. यंग इंडिया, भाग–1, पृ॰ 720
14. गांधी, माई एक्सपेरिमेन्ट्स विद ट्रुथ, पृ॰ 72
15. नेहरू, जवाहरलाल नेहरू, एन ऑटोबोयोग्राफी, पृ॰ 505–6
16. राधाकृष्ण एस., ए. आयडियलिस्ट व्यू आफ लाइफ, पृ॰ 153
17. विवेकानन्द–रोम्याँ रोला, इन दी लाइफ ऑफ विवेकानन्द, पृ॰ 23
18. गांधी, एम.के. टू गाँधियन केपेटलिस्ट, पृ॰ 51
19. कृपलानी, जे.बी., गांधी, हिज लाइफ एण्ड थॉट, पृ॰ 337

***

बिहार की स्थानीय राजनीति और पंचायती राज व्यवस्था

*डॉ. शंकर जी**

सारांश

प्राचीन काल से ही भारतीय प्रशासन एवं जनजीवन में पंचायतों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। परंतु धीरे–धीरे पंचायतों का ह्रास होता गया। अंग्रेजी शासन के काल में एक केंद्रित शासन व्यवस्था की स्थापना हुई, जो अंग्रेजी शासन को सुदृढ़ एवं मजबूत करने में सफल रही, परन्तु भारत का विकास तथा जनजीवन पर इसका प्रभाव अच्छा नहीं रहा। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी द्वारा प्रतिपादित 'ग्राम स्वराज' में ग्राम गणराज्य की परिकल्पना की गयी, जिसमें व्यक्ति अपने मामलों तथा कार्यों को समानता तथा पारस्परिक सहयोग के आधार पर प्रबंधित करने हेतु स्वतंत्र है। अतः गाँधी जी ने पंचायती राज व्यवस्था को पुनः जागृत करने पर जोर देते रहे।

शब्द कूजी :– स्थानीय, राजनीति, पंचायतीराज, ग्राम गणराज्य, राष्ट्रपिता, ग्राम स्वराज।

नवनिर्मित पंचायती राज संस्थाओं को ग्रामीण विकास के लिए उत्तरदायी प्रभुता–संपन्न इकाईयों के रूप में पुनर्गठित कर अधिक शक्तियाँ और दायित्व प्रदान किया गया है, जिसके परिणामस्वरूप ये संस्थाएँ भारतीय संघवाद के तृतीय संस्तरण के रूप में बढ़ रही है। भारत के पारंभिक ग्रामीण समाज के आधुनिकीकरण तथा प्रजातांत्रिकरण की दिशा में नई पंचायती राज व्यवस्था एक युगान्तकारी कदम है। इस नई व्यवस्था के संचालन में अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं जो कमोवेश रूप से सभी राज्यों में एक समान हैं। बिहार में पंचायती राज व्यवस्था के क्रियाकलपों में कुछ समस्याएं उत्पन्न होती है। सर्वप्रथम भारतीय राज्यव्यवस्था और समाज में सभी जगह जाति समूह को पर्याप्त महत्व दिया जाता है। दलीय गतिविधियों तथा सरकारी क्रियाकापों में इसका अपना हिस्सा है। राजनीतिक कार्य हेतु खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों को कार्यप्रवृत्त करने में जाति एक अनिवार्य कारक हैं।[1] भारतीय सामाजिक व्यवस्था का सारतत्व जाति प्रथा है। हिंदू दर्शन से वैद्यता प्राप्त जाति व्यवस्था जनसमूह को पौराणिक रूप से जन्म के आधार पर कई संस्तरों में विभाजित कर दिया है तथा इन संस्तरों को कर्त्तव्यों, दायित्वों, प्रस्थिति तथा शक्तियों के विभेदीकृत सेट के साथ असमान रूप से आरोपित कर दिए गए हैं। सामाजिक संस्तरण की यह व्यवस्था पौराणिक काल से चली आ रही है जो अपने सदियों पुराने मानदंडों तथा आदेशों के अनुसार जनमानस के आचार एवं विचारों को नियंत्रित करता है।[2] जाति व्यवस्था के आधार पर सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक असमानताओं का संपोषण करने वाली पारंपरिक भारतीय ग्रामीण समाज आधुनिक राजनीति के असंगत है जो नई पंचायती राज व्यवस्था के सफल कार्यान्वयन की एक मुख्य समस्या है।

बिहार में जाति सामाजिक विभेदीकरण का मूल आधार है। जाति प्रथा ने अनेक असमानताओं को उत्पन्न किया जो बढ़ता ही गया। औपनिवेशिक शासन के प्रभाव के अन्तर्गत सामाजिक प्रगति के लिए जो नए सुअवसर सृजित किए गए उसका लाभ आरंभ में पारंपरिक रूप से विशेष सुविधा प्राप्त जाति समूहों (उच्च जातियों) ने उठाया[3] जिनकी जनसंख्या बिहार में मात्र 13.22 प्रतिशत है, तथापि उन्हें पारंपरिक रूप से धार्मिक श्रेष्ठता, आर्थिक शक्ति तथा सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त रहा है एवं सामाजिक जीवन में वे काफी प्रबल रहे हैं। राज्य के भूमि के एक बड़े भाग पर कब्जा होने के कारण ये आर्थिक रूप से संपन्न रहे हैं और अन्य निम्नतर जातियाँ जिनकी जनसंख्या करीब 52.16 प्रतिशत है, अनुसूचित जातियाँ (14.7 प्रतिशत), अनुसूचित जनजातियाँ (9.05 प्रतिशत) उच्च जातियों के पारंपरिक रूप से ताबेदार रहे हैं।[4] अतः इन अधिसंख्य जाति समूहों को अप्राधिकृत तथा अभिवंचित (दलित) गर्व का नाम दिया गया तथा वे उच्च जाति भू–स्वामियों के बटाईदार, काश्तकार और कृषी मजदूर के के रूप में कार्यरत थे। हिन्दू धर्मिक तथा दार्शनिक व्यवस्था ने धर्म और कर्म सिद्धांत के

* एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, वैशाली महिला कॉलेज, वैशाली

माध्यम से उच्च जातियों की धर्मिक श्रेष्ठता को वैधता प्रदान किया। यद्यपि ब्रिटिश शासन के दौरान पाश्चात्यीकरण के प्रभाव से राजनीति, लोक सेवाओं, व्यापारों तथा व्यवसायों के कुछ नए अवसर प्रदान किए गए जिसे प्राप्त करने के लिए शिक्षा और कौशल की जरूरत थी जिसे प्राप्त करना महँगा था। निम्नतर जातियों में संसाधनों की कमी के कारण वे शिक्षा के सुअवसर का लाभ भी नहीं उठा सके। प्रजातांत्रिकरण तथा मताधिकार की प्रक्रिया भी धीमी और सीमित थी। परिणामस्वरूप जाति व्यवस्था द्वारा स्थापित असमानताओं में वृद्धि ही हुईं तथापि पिछड़ी जातियों में प्रस्थिति गतिशीलता की आकांक्षाएं जाग्रत हुई और वे जाति–संघ की स्थापना करने लगे। इस प्रकार आधुनिक राजनीति ने निम्नतर जातियों को अपने ग्रसित वंचनाओं का एहसास दिलाया तथा उसे दूर करने के लिए संगठित होने के लिए अभिप्रेरित किया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद प्रजातांत्रिक संस्थाओं की स्थापना हुई जिसने सबसे बड़ा प्रहार जातिवादी समाज द्वारा स्थापित संचयी असमानताओं पर किया। वयस्क मताधिकार की व्यवस्था एवं संविधान द्वारा प्रदत्त समानता तथा स्वतंत्रता के अधिकारों ने सारी पारंपरिक असमानताओं पर गहरा आघात किया। बिहार में उच्च–जातियों के बीच आपस में राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने हेतु प्रतिद्वन्द्विता बढ़ गया। अतः प्रत्येक उच्च जाति अपनी राजनीतिक स्थिति को सुदृढ़ करने हेतु अप्राधिकृत जातियों के सदस्यों को अपने दल अथवा गुट में सहयोजित करने लगे। दूसरी तरफ, शिक्षा का क्रमिक प्रसार के फलस्वरूप अप्राधिकृत जातियाँ 'विभाज्य लाभों' में हिस्सा हेतु दावा करने लगी। जैसे ही राजनीतिक जानकारी बढ़ी एंव अबतक राजनीतिक रूप से सुसुप्त जाति समूह अपनी गतिशीलता आकांक्षाओं को संतुष्ट करने के उपकरण के रूप में राजनीति के महत्व को समझने लगे, वैसे ही उच्च जातियों का राजनीतिक संसाधनों पर एकाधिकार समाप्त होने लगा ओर उनके प्रभुत्व को निम्नतर जातियों द्वारा चुनौती दी जाने लगी। इस प्रकार बिहार में सभी जातितों का राजनीतिक प्रक्रिया में सहभागिता धीरे–धीरे बढ़ने लगा और जाति व्यवस्था द्वारा चिरकाल से स्थापित असमानताओं की प्रकीर्णन की प्रवृत्ति शुरू हो गयी।[5]

यद्यपि प्रजातांत्रिक राजव्यवस्था सैद्धांतिक रूप से विवेकहीन जाति व्यवस्था का तिरस्कार करता है, परंतु इसकी राजनीतिक प्रक्रिया व्यावहारिक तथा राजकाजी रूप से जाति–निष्ठाओं को कम–से–कम थोड़ी ही देर तक प्रश्रयदेती है।[6] व्यापक वयस्क मताधिकार का अल्पावधिक प्रभाव जाति को मजबूत करना है।[7] चुनावी प्रजातंत्र ने चरिकालीन जाति–गतिशीलता की प्रक्रियाओं के ऊपर जाति–आधारित राजनीतिक संघटन (मोबिलाइजेशन) की आधुनिक प्रक्रिया को अध्यारोपित किया है। बिहार में राजनीतिक रूप से महत्वाकांक्षी व्यक्ति अपनी जाति या धार्मिक समूह को एक स्वाभाविक राजनीतिक इकाई के रूप में पाकर उसे चुनावी जंग में अपने पक्ष में अक्सर दोहन करते हैं। विशेषकर ग्रामीण बिहार की राजनीति में यह रिवाज आज भी मौजूद है।

इस तरह प्रजातांत्रिक चुनावी पद्धति जाति अभिज्ञान को एक नया जीवन प्रदान किया है। आधुनिक राजनीति को जाति व्यवस्था ने राजनीतिक संघटन हेतु एक संरचनात्मक तथा विचारधरात्मक आधर उपलब्ध कराया है साथ ही खंडयुक्त संगठन तथा एक पचहान व्यवस्था भी प्रदान किया है जिस पर समर्थन का एक निश्चित रूप प्राप्त किया जा सके। आर्थिक तथा राजनीतिक उद्देश्यों हेतु जातियों को संगठित करने के लिए राजनीतिज्ञ पारंपरिक तरीके से राजनीतिक प्रतिद्वद्विता आयोजित कने के लिए बाध्य किए गए हैं। इस तरह जातीय निष्ठाओं के माध्यम से सृजित राजनीतिक संगठन का एक नया तरिका उमड़ रहा है। जाति–राजनीति अंतःक्रियाओं का यह परिघटना, बिहार में पंचायती राज संस्थाओं के वांछित विकास की एक मुख्य समस्या है।

बिहार की स्थानीय राजनीति की प्रकृति और जटिलता भी पंचायती राज व्यवस्था की एक बड़ी समस्या है। स्थानीय राजनीति जो गाँव से लेकर जिला स्तर तक व्याप्त है, संकीर्णता, पारंपरिकता तथा रूढ़िवादिता से ग्रसित है जो प्रजातांत्रिक मूल्यों के अनुकूल नहीं है। व्यापक राजनीतिक समाजीकण की कमी के कारण ग्राम–स्तर पर आम लोगों में न तो नीतियों के आधर पर राजनीतिक आंदोलनों के प्रति निष्ठा है और न ही भूभागीय दष्टि से भारतीय राष्ट्रीयता के प्रति आस्था पूर्ण विकासित हैं दूसरी तरफ,

जातिगत भावनाओं व निष्ठाओं में वृद्धि हो रही है तथा आधुनिक परिप्रेक्ष्य में इसके बदलते हुए मायने तथा प्राकार्य को ग्रामीण व स्थानीय जनमानस भली भाँति समझते हैं।[8]

इसी प्रसंग में मायरन वीनर[9] का अध्ययन विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि स्वातंत्रयोत्तर भारत में समाज के विभिन्न स्तरों पर क्रियाशील दो राजनीतिक संस्कृतियों का उदय हुआ है। एक संस्कृति जिलों में है जो स्थनीय राजनीति (शहरी और ग्रामीण) स्थानीय राजनीतिक दल संगठन तथा स्थानीय प्रशासन में व्याप्त है। यह एक प्रसरणशील राजनीतिक संस्कृति है जो राज्य विधान सभाओं, राज्य सरकार तथा राज्य प्रशासन तक पहुँचती हैं यद्यपि यह पारंपरिक तत्वों से व्याप्त है, परंतु पूर्णरूपेण पारंपरिक नहीं है चूँकि इसमें कई आधुनिक अवयव हैं दूसरी राजनीतिक संस्कृति का आधिपत्य नई दिल्ली में है जो भारत के योजनाकारों, बहुसंख्य राष्ट्रीय राजनीतिक नेताओं एवं वरीय प्रशासकों के द्वारा मूर्तिमोन हैं यह रक्षात्मक राजनीतिक संस्कृति है जो आधुनिक भाषा में व्यक्त तथा आधुनिक अवयवों से व्याप्त हैं यह संस्कृति प्रदेश के राजधनियों में कम प्रकट होता है परंतु ग्रामीण क्षेत्रों में प्रायः गायब हो जाता है। यह संस्कृति पूर्णरूपेण आधुनिक नहीं है चूँकि इसमें बहुत पारपंरिक अवयव भी हैं।

पहली राजनीतिक संस्कृति को उदयीमान जनता राजनीतिक संस्कृति के रूप में चित्रांकित किया जा सकता है, दूसरी को अभिजन राजनीतिक संस्कृति की संज्ञा दी जा सकती है। लेकिन किसी एक संस्कृति को पारंपरिक, बुरा तथा आधुनिकीकरण हेतु अनुपयुक्त एवं दूसरी संस्कृति को आधुनिक, अच्छा तथा आधुनिकीकरण हेतु उपयुक्त के रूप में वर्णन करना भ्रामक है। जनता राजनीतिक संस्कृति के प्रति अभिजन राजनीतिक संस्कृति आलोचनात्मक है। प्रदेश तथा स्थानीय राजनीति की विशेषता बताने वाली अविवेकी निष्ठाओं की वृद्धि, लोकहित की भावना का अभाव और अफसरशाह एवं राष्ट्रीय राजनीतिज्ञ खेद प्रकट करते हैं।

अभिजनों की दृष्टिकोण के अनुसार जनता राजनीतिक संस्कृति की सबसे बड़ा दुर्गुण यह है कि राष्ट्रीय निष्ठाओं की कीमत पर राजनीतिक क्रिया जाति, धर्म, जनजाति तथा क्षेत्र पर काफी आधारित प्रतीत होता है। जाति और धर्म एक दूसरे का विरोध करते हैं। जातियाँ राज्य मंत्रिमंडलों तथा राज्य विधान सभाओं में प्रतिनिधित्व की मांग करते हैं और यहां तक कि कुछ राज्य अन्य राज्यों के बनिस्बत निवेशकों तथा श्रमिकों के विरूद्ध भेद–भाव करने का प्रयास करते हैं। इसके अतिरिक्त, इन निष्ठाओं का राजनीतिज्ञों द्वारा शोषण किए जाते हैं जो अविवेकी पारंपरिक, सामंतवादी भावनाओं का अपील करते हुए सत्ता हथियाने का प्रयास करते हैं। अभिजन मानते हैं कि ऐसी निष्ठाओं का आधुनिक लोकतंत्र में कोई जगह नहीं है और अगर ये कायम रहते हैं तो ये लोकतांत्रिक व्यवस्था तथा राष्ट्रीय राज्यों को बर्बाद कर सकते हैं। अभिजन महसूस करते हैं कि जबतक प्रत्येक जाति, ध्र्म या क्षेत्र अपने हितों को राष्ट्रीय हितों तथा उद्देश्यों में समाहित नहीं करते हैं तबतक भारत एक अखंड राष्ट्र नहीं हो सकता है एवं लोकतंत्र भी क्रियाशील हो सकता है जब लोग विवेकपूर्ण मुद्दों और विचारधाराओं से निदेशित होते हैं। जातिगत निष्ठाओं का यह संदर्श राजनीति के ब्रिटिश दृष्टिकोण से स्पष्टतः प्रभावित है जिसे शिक्षित भारतीय सामान्यतया अपने आदर्श के रूप में उपयोग करते हैं।[10]

बिहार में स्थानीय स्तर पर गुटवादी राजनीति का बोलवाला है। पंचायत के अंतर्गत मतभेद गुटवाद के कारण उत्पन्न होता है। 'एक सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य के अन्दर संचालित अनाकार खंडों (गुट) के बाहुल्यकें बीच अनौपचारिक प्रतिस्पर्धा जो विस्तृत तथा अनियंत्रित व्यक्तिगत सत्ताको ज्यादा महत्व देते हैं तथा जिनका नेतृत्व ऐसे अभिजन द्वारा किया जाता है जिनका दिगविन्यास आत्म–केंद्रित तथा यंत्रीय होते हैं।'[12] गुटवाद का यह प्रतिमान पंचायत राजनीति की यथार्थताओं को प्रस्तुत करता है1[13] पंचायतों में गुटों का विवेचन करने के क्रम में यह उल्लेख किया गया है कि विभाजनों का विकासात्मक गतिविधियों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा चूँकि गुटीय संघर्ष तथा पंचायत नेताओं और उस स्तर के सरकारी सेवकों के पक्षपातपूर्ण रवैये के कारण विकास कार्यक्रमों का क्रियान्वयन अक्सर खटाई में पड़ गए।[14]

बिहार के ग्रामीण संरचना में जाति व वर्गों के आधर पर हितों की विविधता है जिसके आधार पर गुटों की उत्पत्ति हुई है। प्रजातांत्रिक तथा समाजवादी सुधारों के कारण ग्रामीण अभिजनवाद में उद्वेलन एवं वर्चस्व खोने के भय के कारण सामाजिक तनाव व्याप्त हो गया है जिससे शोषण और

दवाब पर आधारित परंपरागत नेतृत्व एवं उच्च प्रस्थिति प्राप्त करने की आकांक्षा से गैर परंपरावादी नेतृत्व एक–दूसरे के आमने–सामने आ खड़े हुए हैं। शक्ति खो देने की आशंका एवं परंपरागत शक्तिशालियों को राजनीतिक रूप से अभिभूत करने के प्रयास के बीच संघर्ष से गुटवाद का उदय हो गया है। ऐसी परिस्थिति में नेतृत्व उन हाथों में चला जाता है जिनमें शक्ति श्रोतों का दोहन करने की क्षमता आजाती हैं अर्थात् बिहार की ग्रामीण व्यवस्था में गुट–आधारित राजनीति अवश्यम्भावी हो गया है।[15]

ग्रामीण बिहार में जातीय निष्ठाओं को नकारते हुए गुटों की रचना की जाती है। एक ही जाति तथा व्यवसाय (सामान्यतया भू–स्वामी या बड़े खेतिहर) के दो नेता गांव के अंदर राजनीतिक सत्ता और प्रस्थिति प्राप्त करने के लिए परस्पर संघर्ष करते हैं। प्रत्येक को अपने संगे–संबंधियों, रिश्तेदारों, मित्रों तथा उन व्यक्तियों जिनके साथ उनका आर्थिक बंधन रहता है, का समर्थन प्राप्त रहता है। ऐसे गुटबाजी नेता बहुधा विधान सभा के उम्मीदवारों से अपने राजनीतिक समर्थन के बदले अपने गांव के लिए विशेष सहायता देने का वायदा करवाते हैं। इस प्रकार गुटवादी नेता राजनीतिक दलों के बीच संघर्ष का उपयोग अक्सर गांव में राजनीतिक शक्ति की अपनी स्थिति को मजबूत करने के अवसर के रूप में करते हैं।

पंचायती राज संस्थाओं ने ग्रामीण नेतृत्व की संरचना में भारी परिवर्तनों को प्रवर्त्तित किए हैं जो शुरू से विमर्श का विषय बन रहा है।[16] पंचायती राज निकायों के निर्वाचनों ने नेतृत्व भर्त्ती हेतु पृष्ठ प्रदेश का द्वार खोल दिया है जो आरंभ में 'सीमित अभिजन' द्वारा प्रतिनिधत्व किया गया एवं कालांतर विविध सामाजिक वर्गों को शामिल कर 'विस्तृत अभिजन' में परिवर्तित हो गया। इस बीच चुनावी राजनीति की बढ़ती हुई बारम्बारता तथा तीव्रता, देहाती इलाकों में अनेक आन्दोलनों एवं विविध प्रभवों के अन्तर्गत 'पारंपरिक सामाजिक व्यवस्था का पतन' राजनीतिक स्पर्ध में नए समूहों को प्रविष्ट किया। इन विकासों के कारण नेतृत्व की प्रकृति में उल्लेखनीय परिवर्तन हुए।[19]

1992 के संवैधानिक संशोधनों के अनुपालन में स्थानीय संस्थाओं में नेतृत्व के पदों पर महिलाओं का 33 प्रतिशत आरक्षण तथा दलितों को उनकी जनसंख्या के अनुपात में आरक्षण के फलस्वरूप इन सामाजिक समूहों का निसंदेह 'शक्तिकरण' का प्रयास किया गया है। इस प्रकार प्रजातांत्रिक प्रक्रिया के रूप में पंचायती राज संस्थाओं ने विभिन्न समूहों खासकर अभिवंचित को स्थानीय संस्थाओं में नेतृत्व प्राप्त करने हेतु निश्चित रूप से अवसरों के द्वार खोल दिए हैं जिससे उनकी सामाजिक गतिशीलता का मार्ग भी प्रशस्त हुआ हैं विकास आयोजना के कार्यक्रमों के साथ पंचायती राज संस्थाओं के संयोजन से पंचायती राज नेतृत्व की शैली और प्रकार पर विचार–विमर्श शुरू हो गया है। हेनरी मैडिक इसे 'राजनीतिज्ञों का एक नया नश्ल' कहते हैं तो रजनी कोठारी 'नव नेताओं' को 'प्रैगमेटिक मेन' कहते हैं। रमा रेड्डी तथा हरगोपाल ने कहा कि विकास गतिविधियों तथा सरकारी श्रोतों से उपलब्ध निधियों ने 'उद्यमशील नेतृत्व' तथा 'फिक्सर्स' ओर 'फैसिलीटेटर्स' के एक समूह को उत्पन्न किया है जो ग्रामीण जनसमूह और सरकारी अफसरतंत्र के बीच एक कड़ी का काम करते हैं।

पंचायती राज के नेतृत्व पदों को इन नव सामाजिक समूहों ने या तो सामाजिक–आर्थिक परिवर्तनों के परिणामस्वरूप बलपूर्वक हासिल किया या प्रतिनिधित्व की व्यवस्था में आरक्षणों के पफलस्वरूप प्राप्त किए। इन सामाजिक श्रेणियों के नेताओं की मनोवृत्तियों, मूल्यों, अभिप्रेरणाओं तथा शैलियों के एक विशिष्ट लक्षण हैं और वे एक स्थिर प्रवाह की स्थिति में हैं। फिर भी, यह देखना है कि नेतृत्व के संयोजन में यह परिवर्तन पंचायती राज संस्थाओं के घोषित लक्ष्यों तथा सामाजिक प्रभाव के संदर्भ में इनके कार्यकरण पर कोई स्पष्ट छाप छोड़ पाया है कि नहीं।[17]

उपरोक्त अवधारणात्मक पृष्ठभूमि में बिहार में स्थानीय नेतृत्व का अध्ययन कर हम पाते हैं कि 73वें 74वें संशोधनों के अनुपालन में बिहार पंचायती राज अधिनियम 1993 तथा 2006 पारित हुए जिसके अंतर्गत ग्राम पंचायत के सदस्यों के कुल स्थानों के पचास प्रतिशत अनुसूचित जाति, जन

जाति तथा पिछड़े वर्ग के लिए चक्रानुक्रम में आरक्षित किए गए, साथ ही महिलाओं के लिए 50 प्रतिशत सीटों का आरक्षण सुनिश्चित किया गया।

बिहार में पंचायती राज संस्थाओं के नेतृत्व में पिछड़े वर्गों, दलितों तथा महिलाओं में अधिसंख्य वृद्धि हुई है जिनमें शिक्षा का पूर्णभाव हैं जाहिर है कि आज पंचायती राज संस्थाओं के कार्यों, अध्किारों तथा दायित्वों में आशातीत वृद्धि हुई है जिसका भरपूर उपयोग करने में अशिक्षित नेतृत्व अक्षम है। ऐसा देखा जाता है कि ग्रामीण नेतृत्व अपने दायित्वों के निर्वहन के बनिस्बत व्यक्तिगत हित साधन में संलग्न रहते हैं। ग्रामीण वोट बैंक को संरक्षित रखने हेतु ग्रामीणजनों की लाभोन्मुख आकांक्षाओं जैसे पैरवी करना, दुःख सुख में साथ देना, ऋण दिलवाना, रोजगार दिलवाना, थाने में गिरफ्तार परिजनों को छुड़वाना, ठेका दिलवाना, लाईसेंस, प्रशासनिक महकमों में लंबित कार्यों को संपन्न कराना आदि कार्यों में पंयायत के नेतागण लगे रहते हैं।

बिहार में स्थानीय राजनीति की एक बड़ी समस्या यह है कि पंचायती राज संस्थाओं के उद्देश्यों तथा विकास की प्रक्रिया के बारे में आम जनता को सही जानकारी व बोध का पूर्णाभाव हैं किसी भी समाज में विकास हेतु अपेक्षित अनेक मौलिक विषयों का होना अनिवार्य है[18]– जैसे कि शिक्षा, कौशल, विस्तृत परिवहन सुविधाएँ, संप्रेषण तथा संचार का सुपरिष्कृत तंत्रस, भौतिक आवश्यकता या अवसर का दवाब, परितर्वन की अभिप्रेरित लालसा, नए विचारों के प्रति उदारता, सुअवसर की जानकारी पूँजी तथा प्रौद्योगिकी के अतिरिक्त अवसर के दोहर का ज्ञान।[19] यह सिद्ध तथ्य है कि किसी राष्ट्र के आर्थिक विकास की प्रक्रिया स्व–शासन तथा प्रतिनिधयात्मक संस्थाओं के प्रति उस समाज तथा राष्ट्र की प्रतिबद्धता के साथ जुड़ा रहता है।

निष्कर्ष– जमीनी लोकतंत्र की स्थापना के उद्देश्य से निर्मित पंचायती राज व्यवस्था बिहार में विविध समस्याओं से जूझ रहा है जिस कारण यह व्यवस्था विकास के मार्ग पर अग्रसर होते हुए भी अपने वांछित प्रयोजन को सही साबित नहीं कर सका हैं अभिवंचित वर्गों को मुख्य धरा में लाने के वैधानिक प्रयास के बावजूद भी पंचायती राज व्यवस्था में अभिवंचित वर्गों के मात्रा क्रीमी लेयर का ही पदार्पण हो पाया है जो विधायकों व विधान पार्षदों के अनुचर हैं और वे परिवर्तन के लाभों को पूरा उठाते हैं। पंचायतों की ग्राम सभाएँ अभिजनों के द्वारा नियंत्रित हैं जो अपने बहु या पत्नी या अनुचरों के नाम पर शासन करते हैं। इससे भी बदतर स्थिति यह है कि पंचायतों के नवजात नेतृत्व को उच्चतर–स्तर के नेतृत्व का आशीर्वाद प्राप्त है जो उन्हें सांसद निधियों अथवा अन्य सरकारी निधियों का उपयोग करने में भी सहायता देता है। ग्रामीण व्यवस्था या नेतृत्व संरचना में परिवर्तन हुआ है किंतु समग्र व्यवस्था में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है।

संदर्भ :

1. राय, रामाश्रय – 'कास्ट एंड पॉलिटिकल रिक्रटमेंट इन बिहार', रजनी कोठारी (सम्पादित), कास्ट इन इंडियन पॉलिटिक्स, ऑरियंट लॉंगमैन लि॰, नई दिल्ली, 1970, पृ॰ 229.
2. सेंसस ऑफ इंडिया, 1931, 1961 से प्रक्षिप्त.
3. श्रीनिवास, एम.एन. – कास्ट इन मॉडर्न इंडिया एंड अदर एसेज, बम्बई, 1962, पृ॰ 75.
4. हैरिसन, सेलिग एस. – इंडिया : दी मोस्ट डेनजरस डिकेड्स, प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, प्रिंसटन, 1960.
5. वीनर, मायरॉन– 'इंडिया : टू पॉलिटिकल कल्चर्स' पाई, लूसियन डब्लू. तथा वर्बा, सिडनी (सम्पा.) पॉलिटिकल कलचर एंड पॉलिटिकल डेवलपमेंट प्रिसंटन यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू जर्सी, 1939, पृ॰ 241.
6. निकोलसन, नॉरमैन के॰ – 'दी पफैक्शनल मॉडेल एंड दी स्टडी ऑफ पॉलिटिक्स', कम्परेटिव पॉलिटिकल स्टडीज, अक्टूबर, 1972, पृ॰ 292.
7. लेविस, ऑस्कर – ग्रूप डाइनामिक्स इन ए नॉर्थ–'इंडियन विलेज : ए स्टडी ऑफ फैक्शन्स, नई दिल्ली, 1966.

8. निकोलस, आर.डब्लू. ए कम्परेटिव एनालिसिस', बैन्टन, एन. (सम्पा.) पॉलिटिकल सिस्टम्सएंड डिस्ट्रीव्युशन आूफ पावर, लंदन, 1965.
9. वर्मा, रवीन्द्र कुमार –राजनीतिक नेतृत्व, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 2013, पृ॰ 66.
10. चौधरी, एस.एन. – दलित एंड ट्राइबल लीडरशिप इन पंचायत्स, कन्सेप्ट पब्लिशिंग कं., नई दिल्ली, 2004.
11. लाल, ए.के. – 'डायनामिक्स ऑफ विलेज फैक्शनलिज्म : ए स्टडी ऑफ कनफ्लीक्ट वीटवीन ट्रैडिशकनल एंड इमर्जिंग लीडरशिप', जर्नल ऑफ सोशल एंड इकॉनोमिक स्टडीज, सेज पब्लिकशेन, वर्ष–1,अंक–2, सितम्बर 1973
12. नारायण, इकबाल– 'डेमोक्रेटिक डिसेंट्रलाइजेशन एंड रूरल लीडरशिप : दी राजस्थान एक्सपेरीमेंट', एशियन सर्वे, वल्यूम 4, अंक–8, अगस्त, 1964.
13. झा, एस.एन. एवं माथुर, पी.सी. (सम्पा.)– डिसेंट्रलाइजेशन एंड लोकल पॉलिटिक्स, इन्ट्रोक्शन, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1999, पृ॰ 37–38.
14. गांगुली, बी. – 'द एमजिंग लीडरशिप पैटर्न अंडर प्लानिंग इन रूरल बिहार', एल.पी. विद्यार्थी ;सम्पादितद्ध, लीडरशिप इन इंडिया, नई दिल्ली, 1967.
15. वर्मा, आर.के. तथा यादव, जी.के. –वीमन इन बिहार पॉलिटिक्स', इकॉनोमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 14 अप्रैल, 1996.
16. जेकोब्स, गैरी – डेवलपमेंट एजुकेशन : एन इन्ट्रोडक्टरी एक्सप्लानेशन, द मदर्स सर्विस सोशायटी, पॉंडिचेरी, 1982.
17. माथुर, हरिमोहन – एडमिनिस्टरिंग डेवलपमेंट इन द थर्ड वर्ल्ड : कन्सट्रेंट्स एंड च्वाइसेज, सेज पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 1986.
18. राय, रामय एवं श्रीवास्तव, आर.के. – डायलोग्स ऑन डेवलपमेंट : दी इंडीवीजुअल सोसाइटी एंडपोलिटिकल ऑर्डर, सेज पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 1986.
19. माहेश्वरी, एस.आर. – रूरल डेवलपमेंट इन इंडिया, सेज पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 1985, पृ॰ 9.

***

श्रीलाल शुक्ल : एक बेहतरीन रचनाकार

अमिता सिंह *

श्रीलाल शुक्ल (1925–2011) एक बेहतरीन रचनाकार के रूप में जाने जाते हैं। उनमें एक अच्छे लेखक की खूबियाँ, समाज की बारीक समझ मौजूद है। विलियम फाकनर (पश्चिमी–उपन्यासकार), एक अच्छे जीवन्त लेखक की तीन विशेषताएँ–अनुभव, सूक्ष्म दृष्टि, कल्पनाशीलता बताते हैं।[1] श्रीलाल शुक्ल में ये तीनों विशिष्टताएँ मौजूद हैं। शुक्ल जी की वह बात जो उन्हें सर्वाधिक प्रभावशाली बनाती है। वह है– 'साहित्य को मानव की दृष्टि से देखना। उन्होंने अपने आस–पास घटित होने वाली घटनाओं पर पैनी नजर रखते हुए तीव्र कटाक्ष किया। रागदरबारी जैसी कालजयी रचना ने उन्हें प्रतिष्ठित व प्रभावी कथाकार बना दिया।

शुक्ल जी के रचना संसार में उपन्यास, कहानी व्यंग्य, जीवनी, आलोचना जैसी विधाएँ मौजूद हैं।एक रचनाकार की हैसियत की मापनी उसकी कृतियाँ होती हैं। श्रीलाल शुक्ल जी की रचनाएँ समाज में व्याप्त मानवीय व अमानवीय क्रियाकलापों, व्यंगों व अन्य रचनाओं में दृष्टिगत होते हैं। इनकी महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं –**'उपन्यास'**– 'सूनी घाटी का सूरज', 'अज्ञातवास', 'राग दरबारी', 'आदमी का जहर', 'सीमाएँ टूटती हैं', 'मकान', 'पहला पड़ाव', 'विश्रामपुर का संत', 'बब्बर सिंह और उसके साथी', राग विराग, 'संजय और विजय'। **कहानी–संग्रह** 'यह घर मेरा नहीं', सुरक्षा तथा अन्य कहानियाँ, 'उमरावनगर के कुछ दिन', 'इस उम्र में', 'दस प्रतिनिधि कहानियाँ' ।**व्यंग्य संग्रह**–'अंगद का पाँव', 'यहाँ से वहाँ','मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ', 'कुछ जमीन पर कुछ हवा में','आओ बैठ लें कुछ देर', 'अगली शताब्दी का शहर','जहालत के पचास साल', 'खबरों की जुगाली' ।**जीवनी लेखन**–भगवती चरण वर्मा, अमृतलाल नागर ।**आलोचना**–'अज्ञेय : कुछ रंग, कुछ राग' ।संपादन–'हिंदी हास्य–व्यंग्य संकलन'।

श्रीलाल शुक्ल की रचनाएँ उत्कृष्टता से परिपूर्ण हैं। कुछ रचनाकार अपनी रचनाओं के साथ साहित्य जगत में प्रवेश करते हैं कुछ समय तक उनकी चर्चा भी होती है। समय के साथ–साथ लोग उनको भूल जाते हैं, वे गुमनामी अँधेरे में खो जाते हैं, कारण उनकी रचना की विषयवस्तु कुछ विशेष वर्ग होता है, आम पाठक नहीं।

कुछ रचनाकार ऐसे भी होते हैं जो एक–दो रचना कर कालजयी हो जाते हैं। इनको विशिष्ट पाठक नहीं बल्कि आम पाठक इस मुकाम तक पहुँचाता है। श्रीलाल शुक्ल के बारे में साहित्यकार रवीन्द्र कालिया जी कहते हैं, 'श्रीलाल जी आलोचकों के बल पर आगे नहीं बढ़े पाठकों ने उन्हें पहले मान्यता दी। आलोचकों, समीक्षकों द्वारा प्रेक्षित बहुत से लेखक अपने समीक्षकों की साहित्यिक मौत के साथ मर जाते हैं। पाठकों का प्रिय लेखकएक लम्बे अरसे तक पारी खेलता है। श्रीलाल शुक्ल की रचनाओं का समाज से सरोकार है। सामाजिक विद्रूपताएँ उनके लेखन का आधार है। अपनी सूक्ष्मदृष्टि के बल पर कल्पनाशीलता का सहारा ले उन्होंने समाज के यथार्थ को पाठकों के समक्ष रखा।[2]

श्रीलाल शुक्ल के पारिवारिक वातावरण में साहित्य रचता–बसता था। उनके चाचा पंडित चन्द्रमौलि सुकुल काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के टीचर ट्रेनिंग कालेज में शिक्षक थे। जब वे गर्मियों की छुट्टियों में आते अपने साथ बहुत सारी पुस्तकें व पत्रिकाएँ ले आते। इन्हीं के माध्यम से श्रीलाल शुक्ल में साहित्य के प्रति रुचि जागृत हुई। उन्हीं के शब्दों में,''पर उनकी सम्पन्नता में मेरे मतलब की चीज सिर्फ उनकी किताबें और पत्रिकाएं थी। वह हमारे लिए 'चाँद','माधुरी', 'सुधा', 'सरस्वती', 'गंगा', 'हंस','सुकवि', जो उन्हें सादर भेंट की गयी थी, आठवीं पास करने के पहले ही पढ़ी थी, उन साहित्यिकों को बार–बार गौर से देखा था। नागरी–प्रचारिणी–सभा और गंगा–पुस्तकालय आदि के नवीनतम प्रकाशन मैंने 1939–40 तक पढ़े लिये। उनमें वृंदावन लाल वर्मा और निराला की कृतियाँ भी थी।[3] 12–13 वर्ष में वे घनाक्षरी–सवैया लिखने लगे। वे कवि सम्मेलनों में सहभागी होने लगे। वह

* शोधछात्रा, हिन्दी विभाग, उपाधि महाविद्यालय, पीलीभीत (महात्मा ज्योतिबाफूले विश्वविद्यालय, रुहेलखण्ड)

कहते हैं, ''छात्र जीवन में कविताएं लिखना शुरू किया और कवि सम्मेलनों में भाग लिया। प्रशंसा भी होती थी, हालाँकि यह एक फाल्स स्टार्ट था। प्रायः हर लेखक प्रारंभ में कवि होता है।[4]

स्नातक की पढ़ाई करते–करते उनकी कुछ रचनाएं पत्र–पत्रिकाओं में छपी। कुछ दिनों तक जीविका की तलाश में साहित्य से उनका नाता कम होने लगा। उनके नियमित लेखन की शुरुआत सन् 1953 में हुई। इस विषय में शुक्ल जी कहते हैं, ''अगर मेरे किशोरावस्था में किए गए घपलों को न गिनें तो साहित्य में मेरे प्रयोग 27 वर्ष की अपेक्षाकृत परिपक्व आयु में शुरू हुए।.....एक दिन आकाशवाणी की रूमानी गिचर–पिचर से जो वहाँ के नाटकों और दूसरे प्रसारणों में लबालब भरी रहती है, बौखलाकर और लगभग उसका ध्वंसात्मक विरोध करते हुए– मैंने 'स्वर्णग्राम और वर्षा नामक निबंध लिख डाला और उसे धर्मवीर भारती के पास भेज दिया।..... यह निबंध 'निकष' के पहले अंक में जो उस समय समकालीन लेखन का, बहुत कुछ प्रतिभा और उतनी ही मात्रा में स्नान बरी प्रदर्शित करने वाला अर्द्धवार्षिक प्रकाशन था–छपा। इसके बाद कई जगहों में भारती से पूछताछ होने लगी कि लेखक श्रीलाल शुक्ल कौन है।''[5] इसके बाद उनकी रचनाएं धर्मयुग, ज्ञानोदय, माध्यम, कल्पना, सारिका आदि में प्रकाशित होने लगी। 1957 में इनका पहला उपन्यास 'सूनी घाटी का सूरज और उसके बाद व्यंग्य संग्रह 'अंगद का पाँव' छपा। इसके बाद अज्ञातवास, रागदरबारी, सीमाएँ टूटती हैं, आदमी का जहर, मकान, विश्रामपुर का संत, राग–विराग एक–एक कर प्रकाशित होते गये। शुक्ल जी को रचना प्रकाशन में प्रकाशकों की ओर से दिक्कत नहीं हुई। रागदरबारी को लेकर प्रशासन की ओर से समस्या पैदा की गयी। इस बात को बताते हुए शुक्ल जी कहते हैं, ''लेखक की हैसियत से दुकान बैठालने में मुझे कोई दिक्कत नहीं हुई। प्रकाशन के लिए मुझे कोई भी ऐसा संघर्ष नहीं झेलना पड़ा। जिसकी मैं डींग हाँक सकूँ। साहित्य में मुझे सामान्यतया प्रोत्साहन और सद्भाव के साथ ग्रहण किया गया।[6]

श्रीलाल शुक्ल जी का लेखन ग्रामीण समाज का यथार्थ है। उन्होंने गाँव का यथार्थ और शहरी जीवन का यथार्थ उसका 'खोखलापन' अपनी रचनाओं में उजागर किया है।

इस बारे में अखिलेश कहते हैं, उनकी ज्यादातर रचनाओं में दोनों जीवन दृष्टियों का सहमेल दिखाई देता है। इसलिए उनका लेखन ग्रामीण यथार्थ को लेकर रोमांस करुणा और हाय–हाय से मुक्त है तो शहरी जीवन के अजनबीपन, बोरियत और आत्मदया जैसे नुस्खों से सुरक्षित है। केवल ग्रामीण और शहरी के संबंध में ही नहीं, अनेक ढंग से वे दो विरुद्धों की शक्ति सोखकर तीसरी महाशक्ति बन जाते हैं।''[7]'सूनी घाटी का सूरज', 'रागदरबारी', 'राग विराग', ग्रामीण जीवन के यथार्थ को स्वयं के अंदर समाहित किए हुए हैं, वहीं 'सीमाएं टूटती हैं', 'आदमी का जहर', 'विश्रामपुर का संत', 'मकान' उपन्यास शहरी जीवन के यथार्थ से रूबरू कराते हैं। उन्होंने समाज को जिस रूप में देखा–परखा उसी रूप में उसका अंकन किया। उन्होंने समाज में परदे की आड़ में हो रहे दाँव–पेंच, आदमी के जीवन की समस्या, मानसिक उथल–पुथल का सजीव चित्रण किया। शुक्ल जी के रचनाकार पक्ष के संदर्भ में नामवर सिंह जी कहते हैं, ''श्रीलाल शुक्ल ने विश्रामपुर का संत, मकान, राग–विराग, आदमी का जहर, सूनी घाटी का सूरज, पहला पड़ाव जैसी रचनाओं के माध्यम से आम आदमी की समस्या को उठाने का प्रयास किया है। जो इस बात की ओर इंगित करता है कि आम पाठक के मन की पीड़ा व नब्ज टटोलने की श्रीलाल शुक्ल के पास कितनी पारखी नजर थी।''[8]इनके पात्र गाँव, गली, मुहल्ले, चौराहे व शहरों में मिल जायेंगे। कहीं उत्तर प्रदेश के गाँव का किसान है तो कहीं विलासपुर का मजदूर तो कहीं बम्बई व दिल्ली महानगर का चालाक आदमी।

एक रचनाकार को पाठक का भरपूर प्यार मिले और उस पर रचनाकार पुरस्कृत हो जाय तो वह नए उत्साह से समाज को ऐसी कृतियाँ देने लग जाता है जो समाजोयोगी होती है। शुक्ल जी को साहित्यिक देन के लिए सर्वश्रेष्ठ ज्ञानपीठ पुरस्कार के साथ–साथ साहित्य अकादमी पुरस्कार, मध्य प्रदेश हिन्दी साहित्य परिषद् पुरस्कार, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय का गोयल साहित्य पुरस्कार, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान का साहित्य भूषण पुरस्कार, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान का लोहिया सम्मान, मध्यप्रदेश सरकार का शरद जोशी सम्मान, मध्यप्रदेश शासन का मैथिलीशरण गुप्त सम्मान, व्यास सम्मान, यश भारती सम्मान प्राप्त हुआ।

श्रीलाल शुक्ल जी को ज्ञानपीठ पुरस्कार (2011) में मिला। पुरस्कार मिलने के उपरान्त नामवर सिंह ने कहा कि इनको यह पुरस्कार तब मिलना चाहिए था जब ये साहित्य सर्जन कर रहे थे। राजेन्द्र यादव जी ने कहा कि यह सम्मान साहित्य सृजन के लिए नहीं बल्कि जीवन समाप्ति के लिए सम्मान के दिए जाते हैं। रचनाकार के लिए ये सम्मान संतोष देने वाले होते हैं। श्रीलाल शुक्ल जी के लिए ये सम्मान जीवन की सुखद स्मृति रहे। शुक्ल जी ने प्रेम जन्मेजय से कहा था, ''प्रेम जी ऐसे पुरस्कारों से संतोष अवश्य होता है। इस उम्र में अक्सर साहित्यकारों को उपेक्षित कर दिया जाता है। यह पुरस्कार संतोष देता है कि मैं उपेक्षित नहीं हूँ।''

ये पुरस्कार बताते हैं कि वे साहित्य में कभी उपेक्षित नहीं थे। अपनी बेहतरीन रचनाओं की वजह से वे जाने जाते हैं। उनकी रचना 'रागदरबारी' को देखने से प्रतीत होता है कि ऐसी रचनाएँ बहुत ही कम हैं। जो इसके समकक्ष खड़ी है। उनके अमूल्य साहित्यिक अवदान के लिए हिन्दी साहित्य जगत ऋणी रहेगा।

---

1 पृथ्वीनाथ पाण्डेय, 'अद्वितीय लेखक थे श्रीलाल', दैनिक जागरण, इलाहाबाद संस्करण, 29 अक्टूबर, 2011, पृ० 4

2 अखिलेश (संपा), 'श्रीलाल शुक्ल की दुनियाँ', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000, पृ० 89

3 कमलेश्वर (संपा), सारिका अगस्त, 1975 पूर्णांक 172, पृ० 74

4 श्रीलाल शुक्ल, 'मेरे साक्षात्कार', किताबघर नई दिल्ली, 2008, पृ० 9

5 श्रीलाल शुक्ल, 'मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं, ज्ञानभारती, दिल्ली, 1978, पृ० 8

6 कमलेश्वर, (संपा), वही, पृ० 75

7 अखिलेश (संपा), वही, पृ० 4

8 नामवर सिंह, राष्ट्रीय सहारा, इलाहाबाद संस्करण, 29 अक्टूबर, 2011, पृ० 13

***

समकालीन साहित्य में दलित विमर्श

*डॉ. गायत्री**

समकालीन साहित्य वह साहित्य होता है जिसका संबंध वर्तमान में होने वाली घटनाओं और समस्याओं से जुड़ा होता है आज जो कुछ वर्तमान में घट रहा है उसे साहित्यकार अपनी रचनाओं के द्वारा व्यक्त कर रहे हैं। आज बात चाहे स्त्री के अधिकारों को लेकर हो या किन्नर समुदाय को मनुष्य का दर्जा दिलाने की हो या जातीय वा नस्लीय भेदभाव हो या फिर दलित, आदिवासी प्रवासी भारतीयों के जीवन की समस्याएं हो। सभी विषय वर्तमान की घटनाओं से जुड़े हैं और इनकी चर्चा भी जोरों शोरों से हो रही है। इन्हीं चर्चित घटनाओं में दलित विमर्श ने एक सशक्त स्थान बनाया है। दलित विमर्श जब से शुरू हुआ तब से लेकर आज तक वह चर्चा का विषय बना हुआ है। इसकी अपनी एक खास विशेषता है क्योंकि आज भी दलितों को पूर्ण न्याय नहीं मिल पाया है। दलितों के साथ आज भी जाति के नाम पर भेदभावपूर्ण व्यवहार किया जाता है चाहे शिक्षा संस्थान हो या फिर सरकारी कार्यालय हर जगह उन्हें जाति का दंश झेलना पड़ता है। इस अमानवीय व्यवस्था का घिनौना रूप प्राचीन समय से लेकर आज तक जारी है। समय-समय पर अनेक शुचितकों ने इस अन्याय पूर्ण व्यवस्था का विरोध किया है। अनेक साहित्यकारों ने समय-समय पर अपनी रचनाओं के द्वारा दलितों के दुख-दर्द और संघर्ष को व्यक्त किया है और आज भी कर रहे हैं।

मराठी साहित्यकारों ने सबसे पहले अपनी रचनाओं में दलितों के दुख दर्द को व्यक्त किया है जिसके परिणामस्वरूप मराठी दलित साहित्य का जन्म हुआ। मराठी दलित साहित्य ने भारत के दलितों को लिखने की प्रेरणा दी। जिसके कारण हिन्दी साहित्य में दलित चेतना की शुरुआत हुई। दलित चेतना से प्रभावित होकर अनेक गैर दलित और दलित रचनाकारों ने दलित साहित्य की रचना की। गैर दलित लेखकों ने जहां दलितों के दुख दर्द और उनकी स्थिति को उजागर किया है तो वहीं दलित लेखकों ने अपनी रचनाओं में दलितों की चेतना को उजागर करके उन्हें उनके अधिकारों से अवगत भी कराया है।

हिन्दी साहित्य में दलितों के जीवन पर लिखने वाले सबसे पहले रचनाकार प्रेमचंद थे जिन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा दलितों की जिन्दगी को उजागर किया। निःसंदेह वे पहले गैर दलित लेखक हैं, जिनकी रचनाओं में हमें दलित समस्या का चित्रण मिलता है।

इनके बाद अन्य रचनाकारों ने भी दलित जीवन से संबंधित साहित्य की रचना की जिनमें निराला कृत 'कुल्ली भाट', 'चतुरी चमार', अमृतलाल नागर कृत ' नाच्यो बहुत गोपाल', जगदीशचन्द्र कृत उपन्यास 'धरती धन न अपना', 'नरकुंड में वास' तथा 'जमीन अपनी तो थी', गिरिराज किशोर कृत 'परिशिष्ट' मधुकर सिंह कृत 'उत्तर गाथा' रांगेय राघव कृत 'कब तक पुकारू', मन्नू भंडारी कृत 'महाभोज' आदि उपन्यासों में दलित जीवन की पीड़ाएँ अंकित हुई हैं।

निराला कृत 'कुल्ली भाट' नामक उपन्यास में दलितोंद्वार की समस्या को चित्रित किया गया है। 'कुल्ली भाट' के दलितोंद्वार के परिश्रमी कार्य को न देखते हुए लोग मुसलमानिन से होने वाले उसके संबंधों को देखकर उसे बुरा आदमी समझने लगते हैं। परन्तु विद्रोही निराला ने इस संबंध में सबके विरोध में समर्थन ही किया है।

कुल्ली के द्वारा चलाई गई पाठशाला में दलितों के बच्चे पढ़ते हैं। परन्तु इस काम के लिए गाँव के लोगों से सहयोग नहीं मिल पाता है। कुल्ली दलितों के बच्चों के लिए केवल पाठशाला ही नहीं खोलता बल्कि

---

* गेस्ट टीचर, स्कूल ऑफ ओपन लर्निंग

पीड़ित की पीड़ा दूर करने के लिए आवश्यक सेवा भाव भी उसमें दिखाई देता है साथ ही वह प्रत्यक्ष सेवा भी करता है- साले साहब के कथन में यह उल्लेख आया है-

"रात भर दुखिया चमारिन की सेवा करते हैं, उसकी स्त्री का देहान्त हो गया है, दुखिया बीमार है।"[1]

इसी प्रकार रांगेय राघव ने अपने उपन्यास 'कब तक पुकारूँ' में चमारों पर होने वाले अत्याचार और उनकी दुर्दशा को दिखाया है, तो दूसरी और लेखक ने अपना सारा प्रयास एक दलित सुखाराम को ठाकुर साबित करने में ही लगाते हैं इसलिए सुखाराम दलित होने की हीन भावना से ग्रस्त दिखाई देता है। अमृतलाल नागर ने अपने उपन्यास 'नाच्यों बहुत गोपाल' में मेहतर समाज की जीवन गाथा का चित्रण किया है। निर्गुनिया इस उपन्यास की मुख्य पात्र है यह ब्राह्मण पुत्री है। निर्गुनिया का पति और प्रेमी मोहना है, पहले मोहना बैंन्ड बजाना सीखता है और बाद में डाकू बन जाता है ये दोनों बातें मेहतर जीवन की सच्चाई को व्यक्त करती है। उच्च वर्ग के प्रति उसकी घृणा, आक्रोश और प्रतिशोध की भावना बिल्कुल स्वाभाविक है, वह स्वयं भंगी माँ से ठाकुर पिता की संतान है और भंगी जीवन जीने के लिए मजबूर है।

'धरती धन न अपना' में लेखक जगदीश चन्द्र ने जीवन के ऐसे हिस्से को स्पर्श किया है, जो अब तक अनछुआ था। इसमें उपन्यासकार ने पंजाब राज्य के दो आबा क्षेत्र के दलितों के उत्पीड़न, शोषण, अपमान व वेदना को चित्रित किया है। साथ ही साथ उनकी दयनीय व हीन स्थिति के लिए जिम्मेदार भारतीय जाति व्यवस्था हिन्दू धर्म व्यवस्था और जन्म-कर्म के सिद्धांत के आधार पर भूत तथ्यों को भी उजागर किया है। जन्म के आधार पर अछूत करार दी गई जातियों के सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक सरोकारों को इस उपन्यास के द्वारा एक विस्तृत पटल पर चित्रित करके भारतीय हिंदू धर्म मूल्य व नीति मूल्यों की आलोचना की है।

उपन्यास में एक जगह लेखक ने दिखाया है, कि किस प्रकार नदसिंह ईसाई बनकर चमार का चमार ही रह जाता है। चौधरी के 'चमार' कहकर पुकारने पर नदसिंह आपत्ति करता है तो चौधरी डाँटते हुए कहता है-

"कुतया, चमारा। तेरी यह मजाल! अपनी दुकान पर मुझसे पैसा माँगता है। जूता बनाने से इनकार करता है ईसाई बनकर सवाया हो गया है।"[2]

जातिवाद की जड़े भारतीय समाज में इतनी गहरी हैं कि धर्म-परिवर्तन करने पर भी जाति वही बनी रहती है। नंदसिंह का बाप बसंता उसे समझाते हुए कहता है-

"पगला तू कुछ भी बन जा लेकिन रहेगा चमार का चमार ही, जात कर्म से नही, जन्म से बनती है।"[3]

उपरोक्त कथन के पीछे छिपी सवर्ण मानसिकता को आसानी से समझा जा सकता है जिसके द्वारा दलितों को यह समझाया जाता है कि तुम चाहे कोई भी धर्म-ग्रहण कर लो पर जाति तुम्हारा पीछा नहीं छोड़ेगी।

दलित लेखकों ने अपने रचनात्मक लेखन में जन्म एवं जाति के कारण हो रहे शोषण, दमन और उत्पीड़न को केंद्रीय आधार बनाते हुए दलित समाज के इन्हीं दुःखों से मुक्ति की परिकल्पना की है। दलित लेखकों का लेखन कार्य आज समस्त विधाओं में निरंतर जारी है। आत्मकथात्मक कृतियों में जूठन (ओमप्रकाश वाल्मीकि) अपने-अपने पिंजरे (मोहनदास नैमिशराय काव्य-कृतियों में बस्स बहुत हो चुका (वाल्मीकि) दर्द

के दस्तावेज (संपादक: एन. सिंह) सुनो ब्राह्मण (मलखान सिंह) सिंधु घाटी बोल उठी (सोहनपाल सुमनाक्षर) क्रौंच हूँ मैं (श्यौराज सिंह बेचैन) तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती (कंवल भारती) दलित पचासा (मंसाराम विद्रोही) तो वहीं औपन्यासिक कृतियों में जय प्रकाश कर्दम का उपन्यास 'करूणा' और 'छप्पर' में दलित जातियों की पीड़ा अपमान, दर्द, संघर्ष का यथार्थ चित्रण मिलता है।

जियालाल आर्य ने अपने उपन्यास 'गाँव की माँ' में एक अछूत माँ की स्थिति को व्यक्त किया है। जिसे अपने ही गाँव के लोगों के द्वारा शोषण और अत्याचार का शिकार होना पड़ता है। सत्य प्रकाश का 'जस तस भई सवेर' प्रेम कपाड़िया का 'मिट्टी की सौगन्ध' मोहनदास नैमिशराय का 'क्या मुझे खरीदोगे' रामजीलाल सहायक का 'बंधन मुक्त' आदि उल्लेखनीय है। कहानी संग्रहों में आवाजें (मोहनदास नैमिशराय) चार इंच की कलम (कुसुम वियोगी) दिन प्रतिदिन (परदेशी राम वर्मा), नाट्य कृतियों में अंतिम अवरोध (एस.आर. सागर), आलोचनात्मक कृतियों में हिंदी की आत्मा और कबीर के आलोचक (डॉ. धर्मवीर) शोध में हिंदी दलित पत्रकारिता पर पत्रकार अंबेडकर का प्रभाव (श्यौराज सिंह बेचैन) हिंदी काव्य में दलित काव्यधारा (माता प्रसाद) आदि कुछ ऐसी पुस्तकें जरूर आई हैं जिनके मूल्यांकन की आज जरूरत है। लेकिन वहीं पवित्रता और उत्कृष्टता के मापदंड वाली दीवार अन्य साहित्य की तुलना में इनके सामने अधिक शक्तिशाली रूप में आकर खड़ी हो जाती है। यद्यपि हंस, युद्धरत, आम आदमी, राष्ट्रीय सहारा आदि जैसी पत्र-पत्रिकाएँ और राजेंद्र यादव, मैनेजर पांडेय, रामशरण जोशी, राजकिशोर, अजय तिवारी तथा विभांशु दिव्याल जैसे वरिष्ठ और बद्रीनारायण कर्मेंदु शिशिर, प्रेम कुमार मणि, बजरंग बिहारी तिवारी, रामचंद्र, विवेक कुमार जैसे कुछ साहित्यिक चिंतकों के कारण हिंदी में दलित साहित्य की चर्चा जारी है। दलित साहित्य के संबंध में यह कहना गलत नहीं होगा कि अनुभूति की प्रामाणिकता उसका वास्तविक सत्य है क्योंकि दलित लेखक घटना परिघटना का स्वयं साक्षी है। वह मनुष्य के दुख दर्द, उसके संघर्ष और जिजीविषा तथा उसकी मुक्ति और उत्कर्ष का साहित्य है। दलित साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जहाँ परम्परागत साहित्य में मनुष्येत्तर सत्ता प्रमुख है और मनुष्य गौण है, वहीं दलित साहित्य में मनुष्य प्रमुख है।

आज 'दलित साहित्य' को लेकर कई प्रश्न किए जा रहे हैं, जैसे कुछ वर्ष पूर्व मराठी लेखन को लेकर खड़े हुए थे, क्या साहित्य की अभिजात्य धारा से अलग होकर दलित लेखन की कोई अलग धारा हो सकती है या साहित्य का विभाजन दलित और गैर दलित में किया जा सकता है दलित साहित्य का मूल चरित्र क्या है क्या 'दलित साहित्य' दलित लेखकों द्वारा ही लिखा जा सकता है या गैर दलित भी लिख सकते हैं? प्रश्न भाषा को लेकर भी उठ रहे हैं, लेखन की कलात्मकता और उसके शिल्पीय सौन्दर्य को लेकर भी। लेकिन यह भी सवाल किए जाने चाहिए कि हिन्दी में प्रेमचन्द या नागार्जुन को छोड़कर अन्य साहित्यकार दलित के सवाल से ऊपर क्यों नहीं उठे। हीराडोम के बाद फिर एक लम्बा अन्तराल क्यों दिखाई देता है।

स्वतंत्रता के बाद भी उदासीनता क्यों बनी रही? अगर है भी तो सिर्फ दया, करूणा और सहानुभूति। यह सवाल दलित संवेदना से जुड़ा हुआ है। क्योंकि गैर दलित लेखकों के द्वारा लिखे गए साहित्य में दलित चेतना नहीं होती, जो दलित साहित्य की प्रमुख विशेषता है। इसलिए दलित लेखक इसे दलित साहित्य नहीं मानते। शरण कुमार लिम्बाले के अनुसार,

"दलितों द्वारा लिखा गया साहित्य, जिसमें दलित चेतना नहीं है, दलित साहित्य नहीं मानते हैं।"[4]

तो यह कहा जा सकता है कि दलित लेखक दलितों द्वारा लिखे गए साहित्य को ही दलित साहित्य मानते हैं। दलित साहित्य के यशस्वी कवि कहानीकार गैर दलित लेखकों की सहानुभूति और दृष्टिकोण को सिर्फ दया मानते हैं हिन्दी दलित साहित्य के अधिकारी विद्वान डॉ. धर्मवीर और मोहनदास नैमिशराय भी दलितों द्वारा लिखे साहित्य को ही प्रामाणिक दलित साहित्य कहते हैं। अततः यही कहां जा सकता है कि साहित्य प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में चलने वाले निरन्तर महायुद्ध की अभिव्यक्ति होती है। इस महायुद्ध को कोई दूसरा नहीं लड़ सकता और न ही उसकी अभिव्यक्ति कर सकता है।

दलित साहित्य को लेकर हिन्दी में कई तरह की आशकाएँ जन्म ले रही है, जहां एक तरफ परम्परावादी हिन्दी के समीक्षक और लेखक उसे शंका की दृष्टि से देख रहे हैं, वहीं साहित्य में दलितों की अनाधिकार चेष्टा पर नाक-भौंह तक सिकोड़ रहे हैं, सौन्दर्यशास्त्र की दुहाई देते हैं या उस पर मराठी साहित्य का प्रभाव बताकर इनकार करते हैं या फिर जातिवाद का आरोप या दलित साहित्य पर अनगढ़ अरूचिकर, असंयत भाषा और कलात्मकता का अभाव जैसे शब्द थोप दिए हैं। हिन्दी दलित साहित्य की दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति यह है कि वह शुरू से ही अभिजात्य और कलावादी या कहिए कि वर्णवादी आलोचना और ना समझी का शिकार हो रहा है। दलित साहित्य अभी अपनी प्रारम्भिक अवस्था में है, इस पर कलावादी आरोप लगाना भारतेन्दु युग की कविता में निराला की खोज भर है। वैसे दलित लेखकों का कलात्मकता में विश्वास नहीं है। दलितों की प्रामाणिक अभिव्यक्ति जिन शब्दों से हो सकती है, वही दलित साहित्य की कलात्मकता है। दलित साहित्य में जीवन मूल्य है ओम प्रकाश वाल्मीकि के अनुसार,

"सवर्ण वर्चस्व के विरूद्ध दलित लेखन में जहाँ अपनी अस्मिता की तलाश है, वहीं मानवीय मूल्यों की पक्षधरता को भी सर्वोपरि माना है। मनुष्य की स्वतंत्रता की भावना और उसकी अभिव्यक्ति दलित साहित्य की प्राथमिकताओं में है। मानव मुक्ति के सभी रूपों में और अंतरंगों का दर्शन दलित साहित्य में दिखाई पड़ता है, स्वतंत्रता केवल राजनीतिक ही नहीं होती, धार्मिक, आर्थिक और सामाजिक भी होती है। इसलिए दलित साहित्य की अन्तर्निहित धारा में स्वतंत्रता का भाव प्रधान रूप में विद्यमान है।"[5]

हिंदी के दलित साहित्य पर मराठी साहित्य का प्रभाव बताया जाता है। अगर इसे सच भी मान लें तो इसमें बुराई क्या है? जहाँ तक सौन्दर्यशास्त्र और भाषा का प्रश्न है तो यह अब विचार विमर्श का विषय हो सकता है कि कैसा सौन्दर्यशास्त्र और कैसी भाषा? दलित साहित्य, साहित्य के सौन्दर्यशास्त्र को नहीं स्वीकारता। इस कारण आम पाठक को ये बातें समझ में नहीं आती है। इसी कारण दलित साहित्य और इससे जुड़े रचनाकार जीवन की सच्चाई और उसकी भाषा को साफ-साफ सामने रखना चाहते हैं।

"दलित साहित्य सदियों से पद दलित लोगों की अभिव्यक्ति का साहित्य है। इसका यह मतलब कतई नहीं है कि दलित साहित्य में कोई कला या सौन्दर्य नहीं है उसका अपना सौन्दर्य है, कमी उस सौन्दर्य को देखने वाली आंखों की है।"[6]

पारम्परिक सौन्दर्यशास्त्र का स्थायी भाव आनन्द है क्या समता, बंधुता, स्वतंत्रता, आनंद से बढ़ कर कहीं ज्यादा महत्व नहीं रखते हैं। दलित साहित्य के आगे भाषा सौन्दर्य की नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय-अन्याय की बात और दलित अस्मिता का प्रश्न पहले है।

अन्ततः प्रश्न तो गैर दलित लेखकों द्वारा दलितों पर लिखे गए साहित्य को लेकर है। क्या प्रेमचन्द, निराला, नागार्जुन, जगदीश चन्द्र, गिरिराज किशोर आदि का साहित्य दलित साहित्य की कोटि में आएगा?

प्रश्न सहानुभूति के साहित्य और आत्मानुभूति के साहित्य में अन्तर करने का है। जरूरी नहीं है कि सहानुभूति का सारा साहित्य अप्रमाणिक ही हो। प्रेमचन्द, नागार्जुन, अमृत लाल नागर, गिरिराज किशोर और साहित्य इसी का प्रमाण है। अतः केवल दलितों द्वारा लिखे गए साहित्य को दलित साहित्य कहना दलित साहित्य की सीमा और अवधारणा को सीमित करना है। अब प्रश्न दलित और अदलित द्वारा लिखित साहित्य का नहीं वरन् सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक व्यवस्था के प्रति विरोध और असंतोष की अभिव्यक्ति जिस साहित्य में है, उसे दलित साहित्य की कोटि में रखा जाना चाहिए। दलित लेखिका विमल थोरात का कहना है कि-

"भारतीय समाज की जाति व्यवस्था और अस्पृश्यता के भीषण स्वरूप और यहां की शोषण व्यवस्था को पहचानकर उसके विरोध की कठोर प्रतिक्रिया ही दलित साहित्य है।"[7]

दलित साहित्य का मूल स्वर वेदना, विद्रोह संघर्ष और उत्थान है। दलित साहित्य सामन्ती मूल्यों और सवर्णो के उत्पीड़न के खिलाफ दलितों द्वारा लिखा गया साहित्य है। यह परम्परावादी हिन्दू ब्राह्मणी मानसिकता का विरोध करता है। जिस व्यवस्था में दलितों को गुलाम बनाकर रखा गया था, उसके स्वाभिमान को कुचल दिया गया था उसे सामाजिक विधान से बाहर कर दिया गया था, ऐसी रूढ़ व्यवस्था का दलित साहित्य विरोध करता है। हम कह सकते हैं कि दलित साहित्य एक हद तक इतिहास और शास्त्र का विरोधी है। वह नये शास्त्र का निर्माण करना चाहता है। देखा जाए तो उनका यह विरोध समय की परिस्थितियों के अनुकूल और न्यायोचित है।

संदर्भ सूची :

1. सूर्यकांत त्रिपाठी निराला: कुल्ली भाट रचनावली भाग 4, श्री दुलारे लाल भार्गव अध्यक्ष गंगा पुस्तकमाला, कार्यालय, लखनऊ, सन् 1968, प्रथम संस्करण 1983, पृष्ठ 71
2. जगदीशचन्द्र: धरती धन न अपना, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2007, पृष्ठ 200
3. जगदीशचन्द्र: धरती धन न अपना, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2007, पृष्ठ 200
4. शरण कुमार लिम्बाले से ओम प्रकाश वाल्मीकि की बातचीत, हंस, अंक: 5 दिसम्बर 1995, पृष्ठ 33
5. ओमप्रकाश वाल्मीकि: दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2001, पृष्ठ 62-63
6. सं. रमणिका गुप्ता, युद्धरत आम आदमी, अंक 34-35, अप्रैल-सितंबर 1996, पृष्ठ 186
7. विमल थोरात: मराठी दलित कविता और साठोत्तरी हिन्दी कविता में सामाजिक और राजनीतिक चेतना, हिन्दी बुक सेंटर 4/5 आसफ अली रोड़, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण 1996, पृष्ठ 56

***

डॉ. मनमोहन सिंह की विदेश नीति में निरन्तरता एवं परिवर्तन का अध्ययन

*डॉ. राजेश कुमार सिंह**

सारांश

राष्ट्रीय जनतांत्रिक गंठबधन सरकार (एनडीए) के पराजय के पश्चात मनमोहन सिंह के नेतृत्व में संयुक्त प्रगतिशील गटबंधन (यूपीए) की सरकार ने केन्द्र में सत्ता संभाली। यह सरकार गठबंधन की सरकार थी इसलिए सरकार का संचालन करने के लिए न्यूनतम साझा कार्यक्रम की घोषण की गई। इसमें अन्य नीतियों के साथ–साथ विदेश नीति के प्रमुख सिद्धान्तों को भी सम्मिलित किया गया। प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह सरकार की विदेश नीति निरन्तरता एवं परिवर्तन का सम्मिश्रण है। मनमोहन सिंह ने परम्परागत भारतीय विदेश नीति के आधारभूत सिद्धान्तों का सम्मान करते हुए उन्हे अपनी विदेश नीति में समुचित स्थान दिया किन्तु उनके समय में जो विशेष चुनौतियाँ सामने आयी उनका सामना करने के लिए जहाँ आवश्यक हुआ है वहाँ देश के व्यापक हित में आवश्यक संशोधन करने में किसी प्रकार की हिचक भी नहीं दिखाई है।

कुंजी : डॉ.मनमोहन सिंह, राष्ट्रीय जनतांत्रिक गंठबधन, न्यूनतम साझा कार्यक्रम, पड़ोसी देश।

भूमिका

डॉ. मनमोहन सिंह 22 मई, 2004 से 26 मई, 2014 – मई 2004 में भारत के प्रधानमंत्री रहे। राष्ट्रीय जनतांत्रिक गंठबधन सरकार (एनडीए) के पराजय के पश्चात मनमोहन सिंह के नेतृत्व में संयुक्त प्रगतिशील गटबंधन (यूपीए) की सरकार ने केन्द्र में सत्ता संभाली। यह सरकार गठबंधन की सरकार थी इसलिए सरकार का संचालन करने के लिए न्यूनतम साझा कार्यक्रम की घोषण की गई। इसमें अन्य नीतियों के साथ–साथ विदेश नीति के प्रमुख सिद्धान्तों को भी सम्मिलित किया गया। डॉ. मनमोहन सिंह, अनेक दलों की मिली–जुली सरकार के नेता के रूप में प्रधानमंत्री बने। भारतीय संसद के चुनाव में राजग सरकार की नाटकीय पराजय व संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन की जीत हुई। सोनिया गाँधी के प्रधानमंत्री पद अस्वीकार कर देने के पश्चात् विख्यात अर्थशास्त्री डॉ. मनमोहन सिंह को जो नरसिंहा राव के मंत्रिमण्डल में वित्त मंत्री रह चुके थे, को प्रधानमंत्री चुना गया। **मनमोहन सिह** नटवर सिंह (22 मई 2004–6 नवम्बर 2005), सलमान खुर्शीद (28 अक्टूबर, 2012 – 26 मई 2014),),एस एम कृष्णा (22 मई 2009 – 26 अक्टूबर 2012), प्रणब मुखर्जी (24 अक्टूबर 2006 – 22 मई 2009), मनमोहन सिंह (6 नवम्बर 2005– 24 अक्टूबर 2006) रहे।

डॉ. मनमोहन सिंह ने अपनी विदेश नीति में गुटनिरेपेक्षता, पंचशील, सार्क देशों से अधिक सहयोगी और मित्रतापूर्ण सम्बन्ध की स्थापना, तीसरी दुनिया के देशों के साथ सहयोग को अधिक महत्व देना, संयुक्त राज्य अमेरिका के साथ सम्बन्धों के विकास को बनाये रखना, संयुक्त राष्ट्र संघ को पूर्ण समर्थन देना, संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद में भारत की स्थायी सदस्यता की प्राप्ति के लिए प्रयास करना, विश्व व्यापार संगठन डब्लूटीओ में भारत तथा तीसरी दुनिया के देशों के हितों की सुरक्षा करना, परमाणु शस्त्रो के साथ भारतीय परमाणु नीति की स्वतन्त्रता को बनाये रखना, फिलिस्तीन के लोगों के हितों और अधिकारों का अधिक समर्थन करना तथा अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद की समाप्ति के लिए सभी देशों विशेषकर संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, रूस तथा चीन के साथ अधिक सहयोग करना शामिल थे।

प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह सरकार की विदेश नीति निरन्तरता एवं परिवर्तन का सम्मिश्रण है। मनमोहन सिंह ने परम्परागत भारतीय विदेश नीति के आधारभूत सिद्धान्तों का सम्मान करते हुए उन्हे अपनी विदेश नीति में समुचित स्थान दिया किन्तु उनके समय में जो विशेष चुनौतियाँ सामने आयी

* असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान, बाबू जगजीवन राम इंस्टिच्युट ऑफ लॉ बुन्देलखण्ड यूनिवर्सिटी, झांसी

उनका सामना करने के लिए जहाँ आवश्यक हुआ है वहाँ देश के व्यापक हित में आवश्यक संशोधन करने में किसी प्रकार की हिचक भी नहीं दिखाई है।

चीन और पाकिस्तान सरीखे महत्वपूर्ण पड़ोसियों और अमेरिका जैसी बड़ी ताकतों के साथ सम्बन्धों के मामलों में मनमोहन सिंह के उनके साथ बेहतर रिश्ते बनाने और उनको नये स्तर तक ले जाने की पहले वाली नीति को आगे बढ़ाया। सरकार के सामने नेपाल व श्रीलंका की गम्भीर समस्याएं भी थी। प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने न केवल शांति वार्ता के प्रति अपनी सरकार की चलती आ रही प्रतिबद्धता की घोषणा की बल्कि शांति प्रक्रिया को तेज करने के प्रयास भी किए। डॉ. मनमोहन सिंह ने विदेश मंत्रालय का कार्यभार नटवर सिंह को सौंपा, लेकिन 2005 में ईराकी तेल घोटाले में आरोपित होने के कारण मंत्रिमंडल से त्यागपत्र दे दिया। मनमोहन सिंह ने सभी देशों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध बनाने के प्रयास किय। 2004–2014 तक लगभग सभी देशों से मधुर संबंध बनाने के लिए वार्ता तथा समझौते किये।

मनमोहन सिंह पाकिस्तान के साथ सम्बन्धों को एक नया आयाम देते हुए शांति– प्रक्रिया को तेज करने व आगे बढ़ाने का काम किया। सार्क (दक्षेस) के मंच पर भारत की एक जोरदार उपस्थिति हुई। जनवरी 2004 में इस्लामाबाद में हुए 12वें सार्क सम्मेलन में आतंकवाद के तमाम रूपों और अभिव्यक्तियों की निन्दा की गयी। 2006 के ढाका सम्मेलन (13वां) में आतंकवाद से लड़ने की वचनबद्धता को दोहराया गया। हवाना में गुटनिरपेक्ष शिखर सम्मेलन के दौरान मुशर्रफ व मनमोहन सिंह की मुलाकात में शांति प्रक्रिया में नई जान फूँकने का प्रयास हुआ भारत व चीन के बीच आपसी सम्बन्धों को एक नये आयाम देने का प्रयास किया गया।

मनमोहन सिंह ने 17 जुलाई 2005 में संयुक्त राज्य अमेरिका की तीन दिवसीय यात्रा की। यह यात्रा दोनों देशों के मध्य पारस्परिक सम्बन्ध सीापित करने के लिए विशेष महत्वपूर्ण रही। इस दौरान अमेरिका ने भारत के प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह का विशेष सम्मान किया। मनमोहन सिंह ने कई मुद्दों पर समझौते किये। इस समझौते में अमरिका ने अप्रत्यक्ष रूप से स्वीकार किया कि भारत अत्याधुनिक परमाणु शक्ति सम्पन्न जिम्मेदार देश है। इसका तात्पर्य अमेरिका परमाणु शक्ति के असैन्य उपयोग के क्षेत्र में भारत के साथ सहयोग करेगा तथा उस पर लगे परमाणु प्रतिबन्धों को हटाएगा।

हू–जिन्ताओं की वर्ष 2006 में भारत की यात्रा से भारत–चीन सम्बन्धों को एक नई उचाईयाँ मिली। सीमा विवाद के प्रश्न पर भारत व चीन दोनों देशों के प्रधानमंत्री ने इस पर सहमति जताई कि सीमा प्रश्न का जल्दी निपटारा होने से न केवल दोनों देशों के बुनियादी हितों को लाभ होगा बल्कि आर्थिक उदारीकरण के इस युग में उनकी लाभदायी भागीदारी को अधिक शक्ति एवं गतिशीलता प्राप्त हुई। संयुक्त राष्ट्र संघ में सुरक्षा परिषद के स्थायी सदस्य बनने के प्रयास पर भी चीन ने खुशी व्यक्त की। भारत व रूस के बीच सम्बन्धों के मजबूती व अधिक व्यापक बनाने के प्रयास किये गये। भारत व अमरीका के सम्बन्धों में सबसे महत्वपूर्ण समझौता जिसे 123 परमाणु समझौता भी कहा गया एक महत्वपूर्ण उपलब्धि रही है। भारत अमरीका परमाणु समझौतों के पश्चात् अपने यूरोपीय यात्रा के दौरान वक्तव्य में डॉ. मनमोहन सिंह ने कहा कि, ''हमें विश्व की वास्तविकताओं को देखना चाहिए। हम असमान शक्ति के विश्व में रह रहे हैं।

24 नवम्बर 2007 को प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने रूस की यात्रा की[1] इस यात्रा से एक दिन पहले मनमोहन सिंह ने नई दिल्ली में स्पष्ट किया कि भारत एवं रूस के सम्बन्ध ऐतिहासिक रहे हैं। इस बहुआयामी अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण में क्षेत्रीय एवं वैश्विक मुद्दे पर दोनों देशों की साझेदारी निरन्तर एक दूसरे का निकट लाती रहेगी।[2] इस यात्रा के दौरान भारत ने रूस के साथ चार समझौते किये जो अन्तरिक्ष कार्यक्रम, प्रतिरक्षा सम्बन्ध एवं व्यापार और नशीले पदार्थों की तस्करी को रोकने से सम्बन्धित थे। दोनों देशों ने परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम को और विकसित करने का निर्णय लिया। भारत के प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने 2008 में चीन का दौरा भी किया। दोनों देशों ने '21वीं सदी की साझी दृष्टि' नामक संयुक्त घोषणा पत्र पर हस्ताक्षर किये।

नवम्बर 2009 में कनाडा के प्रधानमंत्री स्टीफन हार्पर भारत की यात्रा पर आये[3] एवं इसके बाद जून 2010 में भारत के प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह कनाडा की यात्रा पर गये।[4] दोनों देशों ने अपने द्विपक्षीय व्यापार को अगले वर्षों में पांच अरब डालर से पन्द्रह अरब डालर करने का लक्ष्य रखा।

अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा की 6–8 नवम्बर 2010 की भारत यात्रा के दौरान तीन संगठनों –भारतीय अन्तरीक्ष अनुसंधान संगठन आईएसआरओ, रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन डीआरडीओ व भारत डायनेमिक्स लिमिटेड बीडीएल– से प्रतिबन्ध हटाने की घोषणा इसका प्रमाण है।[5] अमेरिका के साथ परमाणु करार पर हस्ताक्षर हुआ।

मनमोहन सरकार ने अपनी विदेश नीति में व्यापक सुधार करते हुए सभी पश्चिमी देशों के साथ मधुर संबंध स्थापित किये हैं। उदारवादी आर्थिक नीति के कारण पश्चिमी देशों ने भी भारत के साथ संबंधों में सुधार की आवश्यकता को महसूस किया है। सबसे अच्छी बात इनकी विदेश नीति की रही है। अमेरिका और रूस से समान स्तर पर मित्रता हो गई है। ईरान एवं भारत के मध्य पेट्रोलियम पाइप लाइन बिछाने की दिशा में भी कार्य किया जा रहा है। पाकिस्तान के साथ रेल तथा बस सेवा शुरू हो चुकी है।

डॉ. मनमोहन सिंह की विदेश नीति पांच सिद्धांतों पर आधारित रही – पहला, दुनिया से भारत के रिश्ते देश की विकास संबंधी प्राथमिकताओं से तय किये गये। इसका उद्देश्य देश की भलाई के अनुकूल वैश्विक वातावरण बनाना रहा। बाकी चार पहलू हैं– विश्व अर्थव्यवस्था के साथ अधिक एकीकरण, सभी बड़ी ताकतों के साथ संबंधों में अधिक स्थिरता, भारतीय उपमहाद्वीप में अधिक क्षेत्रीय सहयोग एवं संपर्क और पांचवां यह कि विदेश नीति सिर्फ स्वार्थ से तय नहीं होती, बल्कि यह भारतीय जन को अतिप्रिय उसूलों पर आधारित है। पांचवें बिंदु की व्याख्या करते हुए डॉ. मनमोहन सिंह ने कहा, 'बहुलवादी, धर्मनिरपेक्ष, उदार लोकतंत्र के ढांचे में आर्थिक विकास की तलाश के भारत के प्रयोग ने दुनिया भर में लोगों को प्रेरित किया है।' यानी अपनी विदेश नीति को उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम से उपजे मूल्यों की परंपरा से संचालित बताया। किसी विचारधारा को विदेश नीति के इन सिद्धांतों पर शायद ही कोई बुनियादी एतराज हो।

अमेरिका के साथ परमाणु असैनिक समझौते की स्वीकृति को भी ऊर्जा सुरक्षा के दृष्टिकोण से जोड़ा जा सकता है। यद्यपि भारत–अमेरिका संबंधों के मधुरता का काल पहले से ही चला आ रहा है, परंतु विशिष्ट रूप से परमाणु समझौते में उनकी अत्यधिक रुचि को नज़रअन्दाज नहीं किया जा सकता। अतः भारतीय विदेश नीति के आर्थिक पहलुओं पर अत्यधिक बल को मनमोहन सिंह के व्यक्तिगत विचारों से प्रभावित माना जा सकता है।[6]

डॉ. मनमोहन सिंह के कार्यकाल में भारतीय विदेश नीति पं. नेहरू के द्वारा बनाए गए सिद्धान्तों का अनुपालन करते हुए उसे यथार्थवाद की ओर ले जाने का सफल प्रयास किया। विदेश नीति के मोर्चे पर डॉ. मनमोहन सिंह की सरकार के कार्यकाल में स्थायित्व और निरंतरता का दर्शन होता है। विशेषतः पाकिस्तान और चीन जैसे देशों के साथ सम्बन्धों को बेहतर बनाने में और उसे नए स्तर तक ले जाने की पहली वाली नीति को आगे बढ़ाया गया और इस प्रक्रिया को शांतिवार्ता तथा विभिन्न मंचों पर आपसी साझेदारी के माध्यम से आगे बढ़ाने का प्रयास किया गया। डॉ. मनमोहन सिंह के 10 वर्षों के कार्यकाल – मई 2004 से मई 2014– में भारत की विदेश नीति में यथार्थवाद देखने को मिला और 'पूरब की ओर देखो' लुक वेस्ट पॉलिसी, कनेक्ट सेंट्रल एशिया पॉलिसी और कृष्णा डॉक्ट्रिन का उद्भव हुआ। डॉ. मनमोहन सिंह के कार्यकाल के दौरान भारत–आसियान, भारत–जापान, भारत और यूरोपीय संघ तथा संयुक्त राज्य अमेरिका के साथ परमाणु समझौता करके सम्बन्धों को नई दिशा देने का सफल प्रयास किया गया। यही नहीं, सुरक्षा परिषद् में सदस्यता के लिए भारत द्वारा सतत् रूप से निरंतर प्रयास किया गया। डॉ. मनमोहन सिंह के कार्यकाल में भारत का विदेश नीति अर्थनीति पर आधारित रही, परन्तु इसके साथ–साथ अपने राजनय पक्ष पर भी ध्यान देते रहे। डॉ. मनमोहन सिंह के कार्यकाल में भारतीय विदेश नीति की प्रमुख उपलब्धियों को निम्न रूपों में देखा जा सकता है–

अपने दूसरे कार्यकाल के दौरान 29–30 अक्टूबर, 2010 को प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने वियतनाम की यात्रा की, जहां 10 सदस्यीय अभियान के साथ शिखर बैठक में दोनों पक्षों में गुड्स ट्रेन समझौते पर विचार हुआ जो जनवरी, 2010 के लागू हुआ। इसी प्रकार आसियान के साथ भारत के सम्बन्धों को रेखांकित करते हुए डॉ. मनमोहन सिंह ने 2012–15 के लिए भारतीय–आसियान के '82 सूत्रीय प्लान और एक्शन' के तहत पारस्परिक सहयोग की अनेक परियोजनाएं प्रस्तावित कीं।

उपसंहार

प्रधानमंत्री मममोहन सिंह की विदेश नीति के प्रभाव को उनके उदारीकरण की आर्थिक नीति के संदर्भ में देखा जा सकता है। उनकी इस भूमिका को नरसिम्हाराव के मंत्रिमण्डल में उनके वित्तमंत्री के कार्यकाल की पृष्ठभूमि के संदर्भ में जोड़ा जा सकता है। उनके काल में अमेरिका से बढ़ती आर्थिक नजदीकियाँ, आशियान संगठन से मधुरता, विमस्टेक जैसे संगठनों को उनकी भूमण्डलीकरण में गहन आस्था के रूप में देखा जा सकता है। इन्हीं कारणों से वह विश्व व्यापार संगठन, विश्व बैंक, यूरोपीयन संघ, जी–आठ तथा डाबोस के विश्व आर्थिक मंच के सम्मेलनों में अधिक भाग लेने के राजनय में व्यस्त रहते हैं।

सन्दर्भ :

1 हिन्दुस्तान टाइम्स, 13 नवम्बर, 2007.

2 प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह के चुने हुए भाषण, खण्ड 1, मई 2004–2005, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, पृ. 392–93..

3 टाइम्स ऑफ इण्डिया, 19 नवम्बर, 2009.

4 हिन्दुस्तान, 24 जून, 2010.

5 पदम सिंह, भारत की परमाणु नीति और भारत अमेरिका सम्बन्ध, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2014, पृ. 177–225.

6 आर.एस. यादव, विदेश नीति, डॉर्लिंग किंडरस्ले इंडिया प्रा.लि. दक्षिण एशिया पियर्सन, 2013, पृ. 39.

***

संगीत का मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव

*डॉ. अजिर बिहारी चौबे**
*दीक्षा गुप्ता***

कहते हैं शरीर और मन दोनों अगर स्वस्थ हैं तो आप दुनिया के सबसे अमीर व्यक्ति के बराबर खुद को समझ सकते हैं, जी हाँ, शारीरिक तौर पर ही सिर्फ स्वस्थ रहना काफी नहीं है बल्कि आपका मानसिक तौर पर भी स्वस्थ रहना एक सुखी और सम्पन्न जीवन का पहला मापदण्ड है। जरूरी नहीं है कि कोई बीमारी जब आँखों से नजर आए तभी तो बीमारी हो, नहीं नजर आने वाली मानसिक बीमारी भी व्यक्ति के लिए बेहद घातक होती है। जरा सोचिए क्या आपके भूलने की आदत ज्यादा ही बढ़ गई है? कई बार दरवाजे की कुंडी लगाकर सोने के लिए बिस्तर पर पहुँचते हैं और अचानक लगता है कि दरवाजा खुला तो नहीं हैं? क्या दिन में ऐसा बार–बार होता है? क्या आप जरा–जरा सी बात पर डर तो नहीं जाते? अपना जीवन आपको सराहनीय ही नहीं लगता? कहीं आपके मन में आत्महत्या करने का विचार तो नहीं आता? कहीं आपकी जरा–जरा सी बातों पर उत्तेजित हो उठने की आदत तो नहीं है? चिड़चिड़ापन और गुस्सा आपकी नाक की नोंक पर तो सवार नहीं रहता? अगर आप भी इन लक्षणों से गुजर रहे हैं तो सावधान हो जाइए, हो सकता है कि आप किसी मानसिक बीमारी की गिरफ्त में हों जिसका आपको खुद ही पता ना हो। इन परेशानियों का मुख्य कारण हमारी बदलती जीवनशैली है। आधुनिक जीवनशैली में मानसिक दबाव से दिमाग पर काफी बुरा प्रभाव रहा है। इसके परिणामस्वरूप हम खुद में एकाकी महसूस कर मानसिक रोगों की गिरफ्त में आते जा रहे हैं। दिमाग को चुस्त रखने के लिए निश्चित समय पर विश्राम के साथ मनोरंजन भी मानसिक स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण होता है। बढ़ती उम्र का दबाव हो या किशोरावस्था का प्रतिबल, प्रत्येक प्रकार की चिंता को कम करके संगीत मस्तिष्क में कम्पन कर शांति प्रदान करता है।

भारतीय शास्त्रीय संगीत के स,रे,ग,म,प,ध,नि,स सरगम की ध्वनि, तीनों सप्तक कोमल, मध्य तथा तीव्र स्वरों की तुलना आप झरने, पवन, कोयल, मोर, पेड़–पौधे, पशु–पक्षियों के प्राकृतिक मधुर संगीत के साथ कर सकते हैं। भारतीय संगीत गायन, वादन, नृत्य हो या फिर प्राकृतिक संगीत सभी में सातों स्वरों की सरगम का समावेश होता है। पेन्सिल्वेनिया विश्वविद्यालय में संगीत चिकित्सक जेनिफर बोर्गवर्ड के अनुसार संगीत चिकित्सा पद्धति में गीत लेखन–गानों पर प्रस्तुति–संगीत सुनना तथा वादयंत्र बजाना शामिल है। व्यक्ति की जरूरतों के हिसाब से इनमें से किसी का भी इस्तेमाल किया जा सकता है। संगीत का साथ स्मृति, सीखने की प्रक्रिया, भाषा और तर्क से सम्बन्धित मुद्दों के प्रभाव को कम कर सकता है। अगर किसी को स्ट्रोक के कारण चलने में दिक्कत है तो संगीत चिकित्सा उनके लिए मददगार हो सकता है। प्रस्तुत अध्ययन मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से संगीत तथा संगीत चिकित्सा की प्रभावशीलता का विश्लेषण करने के लिए किया गया। पिछले कुछ सालों में मानसिक स्वास्थ्य को बेहतर रखने के लिए संगीत की भूमिका तथा संगीत थैरेपी के लाभों को लेकर कई शोध तथा अध्ययन किए गए हैं। नाद योग तथा राग चिकित्सा पुरातन समय से हमारे देश में आज भी प्रयोग किए जाने वाले संगीत चिकित्सा है। ये अन्तर्मन को उच्च जीवन शक्ति प्रदान करके कैंसर जैसी लाइलाज बीमारी को भी मात देने में काफी हद तक सफल है। नाद योग द्वारा लयबद्ध श्वांस लेने की एक निश्चित आवृत्ति वाद्यंत्र ध्वनि उत्पन्न करती है। जिसका निरन्तर प्रयोग मानव शरीर के मेरुदण्ड में सातों चक्रों के प्रबन्ध तक पहुँचता है। संगीत सकारात्मक आत्मबल का निर्माण कर जीवन की शारीरिक व मानसिक समस्याओं का सामना करने की नीतिगत विचार तकनीक सिखाता है, अक्सर

* एसोसिएट प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, मनोविज्ञान विभाग, एस.आर.के.पी.जी. कॉलेज, फीरोजाबाद, उ०प्र०
** एम.ए., नेट, शोधार्थी, मनोविज्ञान विभाग, एस.आर.के.पी.जी. कॉलेज, फीरोजाबाद, उ०प्र०

हमने देखा है कि रोते हुए बच्चे मधुर संगीत सुनकर सो जाते हैं, जिससे हम सभी जानते हैं कि संगीत मस्तिष्क पर प्रभाव डालता है। आइए जानते हैं कि कैसे संगीत मानसिक स्वास्थ्य के लिए मददगार हो सकता है। जानकार बताते हैं कि विभिन्न प्रकार का संगीत अलग–अलग प्रकार की न्यूरोलॉजिकल प्रतिक्रियाओं को उद्घाटित करता है विशेषज्ञों की मानें तो संगीत चिकित्सा या थेरेपी के कुछ मुख्य प्रभाव हैं, जिसको जानने के लिए निम्नांकित बिन्दुओं पर विचार किया जा सकता है–

1. तनाव व चिंता का दूर होना– आज के समय में शायद ही कोई व्यक्ति तनाव मुक्त हो लेकिन जब तनाव लगातार हद से ज्यादा बढ़ जाता है तो यह नुकसानदेह हो जाता है। बता दें कि तनाव के कारण ब्लड प्रेशर और हृदयाघात की संभावना कई गुना बढ़ जाती है। इतना ही नहीं यह आपको, रोग प्रतिरोधक क्षमता कम करने के साथ भावनात्मक रूप से भी अति संवेदनशील बना देता है। गौरतलब है कि तनावग्रस्त व्यक्ति की याददाश्त कमजोर होने के कारण उनका ध्यान केन्द्रित करना मुश्किल होने लगता है। जिस कारण उन्हें जीवन का केवल नकारात्मक पहलू ही दिखाई देता है। जो व्यक्ति बदमिजाज, क्रोधी और खिन्न बनाकर रख देता है। कोरोना काल के दौरान मानसिक तनाव के भी काफी मामले सामने आए हैं। मानसिक तनाव को दूर करने में सहायक है। कोरोना काल में लम्बे समय तक घर में रहने की वजह से भी कई लोग मानसिक तनाव का शिकार हुए हैं, तो कुछ लोग कल को लेकर तनाव में हैं। मनोविशेषज्ञों की सलाह है कि अगर आप घर में बंद रहने को मजबूर हैं, तो घबराएँ नहीं, बल्कि कुछ तरीकों को अपनाकर आप पलभर में बेहतर महसूस कर सकते हैं। जब भी आपको उदासी और घबराहट महसूस हो, किसी शांत जगह पर बैठें और गहरी सांसे लें फिर कोई पसंद का संगीत सुनें। इससे दिमाग में कुछ ऐसे हार्मोन रिलीज होते हैं, जिनसे शीघ्र ही अच्छा महसूस होने लगता है। विज्ञान ने भी माना है कि ऐसे समय में संगीत का मन पर बहुत ही सकारात्मक असर होता है इसीलिए उदासी महसूस हो, तो कोई बढ़िया संगीत सुनें। मानसिक तनाव का सबसे बड़ा कारण 'अकेलापन' होता है। जिसे दूर करने के लिए आप संगीत का सहारा लें। दरअसल संगीत की धुन कण में पड़ने से हमारे अन्दर अच्छा तथा उत्साह फील करने वाले सेरोटोनिन और एंडोर्फिन हार्मोन रिलीज होने लगते हैं। हारवर्ड हेल्थ के एक शोध के अनुसार संगीत चिकित्सा से तनाव और चिंता की समस्या से बचा जा सकता है। ब्रिटिश एकेडमी ऑफ साउंड थेरेपी वर्षों से चिकित्सीय उद्देश्यों के लिए संगीत सुनने के लाभकारी प्रभावों का अध्ययन कर रही है जिसमें उन्होंने पाया है कि महज 13 मिनट संगीत सुनना तनाव दूर कर सकता है।

कई रोगियों को आक्रमक चिकित्सा प्रक्रियाओं से पहले बढ़ी हुई चिंता का अनुभव होता है। यह चिंता उच्च हृदय गति और रक्तचाप के साथ–साथ एड्रेनोकोर्टिकोट्रोपिक हार्मोन के बढ़ते परिसंचरण को जन्म दे सकती है, जो रोगी के ठीक होने के समय को बढ़ा सकती हैं, घाव के संक्रमण का कारण बन सकती है और हृदय प्रणाली पर बुरा प्रभाव डाल सकती है। कुछ हालिया शोध मामूली चिकित्सा प्रक्रियाओं से गुजर रहे मरीजों में चिंता कम करने के लिए हस्तक्षेप के रूप में संगीत का उपयो करने की प्रभावशीलता का विश्लेषण करते हैं। एक रिसर्च में यह पाया गया है कि जिन लोगों को बैंक सर्जरी के बाद म्यूजिक थेरेपी दी गई उन्हें सर्जरी के बाद बैकपेन में बहुत राहत मिली। एक अन्य शोध से यह सामने आया है कि संगीत कैलोरी के सेवन को कम करके संयमी बनाने में मदद करता है। चिंता में व्यक्ति कार्बोहाइड्रेट और वसायुक्त भोजन को खाने की ज्यादा इच्छा रखता है। जैसा कि आप जानते हैं संगीत से चिंता भी दूर होती है और इससे आपको स्वस्थ खाने में मदद मिल सकती है। कुछ मनोवैज्ञानिकों का तो यहाँ तक कहना है कि 'चिंता में संगीत का उतना ही लाभ होता है जितना दो घण्टे की मसाज लेने से होता है।'

2. शारीरिक एवं मानसिक विकारों के उपचार में सहयोगी– संगीत हमारे मनोरंजन का साधन है मगर इसके साथ ही यह मानसिक सेहत का भी ख्याल रखने में सक्षमह ै। संगीत के तमाम लाभों पर पेन्सिल्वेनिया विश्वविद्यालय में हुए एक हालिया अध्ययन में पता चला है कि यह तमाम मानसिक विकारों के उपचार में मददगार साबित हो सकता है। इसमें कोई दो राय नहीं है कि संगीत सुनना और नृत्य करना चिकित्सकीय रूप से लाभकारी हो सकता है। मानसिक और भावात्मक सेहत के लिए

भी यह प्रभावी है। संगीत के लाभों पर हुए हालिया शोध में यह साबित हुआ है कि संगीत चिकित्सा के क्षेत्र को बेहतर बना सकता है। इसका इस्तेमाल शारीरिक, सामाजिक, संज्ञानात्मक और भावनात्मक स्वास्थ्य की बेहतरी में हो सकता है। विशेषज्ञों का कहना है कि संगीत चिकित्सा सभी आयु वर्ग और स्वास्थ्य स्थितियों वाले लोगों के लिए लाभकारी है। चाहे वह कोई वाद्यंत्र बजाते हो या किसी संगीत कौशल में माहिर हो। संगीत चिकित्सक ब्रायन हेरिस का कहना है कि मस्तिष्क को संगीत के बराबर धरती पर कोई दूसरी चीज प्रेरित और उत्तेजित नहीं कर सकती। संगीत को न्युरोप्लास्टी में सहायता करने में भी कारगर पाया गया है। पुराने कनेक्शन को मजबूत करने व नये कनेक्शन को बनाने में भी, मस्तिष्क को मजबूत करने के मामले में संगीत कारगर है। संगीत को शारीरिक और मानसिक दोनों तरह से सेहत पर सकारात्मक प्रभाव होता है, परन्तु यह मानसिक स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं के उपचार में अधिक प्रभावी है। शोधकर्ताओं का कहना है कि संगीत डिमेंशिया, अस्थमा, तेज दर्द, ऑटिज्म, चिंता, अवसाद, स्ट्रोक, पार्किसन, सिजोफ्रेनिया, सामाजिक व्यवहार, अल्जाइमर आदि रोगों के उपचार में मददगार है।

द इंटरनेशनल जर्नल ऑफ कार्डियोलॉजी में प्रकाशित संगीत थेरेपी और रक्तचाप पर शोध से पता चलता है कि संगीत चिकित्सा सिस्टोलिक रक्तचाप को कम करने में सक्षम है, जो स्ट्रोक के जोखिम को कम करता है। दुनियाभर में बड़ी संख्या में लोग अवसाद तथा अन्य मानसिक समस्याओं का सामना करते हैं, ऐसे में भी संगीत चिकित्सा एक ऐसे उपचार के रूप में लोगों की मदद करती है, जिसका कोई साइड इफेक्ट नहीं है। जानकार मानते हैं तथा इस विषय पर किये गये कई शोध के नतीजे भी बताते हैं कि संगीत चिकित्सा या मात्र संगीत सुनने से ही अल्जाइमर, डिमेंशिया, व्याकुलता, आक्रामकता और मनोभ्रंश एवं अन्य मानसिक स्वास्थ्य स्थितियों में राहत मिल सकती है। गौरतलब है कि संगीत का उपयोग संवेदी और बौद्धिक उत्तेजना के रूप में भी किया जा सकता है। गौरतलब है कि संगीत का उपयोग संवेदी और बौद्धिक उत्तेजना के रूप में भी किया जा सकता है, जो किसी व्यक्ति के जीवन की गुणवत्ता को बनाये रखने में मदद कर सकता है। केजीएमयू के न्यूरो सर्जरी डिपार्टमेंट के प्रो. क्षितिज श्रीवास्तव ने बताया कि हेड इंजरी के मरीजों में भी संगीत चिकित्सा से बेहतर परिणाम देती है। इयरफोन या हेडफोन के जरिये सुनाए मधुर संगीत से जल्द रिकवरी होती है। यह दो तरीके से कारगर है। पहला ऐसे मरीज जो दुर्घटनावश बेहोश हैं, दूसरे वे जो अवसादग्रस्त हैं। हेड इंजरी या ट्यूमर के मरीजों में लाइट संगीत ब्रेन को एक्टिवेट करता है। वहीं उत्सुकता और अवसाद के रोगियों में संगीत मस्तिष्क में शांत करने वाले सेंटर को सक्रिय करता है। मधुर संगीत चिड़चिड़ापन दूर करके दिमाग को शांत करने में सहायक है।

3. भावनाओं को नियंत्रित करने की क्षमता– संगीत मानव जाति के पूरे इतिहास में प्रमुख सामाजिक घटनाओं के साथ रहा है। शादी और जन्मदिन जैसे प्रमुख समारोहों को आमतौर पर एक परिचित धुन से पहचाना जाता है। इस बात के प्रमाण हैं कि मस्तिष्क के भीतर भावनात्मक प्रतिक्रियाओं में संगीत की एक बड़ी भूमिका है। किसी व्यक्ति की भावनात्मक स्थिति दैनिक अनुभूति और व्यवहार को सीधे प्रभावित कर सकती है। अध्ययनों से पता चला है कि संगीत में सकारात्मक और नकारात्मक दोनों तरह की भावनाओं को नियंत्रित करने की क्षमता होती है। एक अध्ययन संगीत की दो शैलियों का उपयोग करके आक्रामकता पर संगीत के प्रभाव की डिग्री निर्धारित करने के लिए आयोजित किया गया था, आराम योग संगीत बनाम आक्रामक रैप संगीत। यह उम्मीद की गई थी कि जो लोग योग संगीत सुनते हैं वे कम आक्रामकता दिखलायेंगे जबकि रैप संगीत सुनने वालों में अधिक आक्रमकता होगी। परिणाम हमारी पूर्वकल्पना से सम्बन्धित पाए गए, जिसने यह प्रदर्शित किया कि आक्रामक रैप संगीत के स्रोताओं ने मौखिक आक्रामकता के आयाम में काफी अधिक अंक प्राप्त किये। इन निष्कर्षों से पता चलता है कि आक्रामक संगीत स्रोताओं को अन्य प्रकार के संगीत की तुलना में भावनात्मक रूप से अधिक आक्रामक बनाता है।

एलेक्सिथिमिया एक चिकित्सकीय रूप से प्रासंगिक व्यक्तित्व विशेषता है जो किसी भी भावनाओं को पहचानने और मौखिक रूप से बताने में कमी को दर्शाती है। यह विकृति व्यक्तित्व

निर्माण भावनाओं में संज्ञानात्मक प्रसंस्करण में कमी को संदर्भित करती है। दूसरे शब्दों में एलेक्सिथिमिया में व्यक्ति को अपने खुद के संवेगों को व्यक्त करने में तथा दूसरों के संवेगों को समझने में कठिनाई का अनुभव होता है। कुछ अध्ययन इस बात को प्रमाणित करते हैं कि संगीत के माध्यम से इस तरह के मानसिक विकारों के लक्षणों में कमी लाई जा सकती है। ब्लड एवं जातारे (2001) द्वारा एक पीईटी स्कैन अध्ययन में, रीडिंग ने संकेत दिया कि संगीत उसी तंत्रिका प्रक्रियाओं को ट्रिगर करता है जो मस्तिष्क की उत्साह की भावनाओं को उत्पन्न करने की क्षमता को नियंत्रित करते हैं। मस्तिष्क संगीत की श्रवण जानकारी को तंत्रिका घटकों की उत्तेजना में परिवर्तित करने में सक्षम है जो आमतौर पर भावना, ध्यान और उत्साह की भावनाओं से जुड़े होते हैं।

4. सात्विक आनन्द की अनुभूति– जन्म के समय से लेकर अंत समय तक रामधुन सब संगीत है। सुरों में ही आदि और अंत छिपा है। संगीत से सजा–ए–जिंदगी संवरती है। मौसिकी से सुकून मिलता है। इससे दिमागी आनन्द जुड़ा है। प्रख्यात तबला वादन पंडित रविनाथ मिश्रा का कहना है कि वाद्य यंत्रों से निकले सुर सात्विक आनन्द देते हैं। वाद्य यंत्र और तमाम राग व ताल को सीखना और सिखाना तार्किक क्षमता में इजाफा करते हैं। संगीत संतोष प्रदान करता है। संतुष्टि और आनन्द संगीत में निहित मूल स्वभाव है। रस प्रधान बोलों से दिमागी सुकून मिलता है। बेतालापन जीवन में कष्टकारी होता है। लिहाजा जो भी करें लयबद्ध रहें। वर्ष 2012 में यूके के बूनेल विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने ईईजी (Electroencephalogram) की मदद से ब्रेनवेव में होने वाले बदलावों पर शोध किया, जिसमें संगीत के साथ व्यायामक रने या बिना किसी संगीत के व्यायाम करते हुए मस्तिष्क तरंगों में होने वाले बदलावों पर अध्ययन किया गया था। इस अध्ययन के नतीजों में विशेषज्ञों ने पाया कि संगीत से मस्तिष्क की विद्युतीय तरंगों में बदलाव आया था, जिससे व्यायाम में आनन्द की अनुभूति का स्तर 28 फीसदी बढ़ गया था। वहीं बिना संगीत के खुले वातावरण में व्यायाम करने वालों में आनन्द का स्तर 13 फीसदी बढ़ा हुआ पाया गया था। अध्ययन के निष्कर्षों में शोधकर्ताओं ने संगीत को प्रदर्शन सुधारने वाली दवा, थकान मिटाने और सकारात्मकता का संचार करने के उपाय के रूप में उल्लिखित किया था।

5. अनुशासन, व्यवहार कुशलता और एकाग्रता में वृद्धि– कथक गुरु पंडित अनुज मिश्रा ने कहा कि शास्त्रीय नृत्यों का आध्यात्मिक जुड़ाव है। बिना ईश्वर वंदना के इसकी शुरूआत नहीं है। यह अनुशासन और संस्कारों का संचार करता है। तबले, सारंगी आदि के साथ घुंघरूओं की कदमताल और ताल की पकड़ दिमागी और शारीरिक रूप से चुस्त–दुरुस्त रखती है। एक बार एक बच्चा कथक प्रशिक्षण के लिए आया था। उसके अभिभावक की शिकायत थी कि वह पढ़ाई में मन नहीं लगाता, साथ ही गुस्सा भी तेज रहता है। उस बच्चे को कथन से जोड़ा गया। धीरे–धीरे उसमें अनुशासन के साथ ही व्यवहार कुशलता भी आने लगी। एकाग्रता में भी वृद्धि हुई। वहीं अमेरिकन अकादमी के रिसर्च जनरल में भी संगीत और मस्तिष्क संचालन केन्द्रों के बीच सम्बन्ध को लेकर एक शोध प्रकाशित किया गया था। इस शोध में वरमोंट विश्वविद्यालय के कॉलेज ऑफ मेडिसिन विभाग के बाल मनोरोग विशेषज्ञों की टीम ने बच्चों के मस्तिष्क पर संगीत के प्रभाव को लेकर अध्ययन किया गया था। इस शोध में शोधकर्ता तथा वरमोंट सेंटर फॉर चिल्ड्रन यूथ एंड फेमिलिज के डायरेक्टर और मनोरोग विशेषज्ञ प्रो. जेम्स हुजैक तथा उनके साथी मैथ्यू अलबाग और रिसर्च असिस्टेन्ट एलिन क्रेहन ने पाया था कि संगीत का वाद्य यंत्र बजाने से मस्तिष्क विकास पर घर प्रभाव पड़ता है। शोध में 6 से 12 साल के 332 बच्चों के मस्तिष्क को स्कैन किया गया था। अध्ययन में बच्चों के मस्तिष्क के कोर्टेक्स पर संगीत के प्रभाव का आँकलन किया, जिसमें पाया गया कि संगीत वादन मस्तिष्क संचालन केन्द्रों को सक्रिय कर देता है जिसमें मस्तिष्क के इन भागों में परिवर्तन आ जाता है जो भाग व्यवहार नियंत्रण का कार्य करते हैं।

6. स्पेशल चाइल्ड और दिव्यांगों में जगता है आत्मविश्वास– संगीत स्पेशल किल्ड में आत्मविश्वास जगाने में सहायक होता है। यह चीजों को याद रखने में सक्षम बनाता है। स्पेशल चाइल्ड सामान्य बच्चों की तुलना में चीजों को अलग तरीके से समझते हैं। मधुर संगीत बच्चों को भावात्मक रूप से

शान्त करने में मदद करता है। भावना व्यक्त करने में सहायक होता है। यह दिव्यंक बच्चों को भी मुख्य धारा में लौटाने में सहायक है खासकर नृत्य में हाथ–आँख–पैरों संग मांसपेशियों का समन्वय आत्मविश्वास जगाता है। 38 वर्षों से संगीत शिक्षण में कार्यरत आभा सक्सेना ने एक स्पेशल चाइल्ड के स्कूल में संगीत शिक्षिका के तौर पर काम किया। संगीत के जरिये बच्चों के मानसिक विकास और माहौल परिवर्तन के बेहतर परिणाम मिले। आभा सक्सेना ने बताया कि कुछ बच्चे ऐसे थे जिनका जन्म से ही मानसिक विकास बाधित था। एक बच्ची जो बोल भी नहीं पाती थी। उसे दो महीने वहाँ नृत्य और गाने का प्रशिक्षण कराया। दो महीने के पश्चात् वह बच्ची गीत गाने लगी थी, साथ ही अन्य बच्चों ने शारीरिक अंगों के बीच का समन्वय सीख लिया था। संगीत आत्म–अभिव्यक्ति, संचार और बातचीत का एक साधन प्रदान करता है। ऑटिज्म से पीड़ित बच्चों द्वारा अधिक आसानी से आत्मसात किया जा सकता है। ऑटिज्म स्पेक्ट्रम डिसआर्डर एक न्यूरोडेवलपमेंट डिसऑर्डर (ASD) है जिसमें गंभीरता की एक विस्तृत श्रृंखला होती है। जिसमें सामाजिक, संचार, संज्ञानात्मक और व्यवहारिक कौशलों की कमी के लक्षण हल्के से गंभीर स्तर के रूप में शामिल होते हैं। यह सामाजिक कार्यप्रणाली विकार अमेरिका में पैदा हुए 68 बच्चों में से 1 में पाया या। सन् 2000 के बाद से ASD का प्रसार डर दोगुना हो गया। एएसडी बायं गोलार्द्ध की जिम्मेदारी से जुड़ा हुआ है जैसे संयुक्त ध्यान में कमी, सामाजिक संकेतों को समझने में असमर्थता, अपर्याप्त भाषाई ज्ञान और सार्थक सम्बन्ध बनाने में कठिनाई। अलोंग विश्वविद्यालय में संगीत चिकित्सा के एक प्रोफेसर कहते हैं कि ''संगीत चिकित्सा को संचार की सुविधा के लिए एक प्रभावी उपचार के रूप में अनुशंसित किया गया है क्योंकि संगीत एक ऐसा माध्यम है जिसमें अभिव्यंजन गुणों, गतिशील रूप और संवाद की एक जटिल श्रृंखला शामिल है जो एक साधन के रूप में बातचीत और सफल सम्बन्धों को प्राप्त करने में मदद करता है।''

7. बेहतर नींद लेने में मददगार– द जर्नल ऑफ पेरिएनेस्थेसिया नर्सिंग में प्रकाशित एक शोध में यह दावा किया गया है कि संगीत चिकित्सा, नींद न आने पर नींद की गोलियों सा असर दिला सकती है, शोध में विशेषज्ञ बताते हैं कि बच्चों से लेकर व्यस्कों तक अनिद्रा जैसी नींद की गुणवत्ता बेहतर करने में संगीत काफी सुधार कर सकता है। एक अन्य शोध में पेन्सिलवेनिया के एक विश्वविद्यालय के विशेषज्ञों ने पाया कि जो लोग 7 दिनों के लिए केवल 4.5 घंटों की नींद सोते थे, वह सामान्य तौर पर मानसिक रूप से अधिक थका हुआ, तनावग्रस्त, उदास और ज्यादा गुस्से का अनुभव करते थे। अगर आप भी अनिद्र की समस्या से जूझ रहे हैं तो सोते समय सुखदायक संगीत सुनना शुरू कर दीजिए। एक सुखद नींद से पहले 30–45 मिनट का संगीत सुनने की आदत अवश्य डालें। रॉक या रेट्रो म्यूजिक से रात को दूर रहें, नही ंतो परिणाम विपरीत आ सकते हैं। सोने से कुछ समय पहले शास्त्रीय संगीत को सुने, क्योंकि शास्त्रीय संगीत सिम्पेथैटिक तंत्रिका तंत्र की गतिविधि को कम करके चिंता को घटाता है। मांसपेशियों को आराम देता है और उन विचारों की व्याकुलता को दूर करता है, जो आपके सोने में बाधक है। चिकित्सा के इसी महत्व को देखते हुए कई अस्पतालों में कोरोना के मरीजों की म्यूजिक काउंसलिंग भी की जा रही है। दिल्ली, राजकोट, प्रयागराज, बी.एच.यू. में स्थित पंडित राजन मिश्र कोविड अस्पताल आदि की जगहों पर कोविड केयर सेंटरों में आईसीयू से लेकर जनरल कोविड वार्ड में भी रोगियों को स्नक्रम से उबरने के लिए म्यूजिक थेरेपी का प्रयोग किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त ऐसे मरीज जो ए सिंप्टोमेटिक है या सेल्फ आइसोलेशन में है उनके लिए भी संगीत सुनना–गुनगुनाता उपयोगी है।

निष्कर्ष

अध्ययन के मानसिक स्वास्थ्य पर संगीत तथा संगीत चिकित्सा दोनों के सकारात्मक प्रभाव के बारे में जानकारी प्रदान की है। यह शोध पत्र हाल के अध्ययनों को सारांशित करता है और इन स्थितियों में एक प्रभावी हस्तक्षेप के रूप में संगीत के पक्ष में साक्ष्य की समग्र शक्ति का निर्धारण करने के लिए प्रारम्भिक साहित्य की समीक्षा करता है। उपरोक्त बिन्दु जिनके नतीजे साबित करते हैं कि चाहे बच्चे हो या बड़े, संगीत मानसिक समस्याओं से राहत दिलाने में काफी मददगार हो सकता है। देश–विदेश में किये गये कई शोध इस बात की पुष्टि करते हैं कि संगीत आपके मानसिक स्वास्थ्य के

लिए बेहतर लाभकारी साबित हो सकता है, संगीत तथा संगीत चिकित्सा के मानसिक अवसाद, पी.टी. एस.डी. और सिजोफ्रेनिया जैसे कई मानसिक विकारों में राहत पहुँचाता है। मनोचिकित्सा के अतिरिक्त संगीत व्यक्ति की मनोस्थिति को ठीक करके जीवन की गुणवत्ता में भी सुधार करता है। संगीत नकारात्मक विचारों को साफ करके नई सकारात्मक ऊर्जा द्वारा उमंग के साथ जीवन जीने के लिए प्रेरित करता है। संगीत मनोचिकित्सा आज क्रोध, ईर्ष्या, शोक आदि संज्ञानात्मक संवेगों को परिवर्तित करता है। संगीत द्वारा जीवन जीने की इच्छा बढ़ जाती है। संगीत यानि गीत का संग, रोजाना 20–30 मिनट संगीत का संग देने से किसी भी शख्स का अकेलापन, चिंता व तनाव भी दूर होता है। उपरोक्त शोध की समीक्षा करते हुए हम यह उम्मीद जता सकते हैं कि शायद भविष्य में रोगी की भावनात्मक प्रतिक्रियाओं को विनियमित करने और सुधारने के लिए दवा का सहारा लेने की जगह संगीत को एक साधन के रूप में उपयोग करना संभव होगा।

सन्दर्भ :

- 'मानसिक स्वास्थ्य के लिए बेहद फायदेमंद है म्यूजिक, तनाव होता है दूर' (2020), अमर उजाला न्यूज हिन्दी।
- 'संगीत सुनने से दिमाग पर होता है ऐसा असर' (2018) आज तक हिंदी न्यूज।
- 'मानसिक रोगों से करेगी बचाव म्यूजिक थेरेपी, ब्लड प्रेशर भी रहेगा कंट्रोल' (2021) हिन्दुस्तान हिंदी न्यूज।
- 'संगीत का स्वास्थ्य से गहरा सम्बन्ध, सवंमित मरीजों को मलता है आत्मबल (2021) भदैनी मिरर हिन्दी साप्ताहिक समाचार पत्र।
- विश्व मानसिक स्वास्थ्य दिवस : संगीत से संवरती है साज–ए–जिन्दगी (2018) जागरण हिंदी न्यूज।
- मानसिक स्वास्थ्य के लिए फायदेमंद है संगीत चिकित्सा (2021) ईटीवी भारत हिंदी न्यूज।
- कोविड–19 : लॉकडाउन में बढ़ गया है तनाव तो संगीत की मदद से ऐसे करे दूर (2020) हिन्दुस्तान हिंदी न्यूज।
- मानसिक स्वास्थ्य के लिए बेहतरीन है संगीत, जाने लक्षण, कारण और उपचार (2022) न्यूज टेक।

***

सूर के काव्य में अभिव्यक्त प्रेम का स्वरूप

सुनील गुप्ता *

प्रेम मानव जीवन के लिए अत्यंत आवश्यक है। इसके बिना मनुष्य का जीवन निरर्थक होता है। इसीलिए साहित्य जगत में प्रेम का निरूपण अधिकांश कवियों और लेखकों ने किया है। सूरदास भी इससे अछूते नहीं है। सूरदास का पूरा काव्य प्रेम पर ही आधारित है। उनके प्रेम का क्षेत्र बहुत व्यापक है। उसे किसी सीमा में आबद्ध नहीं कर सकते हैं। उनके काव्य में प्रेम का प्रसार मानव–जीवन से लेकर प्रकृति और ईश्वर तक है। लेकिन उनके काव्य में मानवीय प्रेम की व्यापकता और विविधता है। यही मानवीय प्रेम ईश्वरीय प्रेम या भक्ति रूप में भी व्यक्त हुआ है। यह प्रेम उनकी काव्यानुभूति, जीवनानुभूति और भक्ति का मुख्य तत्व है। सूर ने प्रेमानुभूति का वर्णन स्वकीया भाव से किया है। परकीया भाव का वर्णन इनके काव्य में बहुत कम मिलता है। सूर के मानवीय प्रेम में वात्सल्य, सख्य और दाम्पत्य के विविध पक्षों की पूर्ण अभिव्यक्ति 'सूरसागर' में हुई है। उनके काव्य में मानवीय प्रेम के आलंबन श्री कृष्ण हैं, इसलिए यह प्रेम चिन्मुख और दिव्य है। प्रेम के लौकिक और पारमार्थिक स्वरूप का जैसा सुंदर समन्वय 'सूरसागर' में हुआ है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। 'सूरसागर' में प्रेम के मानवीय पक्ष को अभियक्ति मिली है, किन्तु कहीं भी उसका आध्यात्मिक पक्ष तिरोहित नहीं है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है– "लीलागान में सूरदास का प्रिय विषय था प्रेम। माता का प्रेम, पुत्र का प्रेम, गोपियों का प्रेम, प्रिय और प्रिया का प्रेम, पति और पत्नी का प्रेम, इन बातों से ही सूरसागर भरा है"।[1]

प्रेम में आत्मदान और अपनत्व के सहारे जिस आत्मविभोर की अवस्था प्राप्त होती है, उसकी पराकाष्ठा वात्सल्य में प्रकट होती है। बालक का माता–पिता के प्रति स्नेह और माता–पिता का बालक के प्रति स्नेह दांपत्य जीवन का जीवन रस बन जाता है। वात्सल्य प्रेम की ऐसी अवस्था है जिसमें निःस्वार्थ, कामनारहित स्नेह का प्रकाश होता है। वात्सल्य में सौंदर्यानुभव का तत्व होता है किन्तु उसमें पालन और मनोरंजन की प्रवृत्ति ही प्रमुख होती है। वात्सल्य का क्षेत्र सेवा, त्याग और आत्मविसर्जन का क्षेत्र है। यहाँ प्रेम में प्रतिदिन की चिंता नहीं रहती। वात्सल्य का भाव प्राणी मात्र में होता है। जिसने अपने भाव जगत को इतना विस्तृत कर लिया है कि उसमें सारा विश्व समाहित हो जाए, उसकी विश्व के कण–कण से आत्मीयता स्थापित हो जाती है।

सूर का वात्सल्य प्रेम श्री कृष्ण के जन्म की आनंद बधाई से ही शुरू हो जाता है। बाल्य प्रेम का जितना विस्तृत एवं विशद रूप इन्होंने प्रस्तुत किया है उतना अन्य कवियों ने नहीं किया। शैशव से यौवनावस्था तक के न जाने कितने चित्र सूर के यहाँ उपलबद्ध हैं। प्रारम्भ में सूर ने बालक कृष्ण के सहज सौन्दर्य का वर्णन किया है, क्योंकि सर्वप्रथम तो माता–पिता के लिए बालक का अस्तित्व ही सुखद है। माता यशोदा और पिता नन्द कृष्ण के नैसर्गिक सौन्दर्य पर मुग्ध हैं। पालने में सोते समय या करवट बदलते समय सदा उनके रूप–रस का पान करते हुए अघाते नहीं हैं। सूरदास बालक कृष्ण के प्रथम सौंदर्य का वर्णन इस प्रकार करते हैं–

ललन हौं या छबि ऊपर वारी।
गोपाल लागौ इन नैननि रोग बलाइ तुम्हारी।
लट लटकनि मोहन मसि बिंदुका तिलक भाल सुखकारी।
मनौ कमल दल सावक पेखत उड़त मधुप छबि न्यारी।
लोचन ललित कपोलनि काजर छबि उपजति अधिकारी।
सुख में सुख औरे रुचि बाढ़ति हँसत देत किलकारी।
बिकसित ज्योति अधर बिच मानौ बिधु में बिज्जु उज्यारी।
सुंदरता को पार न पावति रूप देखि महतारी।।[2] (पद सं. 79)

---

* असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी, केन ग्रोवर्स नेहरू पीजी कॉलेज, गोला गोकर्णनाथ, लखीमपुर खीरी, उत्तर प्रदेश

बालक कृष्ण की क्रीड़ा और मनमोहक चेष्टाओं का जो मर्मस्पर्शी चित्रण सूर ने किया है, उससे उनकी सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति एवं बाल स्वभाव की सच्ची पहचान का प्रमाण मिलता है। बालक के खेलने, शारीरिक चंचलता और उसकी मुद्राओं से बना मोहक रूप माता–पिता के आनंद को और भी बढ़ा देता है। कृष्ण का धीरे–धीरे बड़े होकर आँगन में घुटनों के बल चलना, अपने प्रतिबिंब को देखकर हँसना और किलकारी मारने की भंगिमा उनके रूप सौंदर्य को द्विगुणित कर रही है–

किलकत कान्ह घुटुरुवनि आवत।
मनिमय कनक नन्द कैं आँगन बिम्ब पकरिबैं धावत।
कबहुं निरखि हरि आपु छांह कों कर सों पकरन चाहत।
किलकि हँसत राजत द्वै दतियां पुनि पुनि तिहिं अवगाहत।
कनक भूमि पर कर पग छाया यह उपमा इक साजति।[3] (पद सं. 98)

सूर के वात्सल्य प्रेम में बालक कृष्ण के बाह्य रूपों और चेष्टाओं का ही विस्तृत और सूक्ष्म वर्णन नहीं है अपितु कवि ने उनकी अन्तःप्रकृति में भी प्रवेश किया है। स्पर्धा–भाव जो बालकों में स्वाभाविक होता है, सूर ने उसका चित्रण बड़े ही सहज ढंग से किया है–

मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी?
किती बार मोहिं दूध पियत भई यह अजहूं है छोटी।
तू जो कहति बल की बेनी ज्यों ह्वैहै लांबी मोटी।[4] (पद सं. 152)

घर का चहेता लड़का साथियों के मध्य अपने विशेष अधिकार की अपेक्षा करता है। इसीलिए बालक कृष्ण खेल में हार जाने पर भी जीतने का हठ करते हैं। दूसरे बालक इससे नाराज हो जाते हैं। हार–जीत के खेल में बालकों के 'क्षोभ' के स्वाभाविक चित्र सूरदास ने खींचे हैं–

खेलत में को काको गुसैयां।
हरि हारे जीते श्रीदामा बरबस हीं कत करत रिसैयां।
जाति पांति हमतें बड़ नाहीं नाहीं बसत तुम्हारी छैयां।
अति अधिकार जनाबत यातें जातें अधिक तुम्हारें गैयां।[5] (पद सं. 214)

बाललीला के आगे फिर उस गोपाचरण का मनोरम दृश्य सामने आता है जो मनुष्य जाति की अत्यंत प्राचीन वृत्ति होने के कारण अनेक देशों में काव्य का प्रिय विषय रहा है। सूरदास ने यमुना के कछरों के बीच गो–चरण के बड़े सुंदर दृश्यों का विधान किया है–

मैया री मोहिं दाऊ टेरत।
मोकों बन फल तोरि देत हैं आपुन गैयन घेरत।।[6] (पद सं. 385)

वात्सल्य का स्नेह ही उस सुख का कारण है जो देवताओं और मुनियों को भी दुर्लभ है। सूरदास संयोग वात्सल्य में पुत्रवती जननी के स्नेह स्निग्ध हृदय के समस्त भाव–संसार की अभिव्यक्ति करते हैं।

सूरदास वात्सल्य के संयोग पक्ष को दिखाते हुए वियोग पक्ष का भी बड़ा आकर्षक चित्रण करते हैं। वियोग वात्सल्य में करुणामयी, त्यागमयी माता का वात्सल्य–विह्वल हृदय अभिव्यक्त हुआ है। कृष्ण के मथुरा जाने के बाद माता यशोदा के भाव विह्वल हृदय का सौंदर्य दिखाई पड़ता है। कृष्ण के मथुरा जाने की सूचना से यशोदा का चित्त विह्वल हो उठा। कृष्ण यशोदा के एकमात्र धन हैं, उन्हें वह बार–बार देखकर प्रसन्न होती हैं। कृष्ण से एक पल का भी वियोग असह्य है। सम्पूर्ण ब्रज में कोई भी ऐसा हितैषी उन्हें नहीं दिखाई पड़ता जो कृष्ण को मथुरा जाने से रोक ले। यशोदा का दैन्य और दुख व्यक्त नहीं किया जा सकता है–

छाँड़ि सनेह चले मथुरा, कत दौरि न चीर गह्यो।
फाटि न गई ब्रज की छाती, कत यह सूल सह्यो।।[7]

यशोदा कृष्ण वियोग न सह पाने पर नन्द से ब्रज छोड़कर मथुरा जाने को कहती हैं–

नन्द ब्रज लीजै ठोंकि बजाय।
देहु विदा मिलि जाहु मधुपुरी जहाँ गोकुल के राय।[8]

सूर के वात्सल्य प्रेम में उनकी व्यापक मानवीय संवेदना, मानव–जीवन के मार्मिक रूपों तथा भावों से गहरी सहानुभूति और जीवन के राग पक्ष से उसके लगाव कि अभिव्यक्ति हुई है।

मानवीय प्रेम के अंतर्गत गोपी–कृष्णप्रेम का अपना अलग महत्व है। गोपी–कृष्ण प्रेम के स्वाभाविक विकास क्रम को सूरदास ने अत्यंत सतर्कता से चित्रित किया है। ऐसे प्रेम की एक अन्य विशेषता है, इसका व्यापक प्रसार, जिसमें प्रेम के लौकिक और दिव्य दोनों रूपों का समावेश हो जाता है। कृष्ण की सम्पूर्ण लीला का प्रेरक तत्त्व है उनका अलौकिक सौन्दर्य। कृष्ण का मोहक सौन्दर्य गोपियों के आकर्षण का मूल प्रेरक तत्त्व है और इस आकर्षण से ही कृष्ण में गोपियों की आसक्ति बढ़ती है। सौन्दर्य ही गोपी–कृष्ण प्रेमलीला की मूल शक्ति है। कृष्ण की सौंदर्यता से प्रभावित एक गोपी अपनी सखी से कहती है–

हरिमुख निरखत नैन भुलाने।
ये मधुकर रुचि पंकज लोभी ताही ते न उड़ाने।
कुंडल मकर कपोलनि के ढिँग जनु रबि रैनि बिहाने।
भ्रुव सुंदर नैननि गति निरखत खंजन मीन लजाने।
तिलक ललाट कंठ मुकुताबलि भूषन मनिमय साने।
सूर स्याम रसनिधि नागर के क्यों गुन जात बखाने।[9] (पद सं. 1229)

ब्रज की सम्पूर्ण गोपी–कृष्ण प्रेमलीला का आधार कृष्ण की रूप–माधुरी और वेणु–माधुरी में स्थित है। इस लीला में मुरली सक्रिय सहयोग देती है। रूप और नाद के सहारे ही उल्लास और आह्लाद से भरपूर प्रेम संगीत की धारा प्रवाहित हुई है। प्रेम के पथ में बुद्धि बाधक ही है। भावात्मक सम्बन्धों में बुद्धि के प्रवेश से विकृति उत्पन्न हो जाती है। प्रेम में पूर्ण आत्मसमर्पण जरूरी है, आत्मविभोर की अवस्था इच्छित है। गोपियों के मन को इस अवस्था में लाने का कार्य मुरली द्वारा होता है। मुरली के मुखरित होते ही बुद्धि, मर्यादा, चिंता और लोक–लाज आदि प्रेम के बाधक तत्त्व तिरोहित हो जाते हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं– "गोकुल में कृष्ण की प्रेमलीला अनेक धाराओं में प्रवाहित हुई दिखती है, किन्तु उसमें मुख्य धारा राधा–कृष्ण प्रेम की है, जिसमें प्रेम की सभी धाराएँ समाहित हो जाती हैं। यदि विद्यापति और सूरदास की तुलना की जाय तो, विद्यापति की राधा विलास–कलामयी है, किशोरी है। यौवन का ईषद उद्‌भेद हुआ है, रूप लावण्य की दीप्ति से दीप्त है। वयःसंधि की अवस्था है, शैशव और यौवन दोनों मिल गए हैं, आँखों ने कान का रास्ता ले लिया है, वचन में चतुरता आ गई है, हंसी की रेखा अधरों पर खेलने लगी है, पृथ्वी पर आसमान का चाँद प्रकाशित हो उठा है"–

शैशव यौवन दुहुँ मिलि गेल, श्रवनक पथ दुहुँ लोचन लेल।
वचनक चातुरी लहु–लहु हास, धरनीए चाँद करत प्रकाश।

इतना ही नहीं अपितु–

जाहाँ जाहाँ पदयुग धरइ, ताहीं ताहीं सरोरुह भरइ।
जाहाँ जाहाँ झलकट अंग, ताहीं ताहीं बिजुरी तरंग।[10]

सूरदास की राधा केवल विलासिनी नहीं है। कृष्ण के साथ उनका केवल युवाकाल का संबंध नहीं है, वे परकीया नायिका भी नहीं है। बचपन से ही वे कृष्ण के साथ क्रीड़ा में भाग ले चुकी हैं, घंटों अपने घर न जाकर नंद बाबा के घर में आँख मिचौनी खेलकर समय काट चुकी हैं। पहले ही दिन जब बालक कृष्ण खेलने के लिए ब्रज की गलियों में निकलते हैं, इस अल्पवयस्का सखी को देखकर रीझ जाते हैं, नैन नैनों से मिल जाते हैं, ठगौरी पड़ जाती है– यह स्वर्गीय प्रेम है, वासना से रहित, निर्मल, विशुद्ध–

खेलत हरि निकसे ब्रज खोरी।
गए श्याम रबि तनया कें तट अंग लसति चन्दन की खोरी।
औचक ही देखी तहँ राधा नैन बिसाल भाल दिए रोरी।।
सूर श्याम देखत ही रीझे नैन नैन मिलि परी ठगोरी।।[11] (पद सं. 454)

सामंती परिवेश को देखते हुए प्रेम के मनोविज्ञान में जैसी प्रणय विषयक धारणाएँ बन सकीं उन सब का चित्रण सूर ने अपने काव्य में किया है।

मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं– "कृष्ण और गोपियों का प्रेम सौंदयानुभूति, साहचर्य और संयोग में पला और विकसित हुआ है। गोपियाँ प्रतिदिन कृष्ण के लुभावने रूप–रस का पान करती है, उनका मन कृष्ण में अनुरक्त है। गोपियाँ कृष्ण से मिलन की कामना ही नहीं करती, उसके लिए प्रयास भी करती हैं। वे प्रेम–विवश हैं, उनका मन कृष्णमय है, हृदय में हर्ष, अंगों में पुलक और उत्फुल्लता है। गोपियों में श्रेष्ठ राधा के मोहक सौन्दर्य की ओर कृष्ण भी आकृष्ट हैं और राधा–कृष्ण दोनों में मिलन की आतुरता है। राधा का मन विशेष व्याकुल है, उनका हृदय भावनाओं के अन्तःसंघर्ष से बेचौन है। एक ओर संयोग की प्रबल आकांक्षा और दूसरी ओर संकोच, लज्जा तथा माता–पिता का भय है।"[12] राधा की इस मनःस्थिति का चित्रण सूर ने प्रभावशाली ढंग से किया है–

नागरि मन गई अरुझाइ।
अति बिरह तनु भई व्याकुल घर न नेंकु सुहाइ।
चित चंचल कुँवरि राधा खान पान भुलाइ।
कबहुँ बिहंसति कबहुँ बिलपति सकुचि रहति लजाइ।
मातु पितु को त्रास मानति मन बिना भई बाइ।[13] (पद सं. 459)

प्रिय के प्रवास से प्रिया के हृदय में वेदना का उद्‌भव स्वाभाविक है। कृष्ण के मथुरा चले जाने पर वियोग उपस्थित हो गया। गोपियों को जब पता चलता है कि कृष्ण हमें छोड़कर मथुरा जा रहे हैं तो वे व्याकुल हो उठती हैं। वेदना विकल मन की दैन्य अवस्था अत्यंत कारुणिक है। गोपियाँ कृष्ण दर्शन की प्राप्ति के लिए आतुर हैं क्योंकि पुनर्मिलन की आशा क्षीण होती है। जो गोपियाँ कृष्ण के प्रेम में गर्वीली और मदमाती थीं, वे अब अत्यंत दीन–हीन दिखाई दे रही हैं। सूरदास ने एक पद में गोपियों की वेदना को चित्रित किया है–

पिय बिनु नागनि कारी रात।
जौ कहुं जामिनि उवति जुन्हैया डसि उलटी ह्वै जात।
जंत्र न फुरत मंत्र नहिं लागत प्रीति सिरानी जात।
सूर स्याम बिनु बिकल बिरहिनी मुरि मुरि लहरैं खात।[14] (पद सं. 2943)

सूरदास के काव्य में मानवीय प्रेम और उसके आध्यात्मिक रूप के अलावा प्रकृति प्रेम के भी दर्शन होते हैं। कृष्ण की सम्पूर्ण लीला प्रकृति की गोद में जमुना के किनारे, कदंब तले, करील के कुंजों मे और वृन्दावन के वनों में सम्पन्न हुई है। कृष्ण लीला में प्रकृति सर्वत्र एक सजीव सहयोगी तत्त्व के रूप में कार्य करती हुई दिखाई पड़ती है। इसके अतिरिक्त प्रकृति के कण–कण में उस ईश्वर की छाया विद्यमान है जिसके प्रेम में सूरदास की आत्मा निमग्न है। इसलिए समस्त प्रकृति कृष्णमय होने के कारण प्रेम का आलंबन है। प्रकृति प्रेम में सौन्दर्य की अनुभूति और साहचर्य के कारण प्रेम की प्रतिष्ठा हुई है। 'सूरसागर' में वृन्दावन के प्राकृतिक सौन्दर्य के मोहक चित्र हैं। वहाँ की प्रकृति श्री का सानिध्य पाकर यह आभास होता है मानो प्रकृति रूपी नायिका अपनी समस्त सुषमा सहित वृन्दावन के चरणों में समर्पित हो गई है। यही कारण है कि ब्रह्मा तक उसके सौन्दर्य को देखकर हतप्रभ हो जाते हैं। यहाँ स्वच्छ जलयुक्त सरोवर जिनमें कमल शोभायमान हैं, शीतल, मंद और सुगंधित हवा के साथ–साथ यमुना बह रही है। पुष्प, लता, द्रुम तथा रमणीय कदंब अपनी छाया से लोगों को शीतलता प्रदान कर रहे हैं। ऐसे वातावरण में ग्वाल बालों के मध्य कृष्ण के उपस्थित होने से यह शोभा और भी मोहक हो गई है–

यह मुन ब्रह्मा चले, तुरत वृन्दावन आए।
देखि सरोवर सजल कमल, तिहिं मध्य सुहाए।
परम सुभग जमुना बहै, तहँ बहै त्रिविध समीर।
पुहुप लता द्रुम देखि के, थकित भए मति धीर।
अति रमनीक कदंब छांह रुचि परम सुहाइ।

राजत मोहन मध्य अवलि बालक छवि पाई।[15]

बसंत ऋतु में अपने प्रियतम कृष्ण से मिलने का संदेश पाकर गोपियाँ प्रसन्न हो उठती हैं। ऐसा प्रतीत होता है जैसे उनकी प्रसन्नता में योग देने के लिए बसंत ऋतु भी फूल उठी है। पेड़–पौधों में नयी कोपलें और पत्ते निकल आते हैं, मानो प्रकृति अपने पूरे रूप श्रृंगार के साथ उसके स्वागतार्थ स्वयं को प्रस्तुत करती है–

माधव आवन हार भए।
रितु बसंत फूली बन वेली, उलटे पात नए।
अपनी–अपनी अवधि जानिकै, सबनि सिंगार ठए।
सूरदास प्रभु मिलौ कृपा करि अवधि आस पुजए।[16]

ब्रजक्षेत्र के जिस सुख को सूरदास ने संसार में अनोखा माना है, उसका आधार वहाँ की प्रकृति का कृष्णमय स्वरूप ही है–

कहाँ सुख ब्रज कों सौ संसार।
कहाँ सुखद बंसीतट जमुना, यह मन सदा विचार।
कहाँ वनधाम कहाँ राधा संग, कहाँ संग ब्रज वाम ।
कहाँ लता तरु तरु प्रति बूझनि कुंज नव धाम।
कहाँ विरह सुख बिन गोपिन संग सूर स्याम मन काम।[17]

इसके अलावा सूरदास ने 'सूरसागर' में प्रकृति सुंदरी के अनेक ऐसे चित्र उपस्थित किए हैं जो गोपियों एवं कृष्ण प्रेम के साक्षी प्रतीत होते हैं। सूर की प्रकृति सुंदरी समस्त सौन्दर्य से परिपूर्ण है। इसलिए सूर का प्रकृति प्रेम अपने आप में अद्वितीय है।

सूर का काव्य प्रेम का काव्य है। उनके प्रेम का क्षेत्र जयदेव और विद्यापति से विस्तृत है। उनके प्रेम के रति भाव में भगवत विषयक रति, वात्सल्य और दाम्पत्य रति ही है। इसलिए उनके प्रेम की उत्पत्ति में रूपलिप्सा और साहचर्य दोनों का योग है। सूर का प्रेम केवल राधा–कृष्ण या गोपिकाओं तक ही सीमित नहीं है अपितु उनका प्रेम माता यशोदा, नन्दबाबा, ग्वाल–बाल, पशु–पक्षियों तथा ब्रज की अदम्य सुंदरी प्रकृति से भी है। उनका प्रेम पावन तथा लोकोत्तर है। इसकी प्रबलता इतनी है कि गोपियाँ समाज की कुल–मर्यादा को त्यागकर अपने प्रियतम से मिलने के लिए निकल पड़ती है।

सन्दर्भ :

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी– हिंदी साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2014 ई., पृ. 95.
2. ब्रजेश्वर वर्मा (संपा.)– सूरसागर, ज्ञानमंडल लिमिटेड, विक्रम भवन, लंका वाराणसी, संस्करण–1988 ई. पृ. 22.
3. वही, पृ. 26
4. वही, पृ. 38
5. वही, पृ. 51
6. वही, पृ. 85
7. आचार्य रामचंद्र शुक्ल (संपा.)– भ्रमरगीत सार, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण–2007, पृ. 34.
8. वही, पृ. 35.
9. ब्रजेश्वर वर्मा (संपा.)– सूरसागर, ज्ञानमंडल लिमिटेड, ब्रिक्रम भवन, लंका वाराणसी, संस्करण–1988 ई. पृ. 241
10. हजारी प्रसाद द्विवेदी– सूर साहित्य, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 75.
11. ब्रजेश्वर वर्मा (संपा.)– सूरसागर, ज्ञानमंडल लिमिटेड, विक्रम भवन, लंका वाराणसी, संस्करण–1988 ई. पृ. 97.

12. मैनेजर पांडेय– भक्ति आंदोलन और सूर का काव्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–1997, पृ. 193.
13. ब्रजेश्वर वर्मा (संपा.)– सूरसागर, ज्ञानमंडल लिमिटेड, विक्रम भवन, लंका वाराणसी, संस्करण–1988 ई. पृ. 98.
14. वही, पृ. 582.
15. सरला शुक्ला : सूर सौन्दर्य, कल्पकार प्रकाशन, लखनऊ, पृ. 106.
16. वही, पृ. 102.
17. वही, पृ. 106.

***

डुग्गर प्रदेश के ऐतिहासिक लोक नृत्य : एक अध्ययन

*अनीता शर्मा**

नृत्य की उत्पत्ति

नृत्य, नृत्य क्या है नृत्य एक प्रकार का सशक्त आवेग हैं। नृत्य कला एक ऐसा आवेग है,जिसे कुशल कलाकारों के द्वारा ऐसी क्रिया में बदल दिया जाता है, जो गहन रूप से अभिव्यक्ति पूर्ण होती है। नृत्य मनुष्य जीवन के दोनों पक्षों–सुख और दुख में नृत्य हदय को व्यक्त करने का अचूक माध्यम है। नृत्य मानवीय अभिव्यक्तियो का एक रसमय प्रदर्शन है।यह एक सरभोम कला है जिसका जन्म मानव जीवन के साथ हुआ है। बालक जन्म लेते ही रोककर अपने हाथ पैर मार कर अपनी भावाभिव्यक्ति करता है कि वह भूखा है– इन्हीं आंगिक–क्रियाओं से नृत्य की उत्पत्ति हुई। यह कला देवी–देवताओं दैत्य दानवो–मनुष्यो एवं पशु पक्षियों को अति प्रिय है। पुराणों में यह दुष्ट नाशक एवं ईश्वर प्राप्ति का साधन मानी गई। अमृत मंथन के पश्चात जब दुष्ट राक्षसों को अमरत्व प्राप्त होने का संकट उत्पन्न हुआ तब भगवान विष्णु ने मोहिनी का रूप धारण कर अपने लास्य नृत्य के द्वारा ही तीनों लोको को राक्षसों से मुक्ति दिलाई थी ।नृत्य भारत की परंपरा और संस्कृति का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है और उनका महत्व हमेशा से रहा है और रहेगा। नृत्य को इतिहास का हिस्सा भी माना जाता है और उनके पीछे की कहानियां कभी–कभी उस समय के बारे में बहुत कुछ बता सकती हैं जिसमें वह विकसित हुए थे। इस शोध में नृत्य की उत्पत्ति,अर्थ,महत्व ,प्रकार एवं डुग्गर लोक नृत्यो का विस्तार में वर्णन किया गया है।

नृत्य अर्थ एवं महत्व

एकता भारतीय संस्कृति की एक विशेष पहचान है। नृत्य मान्यता के सबसे पुराने कलात्मक अभिव्यक्तियों में से एक है और कई संस्कृतियों में इसका प्रतीकात्मक, अनुष्ठान और प्रतिनिधि मूल्य है। संस्कृति एवं धर्म आरंभ से ही मुख्यता नृत्य काल से जुड़े रहे हैं। नृत्य मनोरंजन, सामाजिक,धार्मिक,और कलात्मक कारणों से किया जाता है। पत्थर के समान कठोर व दृढ़ प्रतिज्ञ मानव ह्रदय को मोम जैसे पिघलाने की शक्ति इस कला में है। यही इसका मनोवैज्ञानिक पक्ष है जिसके कारण यह मनोरंजक तो है ही– धर्म –अर्थ– काम –मोक्ष का साधन भी हैं। इस कला को हिंदू देवी–देवताओं का प्रिय माना गया है। नृत्य कला में भगवान शंकर ष्नटराजष्कहलाए और श्री कृष्ण जी ष्नटवरष् कहलाए। वास्तव में नर्तक के अंदर का उल्लास ही नृत्य का जन्मदाता है, नृत्य के लिए किसी प्रकार की शिक्षण व अभ्यास की आवश्यकता नहीं होती। जब मन प्रसन्न होता है वह नाच उठता है। जब हम नृत्य करते हैं तो हम अपने शरीर और पैरों को इस तरह से घुमाते हैं, कि वह सभी ताल का अनुसरण करने लगते हैं। हर राज्य और देश का अपना–अपना नृत्य होता है लेकिन सभी में एक चीज समान होती है और वह है रिदम।भारतीय संस्कृति एवं धर्म के इतिहास में कई ऐसे प्रमाण मिलते हैं कि जिससे सफल कलाओं में नृत्य कला की श्रेष्ठता सर्वमान्य प्रतीत होती है।

नृत्य के प्रकार

नृत्य कई प्रकार के होते हैं। नृत्य के प्रकार अक्सर एक निश्चित शैलियां या संगीत शैली से जुड़े होते हैं। सामान्य तौर पर सभी में संगीत की लय के साथ अभिव्यक्तियो, लचीलापन और आंदोलन के समन्वय जैसी सामान्य विशेषताएं शामिल होती है। भारत के विभिन्न प्रदेशों में आज नृत्य की अनेक शैलियां पाई जाती हैं जैसे उत्तर भारत में कथक नृत्य, दक्षिण भारत का भरतनाट्यम, पंजाब में भांगड़ा और जम्मू में दुगडुग्गर लोक नृत्य आदि।

---

*

डुग्गर लोक नृत्य

जम्मू के लोक नृत्य हिंदू संस्कृति से बहुत प्रभावित हैं क्योंकि इस क्षेत्र में हिंदुओं का अधिक दबदबा है। नृत्यों का उत्तर भारत के लोक नृत्य से गहरा संबंध है। डुग्गर लोक नृत्य नए मौसम,बच्चे के जन्म, शादियों

, त्योहारोंऔरअन्य सामाजिक अवसरों का जश्न

मनाने के लिए किए जाते हैं। जम्मू प्रांत में विभिन्न अवसरों पर कई लोक नृत्य किए जाते हैं। जम्मू क्षेत्र में किए जाने वाले मुख्य लोकनृत्य है– डोगरी लोक नृत्य,कुड़ढ़ नृत्य, छज्जा नृत्य, कौवा नृत्य, जागरण, डोगरी भांगड़ा आदि।

डुग्गर लोक नृत्य का महत्व

डुग्गर लोक नृत्य का अपना एक विशेष महत्व है। नृत्य आमतौर पर ग्रामीण क्षेत्रों में खुशी व्यक्त करने का एक माध्यम होते हैं। लोक नृत्य देश के लोगों के सोचने के तरीके को दर्शाता है। जम्मू क्षेत्र एक कृषि प्रधान क्षेत्र है। यहां अधिकतर लोग खेती से जुड़े हैं इस तरह हमारे देश की जनता का नृत्य इन्हीं के पास है, अर्थात ष्लोक नृत्य ही जनता का नृत्य हैष्। कुछ लोक नृत्यो में पुरुष और महिलाएं अलग–अलग प्रदर्शन करते हैं और कहीं–कहीं एक साथ नृत्य करते हैं। जब लोग एक साथ लोक नृत्य करते हैं तोअपनी भूमिका को बेहतर तरीके से जानते हैं और उसका सम्मान करते हैं। लोक नृत्य लोगों के जीने, सोचने और अपनी अलग शैली में खुद को व्यक्त करने के तरीके को दर्शाता है। वस्तुतः लोक नृत्य हमारे इतिहास का दर्पण है

डुग्गर लोक नृत्यो का संक्षिप्त वर्णन

डुग्गर लोक नृत्यो का संक्षिप्त वर्णन निम्नलिखित प्रकार से है–

कुड़ढ़ नृत्य

डुग्गर के परम्परागत नृत्यों में सार्वधिक लोकप्रिय तथाअभी भी नाचे जाने वाले नृत्यों में कुड़ढ़ का विशिष्ट स्थान है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह अभी तक अनुष्ठान में सम्बद्व है। देवता के निमित्त और मनौती के लिए, पूर्वजों की प्रसन्नता के लिए,व्याह की खुशी में, नई फसल निकालने की खुशी में,ऋतु बदलने पर भी कुड़ढ़ का आयोजन किया जाता है। इसमें सर्वप्रथम कैल वाद्य बजाकर शुरुआत की जाती है। मुख्यतौर पर बांसुरी,ढोल,नगाड़ा आदि वाद्यो का प्रयोग कुड़ढ़ के साथ किया जाता है।

फुम्मनी लोक नृत्य

जम्मू सभाग के मध्यवर्ती प्रदेश में फुम्मनी लोक नाच का विशेष महत्व है। क्योंकि दूसरे शब्दों में यह मध्यवर्ती भाग कण्डी– प्रदेश भी कहलाता है। यह लोक नाच मुख्य रूप से धार्मिक नृत्य है और इसका सीधा संबंध नाग देवताओं से है जिनकी डुग्गर में पूरी श्रद्धा भावना से पूजा अर्चना करते हैं।गुग्गा नवमी के त्योहार पर तथा नागपंचमी के त्यौहार पर गांव के लोग श्गुग्यालश नामक धार्मिक जुलूस निकालते हैं। यह जुलूस देवता को रिझाने के लिए निकाला जाता है। जुलूस में सबसे आगे रंग–बिरंगे झण्डे उठाकर कुछ श्रद्धालु लोग चलते हैं, उनके पीछे कुछ श्रद्धालु वाद्य यंत्र उठाए हुए होते हैं। और फिर सबसे पीछे एक नंगे पांव एक चेले के सिर पर लोक देवता गुग्गा की चौकी होती है।उसके पीछे फुम्मनी लोक नृत्य करते हुए श्रद्धालुओं का झुण्ड होता है।

डोगरी नृत्य

जम्मू में सबसे लोकप्रिय नृत्य डोगरी नृत्य है जिसे आप पंजाबी भांगड़ा या गिद्दा से जोड़ सकते हैं। डोगरी लोक नृत्यकार डोगरी भाषा बोलते हैं। यह लोक नृत्य डोगरी लोक गीतोऔर पाख पर किया जाता है। श्पाख, डोगरी भाषा में गाए जाने वाला एक डोगरी गीत है जहां पुरुष और महिलाओं का एक समूह कान के पास हाथ रखकर बहुत ऊंचे स्वर में गाता है। यह नृत्य जम्मू पोशाक पहनकर एकल और समूहों में किया जा सकता है। इसमें प्रमुख नर्तक गाता है और अन्य उसका अनुसरण करते है। डोगरी लोक नृत्य के प्रमुख वाद्य ढोलकी और चिम्टा है।

भांगड़ा

वैशाख महीने की संक्रांति वाले दिन पंजाब और जम्मू संभाग में स्थान–स्थान पर मेले लगते हैं। उन मेलों में लोग बड़ी उल्लास और खुशियों में भर कर भांगड़ा नृत्य पेश करते हैं। भांगड़ा नृत्य करने वालों की मण्डली मे१४ से२तक नर्तक होते हैं। नृत्य के समय विशेष प्रकार का पहरावा पहनते हैं जिसमें सिर पर पगड़ी,विशेष प्रकार से बनाई गई बास्काट, कुर्ता,विभिन्न रंगों वाला लाचा और बाएं हाथ में बांधने वाला रेशमी का स्कार्फ होता है। भांगड़ा नृत्य करने के लिए ढ़ोल वाले को आमंत्रित किया जाता है। नृत्य के समय सभी नर्तक एक खुले मैदान में गोल चक्र में खड़े हो जाते हैं और ढोल की गड़गड़ाहट भरी थाप
के साथ नाचने लग पड़ते हैं।

जागरण

जागरण नृत्य का भी डुग्गर लोक नृत्य में एक विशेष स्थान है। जागरण जम्मू क्षेत्र का एक लोकप्रिय नृत्य है यह एक प्रकार का विवाह नृत्य है। केवल महिलाओं को ही इस नृत्य को रात को करने की अनुमति है जब दूल्हा वरातियो के साथ दुल्हन के घर जाता है तब महिलाएं पीछे से जागरण का आयोजन करती हैं। आधी रात को पूरे रीति–रिवाज के साथ दूल्हे की मां मांमियां मासिया, चाचियां ष्लस्सी पैरष् का आयोजन करती हैं और नृत्य करती हैं। नृत्य मुख्य रूप से डोलकी पर गीतों के साथ किया जाता है।

हिरण नृत्य

हिरण नृत्य जम्मू का एक लोकप्रिय नृत्य है यह मुख्य रूप से लोहड़ी के त्यौहार के दिन किया जाता है। यह नृत्य डोगरा युवाओं द्वारा किया जाता है। इस नृत्य का प्रदर्शन रात को किया जाता है मुख्य आकर्षक हिरण पोशाक वाला आदमी होता है जो दिलचस्प वेशभूषा वाले पुरुषों से घिरा होता है। यह समूह नृत्य करता हुआ एक गांव से दूसरे गांव जाता है और बड़े हर्षोल्लास के साथ हिरण नृत्य करता है। घर के मालिक खुशी से उन्हें मिठाई और मेवे देते हैं। इस तरह लोहड़ी त्यौहार हिरण नृत्य के साथ मनाया जाता है।

कौवा नृत्य

कौवा नृत्य को जम्मू क्षेत्र में कौवा नृत्य के नाम से जाना जाता है। जम्मू के कार्यक्रमों में कुछ कलाकारों द्वारा ही यह नृत्य किया जाता है। कुशल डोगरा कलाकार इस नृत्य को करते हैं इंस नृत्य के पहनावे में काले रंग की सुथन, कुर्ते पर कौवा नृत्य की अपनी विशेष पोशाक, कालाकोट और पगड़ी पहनकर यह नृत्य करते हैं और कौवा की तरह अपनी गर्दन को ऊपर नीचे हिलाते हैं। वर्तमान समय में यह कौवा नृत्य प्रसिद्ध डोगरा कलाकार रोमालो राम जी द्वारा लोकप्रिय है।

छज्जा नृत्य

लोहरी त्यौहार के दिन जम्मू क्षेत्र में यह छज्जा नृत्य किया जाता है। छज्जा नृत्य बच्चों द्वारा किया जाता है। छज्जा एक त्रिकोणीय आकार का बोर्ड है जिससे रंग–बिरंगे कागजों के साथ सजाया जाता है। लोहड़ी के दिन सुबह–सुबह इस नृत्य को करने के लिए बच्चे घर–घर जाते हैं वे छज्जे के साथ नृत्य करते हैं और वे लोहड़ी गीत गाते हैं।

किक्कलिक

किक्कलिक को दो रंगीन पोशाक वाली लड़कियों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है,जो लोक गीतों के साथ हाथों को क्रॉस करती हैं और एक दूसरे को एक सर्कल में घुमाती है।

डुग्गर लोक नृत्य केवल मनोरंजन का साधन ही नहीं बल्कि हमारे धर्म,देवी–देवताओं,विवाह, विभिन्न अवसरों के साथ जुड़ा हुआ है। पूर्व काल में इसका बहुत अधिक प्रचलन था परंतु वर्तमान पीढ़ी की अरुचि के कारण यह कुछ स्थानों तक ही सीमित रह गया है।

निष्कर्ष – इस षोध कार्य में जम्मू के डुग्गर लोक नृत्य की जानकारी का विस्तृत वर्णन किया है।इन डुग्गर नृत्यों पर गंभीरता से प्रचार करने पर डुग्गर लोक नृत्य के विद्यार्थी एव डुग्गर समाज को निष्चय ही एक नवीन दिषा प्राप्त होगी।

संदर्भ सूची :

1. भारतीय लोक साहित्य कोश– डॉ.सुरेश गौतम
2. संगीत चिन्तामणी – आचार्य बृहस्पति
3. जम्मू कश्मीर का लोक साहित्य– ओम गोस्वामी
4. डुग्गर का लोक साहित्य– प्रोफेसर शिव निर्मोही
5. डुग्गर के मेले व त्यौहार– डॉ.चंपा शर्मा
6. A comprehensive study of Indian folk music and culture, set in 11Volume Manorma Sharma
7. डुग्गर के लोक संगीत– प्रोफेसर शिव निर्मोही
8. भारतीय सुषिर वाद्यों का इतिहास– डॉ. राधेश्याम जयसवाल
9. https:// beingdogra-com

***

संस्कृत साहित्य में शिवाजी की राष्ट्रभक्ति

*परमानन्द कुमार**

शोध–सार :– संस्कृत–साहित्य में अथाह ज्ञान भरा पड़ा है। इसी सन्दर्भ में राष्ट्रीयता से पूर्ण साहित्य भी लिखे गए हैं। राष्ट्रभक्ति से ओत–प्रोत विभिन्न महापुरुषों के जीवनचरित पर आधारित संस्कृतकाव्य की रचना हुई है। भारतवर्ष के इतिहास में शिवाजीमहाराज का नाम भी शूरवीरों में अग्रणी माना जाता है। शिवाजीमहाराज के जीवन चरित पर आधारित विभिन्न भाषाओं में साहित्य सर्जना हुई है। संस्कृत साहित्य में भी शिवाजी के राष्ट्रभक्तिपूर्ण जीवनचरित पर कुछ ग्रन्थ लिखे गए हैं। इस शोध के माध्यम से उन प्रमुख संस्कृत काव्य में शिवाजी की राष्ट्रभक्ति को दिखाने का प्रयत्न किया गया है।

कूट शब्द :– हिन्दवी–स्वराज्य, वीराङ्गना, राष्ट्रभक्त, शिवराजविजय, भारतीयतानुरागिणी, छत्रपतिसाम्राज्यम्, शूराग्रणी, उत्साहसिन्धु, शिवाजीचरितम्, श्रीशिवराज्योदयम्, साङ्गोपाङ्ग, पराकाष्ठा, शिवराजाभिषेकम् सर्वजनवन्द्या, क्षत्रपतिचरितम्, प्ररोचनात्मक छत्रपतिश्रीशिवराजः, सत्सङ्कल्प।

मुख्यांश :–

हिन्दवी स्वराज्य के संस्थापक शिवाजी महाराज का जन्म 19 फरवरी 1630 ई० को पुणे के समीप शिवनेरी किले में हुआ था। शिवाजी के जन्म के समय देश की स्थिति दयनीय थी, हिन्दू समाज की प्रताड़ना व गोवंश का नाश आम बात थी। सुल्तान की नौकरी और गुलामी ने स्वत्व की भावना को समाप्त कर दिया था। माता जीजाबाई एक धर्मपरायण वीराङ्गना थीं। अपने पुत्र शिवाजी को बाल्यावस्था से ही रामायण–महाभारत की वीरगाथा सुनाया करती थीं। शिवाजी के पिताजी शाहजी भोंसले आदिलशाही सत्ता के जागीरदार थे। अतः पिताजी की भी इच्छा थी कि शिवाजी एक वीर राष्ट्रभक्त बने और भारत को मुगलों की दासता से मुक्त करे। दादाजी कोण्डदेव शिवाजी के राजनीतिक गुरु थे। युद्धविद्या, अस्त्र–शस्त्र सञ्चालन आदि अनेक रणकौशल कला को सिखाने वाले दादाजी कोण्डदेव ही थे।

ऐसे प्रखर राष्ट्र–भक्त शिरोमणि शिवाजी महाराज के जीवन चरित पर आधारित अनेकों ग्रन्थों की रचना हुई है। उन ग्रन्थों में शिवाजी महाराज के राष्ट्रभक्तिपूर्ण पराक्रम का वर्णन किया गया है।

शिवराजविजय :–

यह संस्कृत साहित्य का एक अतीव उर्जस्वी एवं ऐतिहासिक उपन्यास है। इसके लेखक पण्डित अम्बिकादत्तव्यास हैं। उन्होंने इस ग्रन्थ को 1888 ई० में लिखा था। इस ऐतिहासिक उपन्यास में कुल 03 विराम हैं और प्रत्येक विराम में 4 निःश्वास हैं। इस प्रकार कुल 12 निःश्वास हैं।

पण्डित व्यास जी ने अपने इस उपन्यास में भारतराष्ट्र और भारतीयता के प्रति जागरूकता का भाव भरने का भरपूर प्रयत्न किया गया है। पण्डित व्यास ने इसके लिए भारत के सुनहरे अतीत की भी चर्चा की है। देशद्रोहियों और यवन आक्रान्ताओं से सम्पीडित देश की दुर्दशा को मूर्त्तरूप देकर आँसू बहाये हैं। भारतवर्ष की प्राकृतिक सम्पदाओं, तीर्थों, देवालयों, व्रतों की चर्चा भी की गई है। आक्रमणशील यवनों द्वारा स्थापित की गई भारतदेश की राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक परतन्त्रता की पीड़ा के प्रति आक्रोश प्रकट किया है। शिवाजी ने युद्ध में जाने के पूर्व अपनी मृत्यु की सम्भावना करके राष्ट्रिय–स्वातन्त्र्य–समराग्नि को प्रज्ज्वलित रखने की दृष्टि से अपने सुयोग्य अधिकारियों का चयन किया है– "निश्चयेनाऽहं युष्मदाशीः संवर्द्धितो विजेष्ये। दैवाद् वीरगतिं गतश्चेद्, भवत्सु कुशलिषु पुनरपि स्वतन्त्रमेव महाराष्ट्र–राज्यम्, पुनरपि प्राप्तशरणों वैदिको धर्मः, पुनरपि च कम्प एव वक्षःसु भारतप्रत्यर्थि–पत्नीनाम्।"[1] महाराज शिवाजी के राज्य में भारत और भारतीयता के प्रति आस्था रखनेवाले यवनों को किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं उठाना पड़ा है। उनका सम्मान किया गया

* शोधार्थी, स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग, विनोबा भावे विश्वविद्यालय, जारीबाग-825301

है। इतना ही नहीं, बल्कि भारतीयतानुरागिणी यवन कन्याओं का भी समादर किया गया है। इस सम्बन्ध में शिवाजी और रसनारी के परस्पर स्नेहपूर्ण आकर्षण का निदर्शन भी किया गया है।

इस ग्रन्थ में भूषण जैसे कवि औरंगजेब और जयपुरनरेश जयसिंह की दासता से उद्विग्न होकर शिवाजी की शरण लेते हैं। इस प्रकार भारतदेश में किए जाने वाले राष्ट्रियता विरोधी इन नृशंस एवं जघन्य अत्याचारों के प्रति लेखक ने अपनी गम्भीर वेदना को सफलतापूर्वक अभिव्यक्त किया है। फलस्वरूप शिवाजी की राष्ट्रभक्ति भावना समस्त भारतीयों के मर्मस्थानों को संस्पर्श करती है।

छत्रपतिसाम्राज्यम् :– श्री मूलशङ्कर मणिकलालयाज्ञिक द्वारा लिखित यह ऐतिहासिक नाटक दश अंकों में है। यह नाटक 1929 ई० में लिखा गया था। इसमें आक्रामक मुगल सम्राट् औरंगजेब तथा उसके अधीनस्थ यवन सामन्तों के अत्याचारों से पीड़ित भारतदेशवासियों की रक्षा करने के लिए महाराष्ट्रप्रान्तीय शूराग्रणी छत्रपति शिवाजी द्वारा 'सर्वजनहिताय' और सर्वजनसुखाय संस्थापित किए गए स्वतन्त्र साम्राज्य की कथा का समग्र वर्णन किया गया है। विदेशी मुगलशासकों के क्रूर पञ्जों की कठोर पकड़ से अपने देश को स्वतन्त्र कराने की अदम्य भावना इस नाटक में परिलक्षित होती है। इस नाटक में प्रस्तावना के पश्चात् प्रथम दृश्य में ही शिवाजी अपने साथियों के साथ देश की दुर्दशा पर चिन्ता प्रकट करते दिखते हैं। मुगलसम्राट् द्वारा पददलित किए गए और किये जानेवाले भारतवासियों के प्रति सभी चिन्तित हैं–

"राष्ट्रोपप्लवशङ्क्यान्यनृपतिं सद्यः श्रयन्ते जनाः।
कालेनापचयेन कोशबलयों राष्ट्रं ततो नश्यति।।[2]

इस विपत्ति से राष्ट्र को मुक्तकरने के लिए शिवाजी सम्पूर्ण स्वराज्य की संस्थापना करने का संकल्प करते हैं, जिसका उनके सभी वीर साथी समर्थन करते हैं। शिवाजी की इस देशभक्ति से भगवती भवानी भी प्रसन्न होकर उन्हें मार्गदर्शन करती है। फलस्वरूप असीमित उत्साह से सैन्य संगठन करके शिवाजी अपने लक्ष्यप्राप्ति की ओर बढ़ते हैं। तत्कालीन राष्ट्रभक्त सन्त श्री रामदास भी शिवाजी को अपना शिष्य बनाकर प्रबल राष्ट्रभक्ति एवं स्वतन्त्र साम्राज्य संस्थापना का पाठ सोत्साह पुष्ट करते हैं और अपने तपोबल तथा शिष्यबल द्वारा सर्वात्मना सामयिक सहायता करने का वचन देते हैं जिससे शिवाजी के उत्साहसिन्धु में प्रसन्नता की उत्ताल तरङ्गें उठने लगती हैं।

इस प्रकार इस नाटक में राष्ट्रभक्ति की भावना पदे–पदे दृश्यमान् है।

शिवाजीचरितम् :– दश अङ्कों में सम्पन्न होनेवाले इस नाटक के रचयिता श्रीहरिदास सिद्धान्तवागीश है। इसका प्रकाशन 1954 ई० में हुआ था। इसमें वीर शिवाजी के राजतिलक पर्यन्त जीवन चरित का वर्णन है। इसके लिए नाटककार ने शिवाजीनिष्ठ राष्ट्रियभावना की सबल संवादों, दृश्यों तथा कार्यकलायों द्वारा बड़ी ही सफल अभिव्यक्ति की है। इस नाटक में शिवाजी मुगलों की दासता से विकल होकर अपने साथियों को संगठित करते हैं। अफजल खान को 'शठे शाठ्यं समाचरेत्' की नीति का पालन करते हुए परीजित करते हैं। माता जयन्ती देवी द्वारा शिवाजी की सहायता से पुणे नगर पर विजय प्राप्त किया जाता है।

इस प्रकार अन्त में शिवाजी, औरंगजेब की सेना को परास्त कर महाराष्ट्र को स्वतन्त्र कराते हैं। और हिन्दवी स्वराज्य की स्थापना करते हैं।

श्री शिवराज्योदयम् :– 68 सर्गों में निबन्धित इस महाकाव्य के रचयिता डॉ० श्रीधर भास्कर वर्णेकर हैं। इस महाकाव्य में महाकवि डॉ० वर्णेकर ने भारत, भारतीयता, भारतीय संस्कृति और सभ्यता के संरक्षक, राष्ट्रिय स्वतन्त्रता के परम उपासक छत्रपति शिवाजी के जीवनचरितका साङ्गोपाङ्ग वर्णन किया गया है। इस ग्रन्थ में राष्ट्रभक्त और राष्ट्रभक्ति की पराकाष्ठा पदे–पदे दृष्टिगत होती है–

"न सम्मानकामो न वित्तलोभो
न च स्वार्थमोहो न शक्त्युन्मदो वा।
मनस्यस्तु वो राष्ट्रसेवाव्रतानां
सखायः कदाचित् कुतश्चित् कथञ्चिद्।।"[3]

(श्री शिवराज्योदयम् – 27/59)

कुल मिलाकर इसमें मुगलों की अधीनता से भारतवर्ष का स्वतन्त्र कराने का जो प्रयास शिवाजी के द्वारा किया गया है वह अद्‌भुत है।

शिवराजाभिषेकम् :– सात अङ्कों में समाप्त होनेवाले इस नाटक के रचनाकार भी श्रीधर भास्कर वर्णेकर ही हैं। नाटक के आरम्भ में ही गुरुकुल के छात्रों द्वारा स्वराष्ट्राभिमानमूलक शौर्यसम्पन्न कार्यकलापों का निदर्शन किया गया है। नाटक में शिवाजी के द्वारा राष्ट्र की स्वतन्त्रता के लिए सङ्कल्प लिया जाता है। महाराज शिवाजी के राजाभिषेक महोत्सव में भारतवर्ष के सभी प्रान्तभागों से सहर्ष सम्मिलित होनेवाले नर–नारियों का वर्णन भी समग्र राष्ट्रनिष्ठा का दर्शन कराता है। इसी प्रकार सर्वजनवन्द्या शिवाजी की माता जिजादेवी द्वारा गाए गए गीत में भी स्वतन्त्रताप्राप्ति की बलिवेदी पर प्राणों की आहुति देनेवाले वीरों याद तथा उनके प्रति नतमस्तक होने के सन्देश में राष्ट्रभक्ति की भावना द्योतित होती है।

कुल मिलाकर इस नाटक में परम राष्ट्रभक्त महाराज छत्रपति शिवाजी के राज्याभिषेक का साङ्गोपाङ्ग चित्रण किया गया है। फलस्वरूप अनेक प्रसङ्गों में राष्ट्रियभावना की भी प्रेरणाप्रद अभिव्यक्ति सहज ही परिलक्षित हो उठी है।

क्षत्रपतिचरितम् :– 19 सर्ग में रचित इस महाकाव्य के रचयिता डॉ० उमाशङ्कर शर्मा त्रिपाठी है। इस महाकाव्य में भारत और भारतीयता के संरक्षक छत्रपति शिवाजी के जीवनचरित का अतीव भव्य वर्णन किया गया है। इस प्रसङ्ग में क्रमशः भारतीय भूमि और भारतीय संस्कृति का बड़ा ही मनोरम वर्णन किया गया है। हिमगिरि, कश्मीर, पञ्जाब, सप्तसिन्धु, राजस्थान, उत्तरप्रदेश, बिहार, आसाम, नेफा, बङ्गाल, उड़ीसा, मद्रास, केरल, महाराष्ट्र आदि समस्त भारतीय प्रदेशों का प्ररोचनात्मक वर्णन किया गया है। इस महाकाव्य में भारतवर्ष के गौरवशाली अतीत को भी बड़ी ही भावुकता के साथ याद किया गया है। अपने देश के मान–सम्मान की रक्षा न करनेवाले राजाओं की निन्दा की गई है और कटु उपालम्भ दिया गया है। राष्ट्रभक्त शिवाजी द्वारा भारतीयता के शत्रु बने हुए अफजलखान, शाइस्ताखान आदि के दमन की ऐतिहासिक कथा उत्साहपूर्वक कही गई है और हिन्दूधर्म की विशेषताओं को भलीभाँति उजागर किया गया है। शिवाजी का विचार है कि भारतीयों के शरीर में जबतक रक्त का एक भी कण शेष है, तबतक भारतवर्ष की प्रतिष्ठापर कोई आँच नहीं आ सकता–

"यावत्तनौ भारतभूमिजन्मनाम् एकोऽपि कीलालकणोऽवशिष्यते।
आसिन्धुशैलात् प्रकृतिःप्रणन्दतु सीम्नि स्थिरा तावदपेतसंशया।।"[4]

(क्षत्रपतिचरितम् – 2/7)

छत्रपतिश्रीशिवराज :– 5 अङ्कों में समाप्त होने वाले इस नाटक के प्रणेता श्री श्रीराम वेलणकर हैं। इस नाटक में शिवाजी की राष्ट्रभक्ति का अनूठा वर्णन है। विदेशी मुगलशासकों की शासनसत्ता को समाप्त करके समग्र भारतवर्ष में स्वतन्त्र स्वराज्य की संस्थापना करने का सत्संकल्प लेकर छत्रपति शिवाजी ने अपने देशवासियों में राष्ट्रभक्ति का संचार किया। अपनी मातृभूमि, अपनी संस्कृति और अपनी सभ्यता के प्रति अचल आदरभाव प्रकट करते हुए इन सबकी रक्षा के लिए सभी भारतीयों को सुसंगठित होकर बुद्धिबलपूर्वक सतत् संघर्ष करते रहने की अमोघ प्रेरणा दी है।

इस प्रकार संस्कृतसाहित्य में राष्ट्र के परमोपासक शिवाजी महाराज की राष्ट्रभक्ति का प्रदर्शन किया गया है। शिवाजी के इन राष्ट्रभक्तिपूर्ण साहित्यों को पढ़कर हमारे देश के युवासाथी राष्ट्रप्रेम की प्रेरणा पा सकते हैं। इन साहित्यों को पढ़ने के बाद देश की युवा पीढ़ी को ये पता चलता है कि मुगलों की दासता में कैसे एक अकेला हिन्दू राजा मुगल साम्राज्य को तहस–नहस कर देता है और स्वतन्त्र भारत में हिन्दवी–स्वराज्य की संकल्पना को साकार करता है।

सन्दर्भ :

1. शिवराजविजयः, डॉ० रमाशङ्कर मिश्र, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, संस्करण–2018 ई०
2. छत्रपतिसाम्राज्यम्, डॉ० नरेश झा, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, संस्करण–2011 ई०
3. श्री शिवराज्योदयम्, श्रीधर भास्कर वर्णेकर, शारदा गौरवग्रन्थमालापुणे, संस्करण–1972 ई०
4. क्षत्रपतिचरितम् डॉ० उमाशङ्कर शर्मा त्रिपाठी, अध्यापक निवास काशी विद्यापीठ, संस्करण–1974 ई०

***

अशोकनगर जिले के चित्रित शैलाश्रयः एक अध्ययन

डॉ. शांतिदेव सिसोदिया *
कु. श्वेता सिंह अहिरवार **

सारांश

प्रागैतिहासिक शैलचित्र कला का उद्भव आदिमानव की गुफाओं से हुआ, जिसे प्रागैतिहासिक चित्रकला का नाम दिया गया। प्रागैतिहासिक चित्रकला के अतिरिक्त मानव इतिहास के अंतर्गत किसी और दूसरी कला का इतना पुराना इतिहास नही रहा है। प्रारम्भिक मानव के जीवन को करीब से जानने के लिए प्रागैतिहासिक गुफाओं की चट्टानों पर निर्मित चित्रकला मानव जीवन के पहले केनवास की साक्षी बनी। इन चट्टानों पर मानव ने समय–समय पर अपने जीवन से संबन्धित विभिन्न प्रकार के चित्रों को उकेरा, जोकि प्रागैतिहासिक काल से लेकर ऐतिहासिक काल की विभिन्न घटनाओं और मानव संस्कृति के विभिन्न पहलुओं को दर्शाते है। इस शोध पत्र के माध्यम से अशोकनगर जिले की प्रागैतिहासिक शैलचित्र कला एवं उनसे संबन्धित पुरास्थलों की जानकरी प्रस्तुत की गयी है। जोकि मध्यप्रदेश में मौजूद भीमबैठिका, आदमगढ़, पचमढ़ी इत्यादि प्रागैतिहासिक स्थलों में मौजूद चित्रकला के समान अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

मुख्य शब्दः– अशोकनगर, शैलचित्र कला, प्रागैतिहासिक काल, मध्यपाषाण काल, ताम्रपाषाण काल, ऐतिहासिक काल, सुपरइम्पोजीशन, पूरक शैली, थूबोन, तिलहरी, सतधारा नदी, भरखी, सुरेल आमखो, ओर नदी, नानोन एवं बेसरा, नसिहर घाटी, लिखिदाँत, लाल गेरू, सूकट नाले, नीलगाय, देवछी, चुड़ैल का डेरा, सिद्धन की गुफा, राजा की गुफा।

प्रस्तावना

प्रागैतिहासिक चित्रकला गुफाओं में निवास करने वाले मानव के कार्यों एवं उसके जीवन से संबन्धित विभिन्न पहलुओं की चित्रात्मक भाषा है,एवं आदिमानव के कौशल और उसकी शारीरिक क्षमता का प्रतीक है,[1] शैलचित्र कला के द्वारा प्रागैतिहासिक मानव ने अपने विचारों और जीवन शैली के महत्वपूर्ण पहलुओं का संचार चित्रों के माध्यम से किया करता था।[2]

शैल चित्रकला प्रागैतिहासिक मानव की गतिविधियों और उसकी सांस्कृतिक की अभिव्यक्ति है। शैलचित्र कला मानव जाति के सबसे प्रामाणिक रिकॉर्ड माने जाते है, यह मानव जीवन के क्रमिक विकास का एक व्यापक खाता माने जाते है,[3] कला एक सामाजिक अभिव्यक्ति भी है, जोकि मानव समाज में संस्कृति के एक हिस्से के रूप में मौजूद है, और प्रत्येक समाज में उनके सामाजिक एवं धार्मिक क्रिया कलापों का महत्वपूर्ण हिस्सा बन चुकी है।[4] प्रागैतिहासिक गुफाओं में निर्मित चित्र प्रारम्भिक मानव जीवन के संघर्ष उसके स्वभाव और उसकी संस्कृति के अनेक पहलुओं को दर्शाते है।

मध्य प्रदेश में प्रागैतिहासिक चित्रकला के प्रमाण अनेक स्थलों से मिले हैं, जिनमें **भीम बैठिका, आदमगढ़, पचमढ़ी, सीहोर, मुरैना, छतरपुर, विदिशा, भोपाल, शिवपुरी** प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त अशोकनगर से भी प्रागैतिहासिक चित्रकला के अनेक प्रमाण मिले हैं। जिनका शोधात्मक अध्ययन कर उनका वर्णन इस शोध पत्र में किया गया है।

शोध के उद्देश्य

मेरे शोधपत्र का उद्देश्य अशोकनगर जिले के प्रागैतिहासिक चित्रित शैलाश्रयों और उनमें निर्मित विभिन्न काल के चित्रों पर प्रकाश डालना है। मध्यप्रदेश में प्रसिद्ध प्रागैतिहासिक स्थलों में **भीमबैठिका, आदमगढ़, पचमढ़ी, चतुर्भुज नाले** की शैलचित्र कला विश्वप्रसिद्ध है। अशोकनगर जिले में शोध सर्वेक्षण के दौरान अनेक ऐसे प्रागैतिहासिक कालीन स्थल देखे गये हैं, जहाँ विभिन्न काल खंडों से संबन्धित

---

* सा. प्राध्यापक, प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व अध्ययनशाला, जीवाजी विश्वविद्यालय ग्वालियर,म.प्र.।
** शोध छात्र, प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व अध्ययनशाला, जीवाजी विश्वविद्यालय ग्वालियर,म.प्र.।

शैलचित्र मौजूद है, लेकिन इस जिले में मौजूद प्रागैतिहासिक स्थलों जिनमें **थूबोन, तिलहरी, सतधारा नदी, भरखी, सुरेल आमखो, ओर नदी, नानोन एवं बेसरा, नसिहर घाटी, लिखिदाँत, सूकट** इत्यादि स्थलों को अभी उतनी प्रसिद्धि नहीं मिल पायी है, जितनी उन्हे मिलना चाहिए थी। मेरे शोध का उद्देश यही है, कि यहाँ के क्षेत्र में मौजूद प्रागैतिहासिक चित्रित शैलश्रयों को उतनी ही प्रसिद्धी मिलना चाहिए, जितनी की **भीमबैठिका, आदमगढ़, पचमढ़ी,** इत्यादि अन्य दूसरे स्थलों को मिली है।

अशोकनगर के चित्रित शैलाश्रय

मध्यप्रदेश के उत्तरी भू–भाग में प्रदेश मुख्यालय भोपाल से लगभग 200 किलोमीटर की दूरी पर अशोकनगर जिला स्थित हैं, जिसमें कई पठारी नदियाँ तथा नाले मौजूद हैं। इस जिले में नदियों तथा नालों के प्रवाह क्षेत्र में लाल बलुआ पत्थर से निर्मित प्राकृतिक शैलाश्रय भी विद्यमान हैं। इन शैलाश्रयों में शैलचित्र देखे जा सकते हैं।

अशोकनगर जिले में सर्वप्रथम सन् 1975–76 ई. में पुरातात्त्विक सर्वेक्षण के दौरान सी.वी. त्रिवेदी तथा टी.वी.जी.शास्त्री द्वारा अनेक चित्रित शैलाश्रयों की खोज की गई थी। वर्तमान गुना जिले के चन्देरी तहसील में त्रिवेदी एवं उनके दल को 'ओर' नदी के प्रवाह क्षेत्र में 'बेसरा' तथा 'नानोन' गाँवो के पास स्थित 'चुड़ैल का डेरा' नामक स्थान पर कुछ चित्रित शैलाश्रय प्राप्त हुए थे।[5] सी. वी. त्रिवेदी की यह खोज **'मोर पेन्टेड रॉक शेल्टर्स फ्राम मध्यप्रदेश'** नामक शोध–पत्र के रुप में 1997 में **'इफेक्ट ऑफ इण्डियन सिविलाईजेशन',भाग–1** पुस्तक में प्रकाशित हुयी थी।[6]

थूबोन के शैलाश्रय

सन् 1975–76 ई. में सी. वी. त्रिवेदी तथा टी. वी. जी. शास्त्री द्वारा अशोकनगर जिले के चन्देरी तहसील में सर्वेक्षण के करते समय 'थूबोन' गाँव के पास बने शैलाश्रयों में अनेक चित्रों को खोजा गया था।[7] अशोकनगर जिले के अंतर्गत 'थूबोन' ग्राम के पास स्थित शैलाश्रय में कुछ जानवरों के चित्रों के अतिरिक्त मानव आकृतियों के चित्र निर्मित किए गए है। इन चित्रों मे कुछ चित्र प्रागैतिहासिक काल एवं कुछ ऐतिहासिक काल के प्रतीत होते है।[8]

तिलहरी के शैलाश्रय

स्थानीय लोगों द्वारा बताए गए स्थान का सर्वेक्षण करने पर ज्ञात हुआ, कि 'तिलहरी' में मौजूद स्थान को यहाँ के स्थानीय लोग 'लिखना' कहते हैं वास्तव में वहाँ चित्रित शैलाश्रय हैं। स्थानीय लोगों से पूर्व इस प्रागैतिहासिक स्थल की जानकारी एक चंदेरी के एक स्थानीय व्यक्ति द्वारा दी गई थी।[9]

सतधारा नदी के शैलाश्रय

अशोकनगर जिले के अंतर्गत 'सतधारा नदी' के प्रवाह क्षेत्र का लगभग 3 किलोमीटर की दूरी तक सर्वेक्षण करने पर नदी के दोनो किनारों पर पन्द्रह चित्रित शैलाश्रयों में विभिन्न काल के चित्रों को देखा गया है। इन शैलचित्रों को यहाँ के स्थानीय लोग 'भरखी' के चिन्ह् कहते हैं। यहाँ पर मौजूद पन्द्रह शैलाश्रयों में से केवल छः शैलाश्रयों के चित्र सुरक्षित बचे हुए हैं, जबकि अन्य नौ शैलाश्रयों के चित्र प्राकृतिक एवं मानवीय कारणों से नष्ट हो गए हैं।[10]

सुरेल आमखो के शैलाश्रय

चंदेरी तहसील से लगभग 20 किलोमीटर की दूरी पर 'सुरेल आमखो' नाम का स्थान है, जहाँ तीन शैलाश्रयों में मानव एवं पशुओं के चित्र निर्मित हैं। इस शैलाश्रय में दो शैली में मानव एवं तीन शैली में पशुओं के चित्र निर्मित किए गये हैं। यहाँ पर निर्मित मानव चित्र शैलाश्रय के बीच में नीचे की तरफ निर्मित हैं, जिनको लाल गेरू रंग से दोहरी रेखाओं द्वारा चित्रित किया गया है। इस चित्रण में मानव के दोनों हाथों में नोकदार उपकरण हैं। मानव चित्रण शैली एवं रंग संयोजन के आधार पर मध्यपाषाणकाल से संबन्धित प्रतीत होते है।[11]

'ओर' नदी के शैलाश्रय

वर्ष 1975–76 ई. में सी.वी.त्रिवेदी तथा टी.वी.जी.शास्त्री द्वारा नानोन गाँव के समीप 'ओर नदी' के किनारे स्थित चित्रित शैलाश्रयों को खोजा गया था। उपर्युक्त खोज को आधार मानकर **नानौन** एवं **'बेसरा'** गाँव तथा उसके आस–पास के क्षेत्र का सर्वेक्षण भी किया गया। जिसके फलस्वरुप **नानौन** गाँव

के उत्तर दिशा में प्रवाहित **'ओर'** नदी पर स्थित प्राकृतिक जल प्रपात की जानकारी प्राप्त हुई, इस जल प्रपात को स्थानीय लोग अपनी भाषा में **'बड़ा भरखा'** कहते हैं।[12] यहाँ नदी के दाहिने तट पर चित्रित शैलाश्रयों की एक लम्बी श्रृंखला देखी जा सकती है, जिनमें अनेक प्रकार के चित्र निर्मित हैं। इस शैलाश्रय के एक स्थान पर मधुमक्खी के छत्ते से शहद एकत्र करते हुए मानव समूह को शैलाश्रय के अंदर की चट्टान पर निर्मित किया गया है। मधुमक्खी के छत्तों को कत्थई रंग से पूरक शैली में चित्रित किया गया है।[13]

नसिहर घाटी के शैलाश्रय

इस पुरास्थल की जानकारी आमखो पुरास्थल का सर्वेक्षण करते समय हुई। **आमखो** पुरास्थल पर सर्वेक्षण करते समय वहाँ पर उपस्थित चरवाहों द्वारा इस स्थल के बारे में जानकारी प्रदान की गई थी। जिनके अनुसार यहाँ से कुछ दूरी पर 'नसिहर बाबा' का मंदिर है, जिसके पीछे की घाटी में ऐसे चित्र निर्मित है। इस जगह के शैलाश्रयों को स्थानीय लोग 'लिखिदाँत' नाम से जानते है।[14] चरवाहों द्वारा बताए गए स्थान का सर्वेक्षण करने के पश्चात् यह ज्ञात हुआ, कि आमखो से लगभग 3 किलोमीटर की दूरी पर 'राची नदी' की एक छोटी जलधारा मौजूद है, जिसके बाँयीं तरफ पाँच शैलाश्रयों में विभिन्न प्रकार के चित्र निर्मित हैं। इस पुरास्थल के सबसे अधिक चित्र शैलाश्रय क्रमांक–4 में निर्मित हैं।

भरखा नाले के शैलाश्रय

यहाँ के शैलाश्रयों में से कुछ शैलाश्रयों में प्राकृतिक जमाव (पेटिनेशन) तथा शैलचित्रों में 'सुपरइम्पोजीशन' को देखा जा सकता है, जिसके कारण से कई चित्रों को पहचान पाना बहुत कठिन है। किन्तु कुछ चित्रों को सरलता से पहचाना जा सकता है। यहाँ शैलाश्रय में अलग–अलग स्थानों पर गहरे लाल गेरू रंग का प्रयोग करते हुए मोटी रेखाओं के द्वारा मानव आकृतियों के चित्रों को निर्मित किया गया है। मानव के चित्रों के समीप ही लाल रंग से किसी पक्षी सम्भवतः मोर को चित्रित किया गया है। चित्रों को निर्मित करने की शैली तथा रंग संयोजन का अध्ययन करने के बाद ऐसा प्रतीत होता है, कि मानव आकृति एवं मोर के चित्र को प्रारम्भिक ऐतिहासिक काल में चित्रित किया गया होगा।[15]

यहाँ के शैलाश्रय में एक अन्य स्थान पर लाल रंग का प्रयोग करते हुए दोहरी रेखाओं के माध्यम से एक आयत का चित्रण है, जिसके चारों कोनों पर छोटे–छोटे गोले निर्मित किए गये हैं। आयत के मध्य में लाल गेरू रंग से एक मानव की आकृति चित्रित है। इस चित्र को देख कर ऐसा प्रतीत होता है, कि इस चित्रण में मानव आकृति को अपने लिए चार स्तम्भों युक्त आयताकार आवास बनाते हुये चित्रित किया गया है। शैली और प्रयुक्त रंगों के आधार पर प्रतीत होता है, कि यह चित्र ऐतिहासिक काल में चित्रित किए गए है।

सूकट नाले के शैलाश्रय

सी.वी.त्रिवेदी तथा टी.वी.जी.शास्त्री के द्वारा वर्ष 1975–76 ई. में तत्कालीन अशोकनगर जिले के चन्देरी तहसील में पुरातात्त्विक सर्वेक्षण के दौरान **'थूबोन'** गाँव के निकट चित्रित शैलाश्रयों की खोज की गई थी। इसी खोज के आधार पर 'ओर' नदी के सहायक नाले **'सूकट नाले'** का सर्वेक्षण किया गया, जिसके बाद इस नाले के प्रवाह क्षेत्र के आस–पास अनेक चित्रित शैलाश्रयों को देखा गया।[16]

यहाँ पर निर्मित चित्रों को हल्के एवं गहरे लाल गेरू रंग से चित्रित किया गया है, जिनमें नीलगाय के समूह का चित्रण मिलता है। नीलगाय के चित्र को मोटी रेखाओं द्वारा 'पूरक शैली' में लाल गेरू रंग से चित्रित किया गया है। नील गायों के चित्रों की शैली, रंग के प्रयोग को देख कर ऐसा प्रतीत होता है, कि यह चित्र समूह ताम्रपाषाण काल में चित्रित किए गए होंगे।[17]

यहाँ के चित्रित शैलाश्रयों में कुछ चित्र ऐसे भी निर्मित हैं, जोकि प्राकृतिक कारणों से बहुत धुंधले पड़ चुके हैं, जबकि कुछ चित्र लगभग नष्ट हो चुके हैं। शैलाश्रयों की चट्टान पर नष्ट हुये चित्रों के केवल लाल निशान ही दिखाई पड़ते है। अशोकनगर जिले में उपरोक्त चित्रित शैलाश्रयों के

अतिरिक्त अनेक चित्रित शैलाश्रयों को और देखा गया है, जिनमें **देवछी के शैलचित्र, सिद्धन की गुफा के शैलचित्र, राजा की गुफा** एवं **मामोन के शैलचित्र** प्रमुख हैं।

निष्कर्ष

अशोकनगर जिले में मौजूद शैलचित्र कला में मानव ने बड़े समूहों वाले जानवरों के चित्रों को उनके शारीरिक बनावट के अनुरूप चित्रित करने का पूर्ण प्रयास किया है। ऐसे चित्रों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है, कि उस समय के कलाकार अल्प समय में भी चित्र को बड़े रूप में बनाने में सक्षम थे। इसके विपरीत छोटे समूह के चित्रों को बड़े ही सुंदर एवं क्रमबद्ध तरीके से बनाया है। मानव ने चित्रों को निर्मित करने से पहले उनकी सुरक्षा की दृष्टि से शैलाश्रयों के अंदर स्थान का चुनाव बहुत सूझ–बूझ से किया है। मानव ने लकड़ी की तूलिका के माध्यम से तथा हाथ की अंगुली से फ्री हैंड चित्रण भी किया है। यहां पर निर्मित कुछ चित्रों में उनकी सजावट पर ध्यान न देकर उनकी विषय वस्तु पर अधिक ध्यान दिया है। यहाँ कलाकार ने चित्रों में रेखा का प्रयोग बहुत ही सुंदर एवं व्यवस्थित तरीके से किया है। अशोकनगर की शैलचित्र कला में पेड़ों की सजावट के दृश्य के साथ सामुहिक उत्सवों का चित्रण किया गया है। यहाँ कुछ चित्रों में मादा पशु आकृति को गर्भ में उसके बच्चे से साथ चित्रित किया बनाया है।

अशोकनगर जिले के कुछ चित्रों में एक्सरे तकनीक का प्रयोग मिलता है। मानव शरीर को अनुपात में चित्रित किया गया है, एवं उनके शारीरिक अंगों को दर्शाने के लिए लयात्मक रेखा का प्रयोग बहुत ही सुंदर ढंग से किया है। इस प्रकार के चित्रण से पता चलता है, उस समय का मानव कला के प्रति कितना समर्पित था। सुपरिम्पोजीसन चित्रों में निश्चित स्थान पर एक बार चित्र बनाने के बाद पुनः उसी स्थान पर पहले वाले चित्र के ऊपर ही दूसरे चित्र को बनाया है। इस चित्रों के अध्ययन से पता चलता है, इस क्षेत्र के लोग भी दूसरे क्षेत्रों के लोगों के समकालीन इस क्षेत्र में निवास कर रहे थे, तथा एक दूसरे से चित्रों को निर्मित करने की कला सीखते थे। क्योकि यहाँ के बहुत से चित्रण **भीम बैठिका, आदमगढ़, पचमढ़ी, भोपाल, ग्वालियर, सीहोर, मुरैना, छतरपुर, विदिशा** से प्राप्त हुये चित्रों के समरूप दिखते हैं।

संदर्भ :

1. एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, वॉल्यूम–18,1976,विलियम बेंटन पब्लिशर्स, पृ1979,–20।
2. वही–––वॉल्यूम–2,पृ..483–98।
3. बी. के. दत्ता, इनटरोडकसन तो इंडियन आर्ट 1979,कलकत्ता,पृ.–9।
4. एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, होबेल एंड ई.एल.फ्रॉस्ट, कल्चर एंड सोशल एंथ्रोपोलोजी, नई दिल्ली, 1979,पृ.–385।
5. थापर, बी. के, इन्डियन आर्कियोलोजी ए रिव्यू, 1975–76,आर्कियोलोजी सर्वे ऑफ इन्डिया, नाबा मुद्रण प्राईवेट लि. कलकत्ता, 1979,पृ.–77।
6. त्रिवेदी,सी.बी,(1997)––मोर पेन्टेड रॉक शेल्टर्स फ्राम मध्यप्रदेश',सम्पादन,जगतपति जोशी, इफेक्ट ऑफ इन्डियन सिविलाईजेशन,भाग–1,आर्यन बुक्स इन्टरनेश्नल,नई दिल्ली,पृ.50–51।
7. थापर, बी. के, (1979)––इन्डियन आर्कियोलोजी ए रिव्यू,1975–76,पूर्वोक्त,पृ–77।
8. वाकणकर, विष्णु श्रीधर, पेन्टेड रॉक–शेल्टर्स ऑफ इन्डिया, डिपार्टमेन्ट ऑफ आर्कियोलोजी, डेक्कन कॉलेज, पूणे, 1973,पृ.299–302।
9. सलाउद्दीन,सुल्तान(2019)–––––––अशोकनगर जिले का पुरातात्त्विक अध्ययन (प्रारम्भ से 600––ई. तक),अप्रकाशित शोध–प्रबन्ध,डॉ.हरीसिंह गौर विश्वद्यालय सागर,पृ.117–18।
10. वही––––119–21।
11. अंसारी,मुजफ्फर अली(2005)–––चन्देरी इतिहास और विरासत, सागर एडर्वटाईजर्स एण्ड प्रिन्टर्स, ग्वालियर,पृ.83–84।

12. थापर,बी.के.(1979)––इन्डियन आर्कियोलोजी ए रिव्यू, 1975–76, आर्कियोलाजिकल सर्वे ऑफ इन्डिया,नाबा मुद्रण प्राईवेट लि,कलकत्ता,पृ.–77।
13. सलाउद्दीन,सुल्तान(2019)––––वही,पृ.126–27।
14. वही––––पृ.128–29।
15. सर्वेक्षण करते समय 'बेहटी गाँव' के लोगों से जानकारी करने के पश्चात् इस स्थल के बारे में जानकारी प्राप्त हुई।
16. थापर,बी.के(1979)––––वही,पृ.–77।
17. सलाउद्दीन,सुल्तान(2019)––––वही,पृ.–132।

***